अमृतसर

इन्दिरा गांधी की आखिरी लड़ाई

मार्क टली तथा सतीश जेकब

अनुवाद
[illegible]



राधाकृष्ण

श्रीमती गाँधी ने पंजाब समस्या के लिए बाहरी शक्तियों को दोषी ठहराया था जो भारत को मजबूत और एक नहीं देखना चाहती थीं। इसमें शक नहीं कि इन शक्तियों की भूमिका रही और वे आतंकवाद पर आमादा उग्रवादी सिखों को मदद और उकसावा देकर यह भूमिका निभाना जारी रखेंगी। लेकिन अकेले बाहरी शक्तियाँ भारत जैसे सुदृढ़ और स्थिर देश के लिए न कभी कोई खतरा बनी हैं और न बन सकती हैं। भारतीयों को चाहिए कि वे अब अपने देश और उसके शरीर में पैदा हुई उन खामियों की ओर देखें जिनके चलते पंजाब राजनीतिक महाविपत्ति के कगार पर पहुंचा।

विश्व के इस सबसे बड़े लोकतंत्र को आज भी अंग्रेजी राज की संस्थाओं द्वारा चलाया जा रहा है। प्रशासन को नियंत्रित करने वाली भारतीय प्रशासनिक सेवा अंग्रेजी राज के 'आई० सी० एस०' की हूबहू नकल है और भारतीय पुलिस सेवा 'इण्डियन पुलिस' की। मैकाले द्वारा बनाई दण्ड संहिता अभी तक लागू है। भाड़े के गवाह जो पहले अंग्रेजी राज के समर्थन में पेश होते थे, अब आजाद भारत की पुलिस के पक्ष में मजिस्ट्रेटों के सामने गवाही देते हैं। अंग्रेजों द्वारा सौंपी गयी न्याय-व्यवस्था का इस्तेमाल सम्पन्न और प्रभावशाली लोग सरकार के इरादों को नाकाम करने के लिए करते हैं और गरीबों के लिए पुलिस और अदालतें अब भी आततायी बनी हुई हैं।

पंजाब संकट से यह भी जाहिर हुआ कि अंग्रेजों के जमाने की संस्थाएँ आधुनिक भारत की समस्याओं को हल करने के लिए बिलकुल अनुपयुक्त हैं। पुलिस लाचार थी, क्योंकि सालों से बहुत कम वेतन और उसके नतीजे में भ्रष्टाचार ने पुलिस बल को खोखला कर डाला है। ये दोनों चीजें अंग्रेजी राज की पुलिस के प्रमुख गुण थीं। पुलिस अफसरों को पता था कि उन्होंने जिन चन्द उग्रवादियों को गिरफ्तार किया है उन्हें जजों के सामने पेश करने का कोई तुक नहीं है, क्योंकि मरणासन्न न्यायालयों से उन्हें सजा दिलाने में बरसों लग जाएँगे। इसलिए उन्होंने सीधे हत्या का तरीका अपनाया जिसे 'मुठभेड़ में मारा गया' जैसे शब्दों में छिपाया जाता है। इन मुठभेड़ों ने भिंडराँवाले द्वारा बदला लेने के आह्वान को जैसे सही ठहरा दिया। काँग्रेस पार्टी को पंजाब के गाँवों में श्रीमती गाँधी का संदेशवाहक बनकर भिंडराँवाले द्वारा फैलायी जा रही नफरत का मुकाबला करना चाहिए था। पर उसमें खुशामदी भरे पड़े थे जिनकी आँखें हमेशा शक्ति के स्रोत दिल्ली पर लगी रहती थीं, अपने क्षेत्रों पर नहीं। सिविल सेवाओं में भी चापलूसों का प्रभुत्व था जो कि अपने राजनीतिक आकाओं को खुश करने के लिए हर नियम तोड़ने को तैयार रहते थे। संसद भी शक्तिहीन थी, क्योंकि श्रीमती गाँधी के सबसे ज्यादा साहसी संसद सदस्यों के अलावा किसी में दम नहीं था कि उनकी पंजाब नीति के खिलाफ कुछ बोल सकें। श्रीमती गाँधी ने भारत की संस्थाओं में सुधार लाने की

कभी कोशिश नहीं की और इसकी कीमत भी उन्होंने चुकायी, जब पुलिस इतनी लापरवाह हो गयी कि श्रीमती गाँधी की निजी सुरक्षा व्यवस्था में भी दरारें पड़ गयी। यह उस असाधारण नेता के बारे में कठोर टिप्पणी है, जिन्होंने भारत को विकासशील देशों में व्याप्त कठोर तानाशाही या अराजकता से भारत को बचाये रखा। लेकिन अगर भारत को अपने नौजवानों की बढ़ती उम्मीदें पूरी करनी हैं और आधुनिकता के साथ आने वाले सामाजिक परिवर्तनों को पूरा करना है तो अच्छाइयों के साथ-साथ इंदिरा गाँधी की खराबियों को जानना भी जरूरी है।

राजीव गाँधी भारत को इक्कीसवीं सदी में ले जाना चाहते हैं। उन्हें भारत की संस्थाओं को पहले बीसवीं सदी में लाना होगा।

दिल्ली, नवम्बर 1985 मार्क टली

पाठकों से

अमृतसर : श्रीमती गाँधी की आखिरी लड़ाई उस सिख कौम के खिलाफ नहीं थी, जिसको श्रीमती गाँधी हमेशा वहुत स्नेह करती थीं। यह एक ऐसा युद्ध था, जिसमें सिखों के एक-छोटे से जत्थे के विरुद्ध फौज, वख्तरवन्द सेना और तोपखाने का इस्तेमाल हुआ। सिखों के इस जत्थे ने स्वर्णमन्दिर परिसर में किलेबन्दी कर रखी थी और वे भारत सरकार के प्रभुत्व को चुनौती देने के लिए एक अड्डे की तरह उसका इस्तेमाल कर रहे थे। त्रासदी यह है कि वहुत से सिख इस नजरिए को नहीं मानते। उनका मानना है कि दरअसल यह लड़ाई समूचे सिख सम्प्रदाय के खिलाफ थी। उन सभी घटनाओं को, जिनकी परिणित अन्ततः स्वर्णमन्दिर पर सैनिक कार्रवाई में हुई, सतीश जेकव और मैं वहुत करीव से देख रहे थे और हर मोड़ को वी० वी० सी० विदेश प्रसारण सेवा (जिसके हिन्दुस्तान में वहुत श्रोता हैं), वी० वी० सी० रेडियो और टेलीविजन के लिए कवर कर रहे थे।

श्रीमती गाँधी की हत्या के पहले से ही हमने इस किताव पर काम शुरू कर दिया था, क्योंकि हमें पूरा एहसास था कि अगर यह नहीं समझा गया कि आपरेशन व्लू स्टार की जिम्मेदारी सिख नेतृत्व पर भी उतनी ही है जितनी भारत सरकार पर, तो भारत की एकता के संदर्भ में इस दुर्घटना के वहुत गम्भीर नतीजे होंगे। श्रीमती गाँधी की हत्या की त्रासदी ने हमारे विचारों को सच ही सावित किया। वे मारी गयीं, क्योंकि कुछ सिख गहराई से यह मान वैठे थे कि श्रीमती गाँधी ने जानवूझकर और अन्यायपूर्वक उनके सवसे पवित्र तीर्थ पर हमला किया। श्रीमती गाँधी की हत्या के वाद सिखों के विरुद्ध भड़की हिंसा पर कावू पाने में सरकार की असफलता ने सिख समुदाय के एक वड़े हिस्से के अलगाव के खतरे को और भी वढ़ा दिया। इसीलिए हमें लगा कि स्वर्णमन्दिर की दुर्घटना तक ले जाने वाली गलतियों तथा भिंडरांवाले की कहानी लिखने की जरूरत और ज्यादा वढ़ गयी है।

अगर इस किताव से हिन्दुओं और सिखों में पंजाव में सक्रिय शक्तियों की समझदारी वढ़ती है, तो निश्चित ही इससे उनके वीच सद्भाव की उम्मीदें और मजवूत होंगी। हमने यह वताने की कोशिश की है कि वास्तव में दोनों में से कोई भी पक्ष आखिरी टकराहट नहीं चाहता था।

जब इस कहानी को कहने का वक्त आया तो मुझे और सतीश जेकब, को एक समस्या का सामना करना पड़ा। हम दोनों ने साथ-साथ इतना मिल-जुलकर काम किया था कि यह सोचना भी नामुमकिन लगता था कि सतीश जेकब या मार्क टली, दोनों में से किसी एक को अकेले यह किस्सा कहना चाहिए। हमें यह भी लगता था कि दरअसल दो लोग एक किताब नहीं लिख सकते। तभी भारत सरकार द्वारा पंजाब को विदेशियों के लिए प्रतिबन्धित करने के आदेश ने हमारे बीच एक सन्तोषजनक श्रमविभाजन कर डाला। हमने तय किया कि भारतीय नागरिक होने के कारण सतीश जेकब को पंजाब में रहकर उन सैनिक अधिकारियों, सिखों और दूसरे लोगों से बातचीत करनी चाहिए, जो ऑपरेशन ब्लू स्टार और उसके बाद की घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं जबकि इधर मैं लिखने का काम करता रहूँ। यही वजह है कि मैंने यह किताब 'प्रथम पुरुष' (फर्स्ट परसन) में लिखी है। लेकिन हर अर्थ में यह किताब एक संयुक्त लेखन है—प्रारम्भिक रूपरेखा से लेकर आखिरी संशोधनों तक। हर कदम पर मुझे तथ्यों और व्याख्याओं के लिए सतीश जेकब पर निर्भर रहना पड़ा है।

हम दोनों गिलियन राइट के प्रति, उनके महत्त्वपूर्ण योगदान और सुझावों के लिए गहराई से कृतज्ञ हैं। ऐतिहासिक शोध का ज्यादातर काम उन्होंने ही किया है। हमारे दिल्ली प्रवास के समय उन्होंने ही प्रकाशन संबंधी सारे कामकाज किये और अनुक्रमणिका तैयार की। हम उन बहुत सारे भारतीय पत्रकारों को भी धन्यवाद देना चाहते हैं जिन्होंने बिना किसी स्वार्थ के हमें जानकारियाँ दीं। हरबीर सिंह भँवर, संजीव गौड़, राजू संथानम, तवलीन सिंह, राहुल बेदी और डी० के० वशिष्ठ के हम विशेष आभारी हैं। हमारे जिन पाँच दोस्तों ने पाडुलिपि पढ़ी और हमें कई गलतियों का शिकार होने से बचाया वे ये : 'सण्डे टाइम्स' के इयान जैक, बी० बी० सी० विदेश सेवा के वकार अहमद, बम्बई के पत्रकार और वकील अब्दुल गफूर नूरानी, राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक सतबक्श सिंह और गुरुनानक फाउंडेशन के प्रधान और सिख इतिहासकार मोहिन्दर सिंह, हालाँकि इस किताब में व्यक्त विचारों के लिए वे जिम्मेदार नहीं हैं।

मुझे और सतीश दोनों को यह उम्मीद है कि यह किताब एक दुराग्रही आलोचना के रूप में नहीं देखी जायेगी। इसके पहले कि स्मृतियाँ धुंधली पड़ जायें और इस नाटक में भाग लेने वाले अभिनेता बिखर जायें, यह पुस्तक इस देश के इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण अध्याय के वर्णन की ईमानदार कोशिश है, यह देश, जिसे हम दोनों गहराई से प्यार करते हैं।

दिल्ली, अगस्त 1985 — मार्क टली



पंजाब और सीमावर्ती राज्यों का मानचित्र

1

एक प्रधानमंत्री की हत्या

इकतीस अक्तूबर 1984 की सुबह 9 बजकर 15 मिनट पर इंदिरा गांधी नाम की महिला, जो भारतीय राजनीति पर लगभग दो दशकों तक छायी रही थी, दफ्तर जाने के लिए अपने बँगले के बगल वाले दरवाजे से अहाते को पार करने के लिए बाहर निकली। अपने पूरे प्रधानमंत्रित्व काल मे वह सफदरजंग रोड के सादे, सफेद, औपनिवेशिक शैली के बंगले मे ही रही, जो भारत की राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली लाते समय अंग्रेजो द्वारा अपने अधिकारियो के लिए बनाये कई घरो मे से एक था। प्रधानमत्री के बंगले की कोई भी चीज फूहड, भड़कीली और आडम्बर वाली नही थी। कई दूसरे देशो के राज्याध्यक्षों की तुलना मे देखा जाये तो 'सुरुचि' श्रीमती गांधी की जीवन-शैली का एक प्रमाणचिह्न रही है। हालांकि उनके अधीन विशाल राजनैतिक फंड थे, फिर भी उन्होंने अपने बेटे राजीव, उनकी इतालवी पत्नी सोनिया और उनके दो बच्चों के साथ एक बहुत सादा पारिवारिक जीवन बिताया।

प्रधानमंत्री अपनी साड़ियो का चुनाव बड़े ध्यान से करती थीं। उस दिन उन्होंने केसरिया रंग की साडी पहन रखी थी, क्योकि यह रग टेलीविजन पर अच्छा दिखायी देता है। वे नाटककार, अभिनेता और व्यग्यकार पीटर उस्तिनोव को एक टेलीविजन साक्षात्कार देने जा रही थी। इसे विडम्बना ही कहिए, कि सिख धर्म में केसरिया रग शहादत का रंग माना जाता है। श्रीमती गांधी का अपना दम्भ भी था। विश्व-नेता की अपनी हैसियत को लेकर वह काफी सचेत थी और इसका सुख भी उन्होंने भरपूर उठाया। यद्यपि वे पश्चिमी सचार माध्यमों की कड़ी आलोचक थी, उन्होने अपने यहाँ आये महत्वपूर्ण व्यक्तियो के अनुरोध को कभी नही ठुकराया और बड़ी तत्परता से भेंटवार्ताएँ दी।

प्रधानमंत्री अधिकाश दिनो अपना जनसम्पर्क 'दर्शन' के साथ शुरू करती थी, जिसमें कुछ चुने हुए लोगो के समूह उनसे 'अनौपचारिक' तौर पर मिलने के लिए सफदरजग रोड के अहाते मे ले जाये जाते थे। इस भीड मे अकसर बहुत गरीब और भारत के दूरदराज के पिछड़े इलाको के लोग होते थे। 31 अक्तूबर को 'दर्शन' की व्यवस्था नही की गयी थी, क्योकि श्रीमती गांधी पिछली रात ही

उड़ीसा के दौरे को बीच में छोड़कर वापस लौटी थीं। इस यात्रा के दौरान दिये गये अपने अन्तिम सार्वजनिक भाषण में, लगता है श्रीमती गाँधी ने स्वयं अपनी मृत्यु का आभास कर लिया था, उन्होंने कहा : 'मैं जिन्दा रहूँ या नहीं, इसकी मुझे परवाह नहीं हैं। अपनी आखिरी साँस तक मैं आप लोगों की सेवा करती रहूँगी और जब मैं मरूँगी तो मेरे खून की एक-एक बूंद भारत को मजबूत बनायेगी और भारत की एकता को बाँधे रहेगी।' श्रीमती गाँधी उड़ीसा के दौरे से इसलिए जल्दी लौटीं कि उनका पोता और पोती दिल्ली में एक कार-दुर्घटना के शिकार हो गये थे। अमृतसर में स्वर्णमन्दिर पर सैनिक आक्रमण के बाद से उनके पूरे परिवार को क्रुद्ध सिखों के धमकी भरे पत्र मिलते रहे थे और श्रीमती गाँधी को डर था कि यह कार-दुर्घटना कहीं उनके पोते-पोती की जान लेने का एक षड्यंत्र न रहा हो।

श्रीमती गाँधी के घर और दफ्तर के अहाते के बीच एक फेंस थी, जिसमें एक छोटा-सा फाटक था। हमेशा की ही तरह अपने निजी सहायक आर० के० धवन के साथ श्रीमती गाँधी जैसे ही फाटक के निकट पहुँचीं, वे ड्यूटी पर तैनात सिख पुलिस सब-इंस्पेक्टर बेअन्त सिंह को देखकर मुस्करायीं। उनके ऐसा करते ही बेअन्त सिंह ने अपना रिवाल्वर निकाला और उन पर गोली दाग दी। वे जमीन पर गिर पड़ीं और सिपाही सतवंत सिंह ने, जो गेट के दूसरी तरफ ड्यूटी पर था, अपनी पूरी स्टेनगन उनके जिस्म में खाली कर दी। उसकी कई गोलियाँ निशाना चूककर कंक्रीट की सड़क को उधेड़ती चली गयीं।

जिस प्रधानमंत्री की सुरक्षा करने के लिए उसे नियुक्त किया गया था, उसी को गोली मार देने के बाद बेअन्त सिंह ने अपना 'वाकी-टॉकी' बाड़े के ऊपर टाँगा, अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये और कहा . 'मैंने तो जो करना था कर डाला, अब तुमको जो करना हो करो।' उसने अमृतसर के स्वर्णमन्दिर पर भारतीय सेना के हमले का बदला ले लिया था, जो सिख पंथ का केन्द्रीय तीर्थस्थल है।

दोनों अंगरक्षक दफ्तर के अहाते की पुलिस चौकी में ले जाये गये, जहाँ पर प्रधान-मंत्री निवास की बाहरी सुरक्षा-पंक्ति बनाने वाली इंडो-तिब्बत बार्डर पुलिस के कमांडो के साथ उनकी झड़प हुई। बेअन्तसिंह को गोली मार दी गयी और सतवन्त सिंह गम्भीर रूप से जख्मी हुआ। यह विडंबना ही थी कि बेअन्त सिंह एक 'मजहबी सिख' था, अछूतों-हरिजनों के वंश का, जिन्हें सिख पंथ में शामिल तो कर लिया गया है लेकिन सिख सम्प्रदाय की प्रभावशाली जाति आज तक उन्हें नीची निगाह से देखती है।

आसपास न तो एंबुलेंस थे, न खून देने की व्यवस्था और न ही वहाँ कोई विशेष चिकित्सा दल तैनात था, इसलिए श्रीमती गाँधी की इतालवी बहू सोनिया और

घवन प्रधानमंत्री को एम्बेसडर कार में डालकर तीन मील दूर आल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट तक ले गये। वहाँ पर घवड़ाये हुए जूनियर डाक्टरों ने उन्हें देखा। जब वरिष्ठ डाक्टर वहाँ पहुँचे तो श्रीमती गाँधी को 'हार्टलंग बाइपास मशीनरी' पर रखा गया, और उन्हें खून चढाया जाने लगा। डाक्टरों ने दोपहर 2 बजकर 20 मिनट तक उन्हें मृत घोषित नहीं किया, लेकिन डाक्टरी हिसाब से श्रीमती गाँधी उसी वक्त मर चुकी थी, जब वे अस्पताल लायी गयी। आल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज के सुपरिंटेंडेंट ने बाद में बताया कि उनके शरीर में गोलियों के 20 से भी अधिक घाव पाये गये थे। उनका कलेजा, गुर्दा और बाँह, शरीर के दायी ओर की कुछ शिराएँ और धमनियाँ छलनी हो गयी थी। सरकार-नियंत्रित आकाशवाणी को शाम 6 बजे से पहले श्रीमती गाँधी की मृत्यु का समाचार प्रसारित करने की अनुमति नहीं मिल पायी, जब इन पाँच घंटों के दौरान स्थानीय समाचार एजेंसियों और बी० बी० सी० की विदेश सेवा के जरिये भारत के लाखों लोग जान चुके थे कि उनकी प्रधानमंत्री की गोली मारकर हत्या कर दी गयी है।

जिन लोगों ने प्रधानमंत्री की हत्या की खबर बी० बी० सी० से सुनी उनमें श्रीमती गाँधी के इकलौते जीवित बेटे राजीव भी थे। 31 अक्तूबर को वे कलकत्ता के पास हुगली क्षेत्र में इन्दिरा कांग्रेस के प्रचार में लगे थे। एक पुलिस दस्ते ने उनका काफिला रास्ते में रोककर उनसे कहा कि वे फौरन दिल्ली लौट जाएँ, क्योंकि वहाँ कोई बहुत गंभीर घटना घट गयी है। राजीव गाँधी कार से हेलिपैड तक गये जहाँ हेलिकॉप्टर से वे कलकत्ता हवाई अड्डे के लिए रवाना हुए। वहीं उन्होंने बी० बी० सी० वर्ल्ड सर्विस के 15-30 बजे वाले समाचार-बुलेटिन में सतीश जेकब की रिपोर्टिंग सुनी कि श्रीमती गाँधी की हालत नाजुक है। कुछ ही मिनटों बाद सतीश जेकब ने लंदन को इस खबर की पुष्टि भी कर दी कि श्रीमती गाँधी की मृत्यु हो चुकी है। राजीव गाँधी हवाई जहाज से कलकत्ता से दिल्ली पहुँचे, जहाँ अन्य लोगों के अलावा उनके एक नजदीकी दोस्त, बम्बइया फिल्मों के सबसे बड़े सितारे अमिताभ बच्चन भी उपस्थित थे।

अमिताभ बच्चन के अनुसार, दिल्ली हवाई अड्डे पर उतरने के बाद राजीव गाँधी की पहली चिन्ता अपने परिवार को लेकर थी। 'सबसे पहले उन्होंने यह जानना चाहा कि क्या उनकी पत्नी और बच्चे सही-सलामत हैं? फिर उन्होंने सुरक्षा व्यवस्था के बारे में जानकारी चाही। हवाई अड्डे से हम कार द्वारा सीधे अस्पताल पहुँचे जहाँ उनकी माँ को दाखिल किया गया था। जब वे अस्पताल के गेट तक पहुँचे और विशाल भीड़ के कारण अन्दर नहीं जा पा रहे थे तो वे घूमे और मुझसे मेरी तबियत के बारे में पूछा। 'कैसे हो तुम?' उन्होंने कहा, 'जब मैं कलकत्ते में था तो वहाँ मुझे किसी ने बताया कि तुम्हारी बीमारी का कोई इलाज

उसे मालूम है। मैं चाहता हूँ कि तुम उससे मिलो। मैं तुमको उसके बारे में बतलाऊँगा।' यह एक विलक्षण बात है कि अपने साथ इतना सब घट जाने के बाद भी वे बगल में खड़े आदमी के बारे में, अपने दोस्त के बारे में सोचने में समर्थ थे। उनकी चेतना टूटी-बिखरी नहीं थी और वे अब भी अपने दोस्त के बारे में सोच सकते थे।

एक खबर थी कि जब पहली बार अपनी माँ की मृत्यु की खबर राजीव गाँधी ने सुनी थी तो वे रो पड़े। लेकिन राजीव इससे इनकार करते हैं: 'कुछ अखबारों और पत्रिकाओं में कहा गया कि जब मैंने यह खबर सुनी तो मैं भावावेश में चीखने-चिल्लाने लगा। यह सब बकवास है। मैं बहुत दुखी था लेकिन मैं अपनी भावनाओं को इस ढंग से कभी व्यक्त नहीं करता'''उड़ान शुरू होने के समय मैं पायलटों के साथ इंडियन एयर लाइन्स के जहाज की काकपिट में बैठा था। पहले जब मैंने यह सुना (कि श्रीमती गांधी नहीं रहीं) तो मैं बाहर आया और दीक्षित जी (उमाशंकर दीक्षित, पं. बंगाल के वर्तमान राज्यपाल) और दूसरों को यह बताया और बस उनसे एक सीट की दूरी पर बैठ गया।'[1]

श्रीमती गांधी भारत की पहली प्रधानमंत्री थीं जिनकी हत्या हुई, लेकिन अपने कार्यकाल के भीतर ही मरने वाली वे तीसरी प्रधानमंत्री थीं। जब उनके पिता पंडित नेहरू और उनके उत्तराधिकारी लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु हुई थी तो वरिष्ठ मंत्री को ही तब तक के लिए अंतरिम प्रधानमंत्री के रूप में शपथ दिलायी गयी थी, जब तक कांग्रेस दल ने अपने नये नेता का चुनाव नहीं कर लिया। इस बार तत्कालीन वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी, जो उस दिन राजीव गाँधी के साथ चुनाव-प्रचार में थे, के साथ सभी वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं ने तय किया कि उत्तराधिकार का निर्णय तुरन्त होना चाहिए। नतीजतन इस 39 वर्षीय भूतपूर्व पायलट को, जिसका राजनीतिक अनुभव महज चार साल का था, उसी शाम राष्ट्रपति भवन के दरबार हाल में भारत के सिख राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह द्वारा प्रधानमंत्री पद की शपथ दिला दी गयी। हालांकि विपक्षी नेताओं ने परम्परा के इस उल्लंघन की आलोचना की, लेकिन बाद में यह एक बुद्धिमानी-भरा फैसला प्रमाणित हुआ।

श्रीमती गांधी ने जानबूझकर अपनी पार्टी के नेतृत्व का सफाया कर दिया था। उन्होंने कभी अपने किसी प्रतिद्वन्द्वी को बर्दाश्त नहीं किया। इसीलिए उनकी मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी में इस क्षमता का कोई भी नेता नहीं था जो भारत को आने वाले खतरनाक और अनिश्चितता से भरे दिनों में नेतृत्व दे सके। स्थिरता को बनाये रखने की मात्र आशा थी—नेहरू/गाँधी खानदान का करिश्मा; और सरकार में किसी पद पर न होने के बावजूद, राजीव उस शाही खानदान के उत्तराधिकारी थे।

श्रीमती गांधी की मृत्यु के बाद शाम को आल इंडिया इंस्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेज को जाने वाली मुख्य सड़क पर सिख-विरोधी दंगे भड़क उठे। दूसरे दिन लगने लगा जैसे पूरा हिन्दुस्तान आग की लपटों में जल रहा हो। शायद एक मात्र प्रांत जो इस सांप्रदायिक पागलपन से बचा रहा वह था सिखों का ही अपना राज्य —पंजाब। वहाँ के हिन्दू आशंकित थे कि सिख अब बदले की कार्रवाई करेंगे, लेकिन भारी तादाद में सेना की मौजूदगी और कुछ सिख नेताओं की जिम्मेदार भूमिका के कारण यह प्रतिहिंसा नहीं हो पायी।

राजधानी में दो दिनों तक गुंडों के गिरोह, जिनकी अगुआई अकसर स्थानीय कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने की, हत्या, आगजनी और मनमानी लूटपाट करते सड़कों पर घूमते रहे। कुछ घटनाओं में तो पुलिस भी शरीक रही और कुछ जगह उसने आँख फेर ली। रेलों में यात्रा करते सिख मुसाफिरों के कत्लेआम की खबरें विभाजन के दौर की अशुभ याद दिलाती थी। पुलिस चौकियों और पुलिस मुख्यालय के बीच संपर्क इतना कम और गलत हो गया था कि पुलिस उच्चायुक्त को कुछ पता ही नहीं था कि कहाँ क्या हो रहा है। सिखों के खिलाफ नफरत की आग भड़काने की मंशा से कुछ हिन्दुओं द्वारा जानबूझकर फैलायी गयी अफवाहों के कारण हालत और भी खराब हो गयी। श्रीमती गांधी की हत्या पर सिखों द्वारा जश्न मनाने की बातें बढ़ा-चढ़ाकर फैलायी गयी, हालांकि इसमें शक नहीं कि कुछ सिखों ने ऐसा करके कुछ हिन्दुओं को भड़काने का काम किया। एक वरिष्ठ अधिकारी इस बात पर अड़ा रहा कि पंजाब से दिल्ली आने वाली एक ट्रेन, जो अभी-अभी साहिबाबाद पहुँची है, उसमें लाशें भरी पड़ी है। उसका कहना था कि इन मुसाफिरों को सिखों ने हलाल किया है। मैंने एक पत्रकार को सच्चाई जानने के लिए साहिबाबाद भेजा तो पता चला कि यह सब झूठ था।

इस डांवाडोल हालत के बीच सतीश जेकब ने दिल्ली में हुए बर्बरतम हत्याकांड का दृश्य देखा। शुक्रवार, 2 नवम्बर को वह यमुना नदी के ऊपर बने आई० टी० ओ० के पुल को पार करके त्रिलोकपुरी जाने वाली सड़क पर कार में जा रहे थे। त्रिलोकपुरी मजदूरों-कामगारों की एक नयी बड़ी बस्ती है। वहाँ के निवासियों के एक छोटे-से उत्तेजित समूह ने उनसे ब्लाक नं० 32 जाने के लिए कहा। उनका कहना था कि 'वहाँ कोई बहुत खौफनाक वारदात हुई है।' सतीश जेकब ने उस ब्लॉक के एक छोटे-से ईंट के बने मकान के बरामदे में तीन क्षत-विक्षत लाशें देखी। जब वह सँकरी गली में गुजर रहे थे, तो उन्हें लगभग हर घर के बरामदे में ऐसी ही लाशें दिखी। निश्चित रूप से वे लाशें सिखों की थी, क्योंकि उन्हें मारने के बाद उनके लंबे केश काट डाले गये थे और वे केश उन लाशों के पास ही पड़े हुए थे। सतीश जेकब को मिट्टी के तेल की गन्ध भी महसूस हुई, जिसका इस्तेमाल उन्हें जलाने के लिए किया गया था। कुछ को लोहे के सरियों से छेद-छेदकर मारा गया था।

का हर आदमी जानता है कि क्या हो रहा था। तुम्हें कैसे पता नही लगा?'

'साहब, यह सब इतना आसान नही है...।'

'शटअप ! तुम्हे गिरफ्तार किया जाता है !' डी. आई- जी. चिल्लाये और उन्होंने सिपाहियों को हुक्म दिया कि वे सब-इंस्पेक्टर सूर्यवीर सिंह को ले जायें।

इंडियन एक्सप्रेस के रिपोर्टर राहुल बेदी भी 2 नवम्बर की दोपहर त्रिलोकपुरी पहुँचे। उन्हे वहाँ के निवासियो ने बताया कि यह कत्लेआम 30 घंटे तक चला। एक स्थानीय पुलिस चौकी में उन्हे बतलाया गया कि इस इलाके में कोई खास वारदात नही हुई है। जब उन्होंने चौकी के अहाते मे खड़े एक ट्रक के बारे मे पूछताछ की, जिसमे क्षत-विक्षत और सड़ती हुई लाशें भरी हुई थी तो एक पुलिस अधिकारी ने कहा,'एस. एच. ओ साहब को इन मौतों के बारे में मालूम है, लेकिन अभी वे दिल्ली मे हैं। जब वे लौटेंगे तो बतायेंगे कि इनका क्या किया जाये।' बेदी ने पाया कि फौज भी मददगार साबित नही हो रही थी। उन्होने दो फौजी अधिकारियो को त्रिलोकपुरी मे हुई हत्याओ की इत्तला दी और इन्होंने वहाँ मदद भेजने का वायदा भी किया, लेकिन साढे तीन घंटे बाद भी वहाँ कोई फौजी सिपाही नही दिखायी पड़ा। यमुना-पुल पर तैनात एक वायुसेना अधिकारी ने कोई भी मदद करने से साफ इनकार कर दिया। शहर की मुख्य रिंग रोड पर तैनात सेना के एक सेकंड लेफ्टिनेन्ट ने जवाब दिया, 'किसी इमर्जेंसी मे दखल देने का कोई आदेश मेरे पास नही है।'

सरकार खुद यह स्वीकार करती है कि भारत-भर मे इन सिख-विरोधी दगो मे 2,717 से ज्यादा लोग मारे गये। ये लगभग सब-के-सब सिख थे। इनमें से कोई 2,150 सिख सिर्फ दिल्ली मे मरे। यहाँ पर दगाई ज्यादातर झुग्गी-झोंपड़ियो से उन इलाको मे लाये गये थे जहाँ उन्होंने हमला किया। कई सिखो ने बताया कि स्थानीय हिन्दू निवासियो ने अपने यहाँ शरण देकर उन्हे दगाइयो से बचाया। फिर भी सरकारी अनुमान यह है कि लगभग 50,000 सिख अपनी सुरक्षा के लिए अपने देश की राजधानी दिल्ली छोडकर पजाब भाग गये। इसके अलावा 50,000 सिखो ने सरकारी और स्वयसेवी सस्थाओं द्वारा लगाये गये शरणार्थी-शिविरों मे शरण ली।

किसी सरकारी जाँच के अभाव मे तीन प्रमुख नागरिक समितियो ने अपनी ओर से इन घटनाओ की स्वतत्र जांच की। उन्हें पता चला कि स्थानीय पुलिस व्यवस्था पूरी तरह से बैठ गयी थी और पाँच इलाको में वहाँ के स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने हिंसा को भड़काने का काम किया। नागरिकों की एक ऐसी ही समिति 'सिटीजन्स कमीशन' ने, जिसमे भारत के एक भूतपूर्व सर्वोच्च न्यायाधीश, भू०पू० गृह सचिव, राष्ट्रकुल के एक भू०पू० सचिव और विदेश मत्रालय के एक भू०पू० सचिव सम्मिलित थे, कहा, 'दिल्ली मे हुए इन अपराधो मे एक महत्त्वपूर्ण समानता

हर जगह दिखायी देती है। भले ही कुछ स्थानीय भिन्नताएँ रही हों, लेकिन एक स्तर पर सभी दंगों में मुख्य मंशा यही दिखायी देती है कि सिखों को सवक सिखाया जाये।' इस रपट में पुलिस की संदिग्ध और घोर असफलता, संदिग्ध राजनीतिक तत्वों द्वारा (दंगों को) हवा देने की करतूत, संचार माध्यमों (सरकार-नियंत्रित रेडियो और दूरदर्शन) की संदिग्ध भूमिका और प्रशासन तंत्र की उदासीनता, लापरवाही और सुस्ती के वारे में भी कहा गया है।

पी०यू०डी०आर० (पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स) और पी० यू० सी०एल० (पीपुल्स यूनियन फार सिविल लिवर्टीज) अपनी रिपोर्ट में ज्यादा स्पष्ट रही हैं। उनमें कहा गया है, 'त्रिलोकपुरी, मंगोलपुरी और सुल्तानपुरी जैसे क्षेत्रों में, जो दंगों के सवसे ज्यादा शिकार हुए, दंगाई भीड़ का नेतृत्व स्थानीय गुंडों और इंका नेताओं ने किया।'

राजीव गाँधी पर इन आरोपों की सरकारी जाँच के लिए खासा दवाव पड़ा। अन्ततः दंगों के पाँच महीने वाद अप्रैल में वे इसके लिए तैयार हुए। सिखों की धार्मिक पार्टी अकाली दल के सदस्यों का आरोप था कि राजीव गाँधी ने घटनाओं की सरकारी जाँच में देरी इसलिए लगायी कि इसके पहले वे संसदीय और विधान-सभाई चुनावों में जीत कर प्रधानमंत्री के रूप में अपनी स्थिति मजबूत वनाना चाहते थे। सिख राजनीतिज्ञों के अनुसार, राजीव गाँधी को डर था कि हिंसा की सरकारी जाँच की घोषणा का हिन्दू मतदाताओं पर उलटा असर पड़ेगा। शुरू में सरकार का कहना था कि "ऐसी कोई भी जाँच खतरनाक होगी, क्योंकि इससे 'पुराने जख्म फिर से हरे हो जायेंगे।' जव अन्ततः गृहमंत्री ने जाँच की घोषणा की तो इसे पंजाव में शान्ति और व्यवस्था लाने के लिए 'एकमुश्त रियायतों' का हिस्सा कहा गया। तव तक दंगों ने हिन्दू-सिख रिश्तों में एक गहरी खरोंच पैदा कर डाली थी। एम०जे० अकवर ने अपनी किताव 'इंडिया : दि सीज विद्इन' में लिखा है कि महात्मा गाँधी की एक हिन्दू द्वारा हत्या की घटना ने सारे देश को एक झटके में सांप्रदायिक उन्माद से मुक्त कर दिया था। श्रीमती गाँधी की दो सिखों द्वारा हत्या ने भी शायद सिख संप्रदाय को एक धक्के में उस गुस्से से आजाद कर दिया होता जो स्वर्ण मन्दिर पर सैनिक कार्रवाई के कारण पैदा हुआ था। लेकिन श्रीमती गाँधी की हत्या के वाद दिल्ली में हुए दंगों ने इस उम्मीद पर पानी फेर दिया।

3 नवम्वर को, अपनी माँ के अंत्येष्टि-संस्कार के शुरू होने से कुछ घंटे पहले अगर राजीव गाँधी ने खुद दंगा-पीड़ित क्षेत्रों का दौरा न किया होता, तो सिख-विरोधी हिंसा दिल्ली में न जाने और कव तक जारी रहती। इस दौरे से सम्भवतः प्रधानमंत्री को यह आभास हो गया था कि गम्भीर और समन्वित कार्रवाई ही अव सरकार का वर्चस्व पुनः स्थापित कर पायेगी।

सूचना मंत्री ने मुझे बतलाया कि स्वयं नये प्रधानमंत्री ने सेनाध्यक्ष से कानून और व्यवस्था को फिर स्थापित करने के लिए कठोर कदम उठाने को कहा था। दोपहर तक नयी दिल्ली के मध्य स्थित इंडिया गेट पर सैनिक वाहन मुस्तैद खड़े थे और सिपाहियों से भरे ट्रक सडकों पर गश्त लगा रहे थे। लेकिन श्रीमती गांधी की अंत्येष्टि के लिए सेना देर से आयी।

महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री की शव-यात्राओं में विराट संख्या में लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी थी, लेकिन जब इंदिरा गांधी का शव, जिसका चेहरा ढँका नहीं था, तोपगाड़ी में रखा हुआ धीरे-धीरे अंत्येष्टि स्थल की ओर बढ रहा था तो दिल्ली की सडकें लगभग वीरान थी। प्रधानमंत्री जहाँ कहीं भी जाती थी, लोग उनको देखने के लिए उमड पड़ते थे, लेकिन भय के कारण उनकी अन्तिम यात्रा में लोग शामिल नहीं हो पाये।

जब उदास और सौम्य राजीव गांधी अपनी माँ की चिता के पास खडे थे, उस वक्त यह चिंता उन्हें जरूर रही होगी कि माँ ने जो विरासत उनके लिए छोड़ी है, उसको वे कैसे सँभालें। वे अपनी माँ की कमजोरियों और सामर्थ्य दोनों के बारे में जागरूक थे और उन्हें यह पता था कि उनकी कमजोरी ही बहुत हद तक उनकी मृत्यु का निमित्त बनी। राजीव गांधी पहले से ही जानते थे कि उनकी माँ की सुरक्षा व्यवस्था में इतनी गम्भीर खामियाँ थीं कि उन्हें लगभग आपराधिक लापरवाही माना जा सकता है। मसलन, प्रधानमंत्री की सुरक्षा से सम्बन्धित पुलिस निर्देशों के अनुसार, जिस सुबह श्रीमती गांधी की मृत्यु हुई उन्हें सुरक्षा-कर्मचारियों के एक घेरे के भीतर होना चाहिए था, जबकि ऐसा नहीं था। उस दिन कायदे से सतवंत सिंह को प्रधानमंत्री निवास के भीतर ड्यूटी पर होना ही नहीं चाहिए था। पाकिस्तानी सरहद से लगे हुए सिख उग्रवादियों के गढ गुरदासपुर जिले में दो महीने की छुट्टी बिताकर वह हाल ही में लौटा था। इसलिए उसे तब तक बाहर रखना चाहिए था जब तक उच्चाधिकारियों को भरोसा न हो जाता कि उस पर उन सिख गाँववासियों के आक्रामक रुख का असर नहीं पड़ा है, जो यह मानते रहे हैं कि श्रीमती गांधी ने स्वर्णमन्दिर में सेना भेजकर घोर पाप किया है। सतवंत सिंह ने वहाँ पर अपने सहापराधी के साथ अपनी ड्यूटी इस मामूली बहाने के जरिए लगवा ली थी कि उसका पेट गड़बड़ है इसलिए उसे शौचालय के करीब रहना चाहिए। बेअन्त सिंह के बारे में भी वरिष्ठ अधिकारियों को पता था कि वह दिल्ली के एक प्रमुख गुरुद्वारे में सिख उग्रवादियों से मिलता था। इसीलिए उसे दिल्ली सशस्त्र पुलिस के प्रधानमंत्री-सुरक्षा दस्ते से हटा भी दिया गया था, लेकिन श्रीमती गांधी ने स्वयं उसकी पुन. नियुक्ति की जिद की थी। सतवंत सिंह के आचरण से खुद राजीव गांधी सशंकित हो उठे थे और एक बार उन्होंने उसे प्रधानमंत्री निवास के भीतरी सुरक्षा घेरे से हटवा दिया था। श्रीमती गांधी की

हत्या के चार महीने बाद एम० जे० अकबर से एक इंटरव्यू में राजीव गाँधी ने कहा, 'देखिये, अकसर रात में अकबर रोड (प्रधानमंत्री का दफ्तर) में मेरी बैठकें हुआ करती थीं और जब हम एक या दो बजे रात अपने रिहाइशी कमरों की ओर लौट रहे होते थे, तो कई बार मुझे उसके व्यवहार पर शक हुआ था। वह वहाँ पर अपनी बन्दूक (मेरी ओर) ताने खड़ा मिलता था। मैं सोचा करता था कि वैसे तो मेरे चारों ओर मेरे सुरक्षा कर्मचारी हैं, लेकिन अगर कहीं उसने घोड़ा दबा दिया तो इतनी कम दूरी से उसे कोई रोक नहीं सकता, वह बिलकुल पोजीशन में होता था। उसके बाद उसे वहाँ से हटा दिया गया था, लेकिन वह यह खेल रचाकर फिर वापस लौट आया।'[2]

श्रीमती गाँधी को ढेरों पत्र मिलते रहते थे जिनमें उन्हें और उनके परिवार के सदस्यों को जान से मार डालने की धमकी होती थी। उनकी हत्या की धमकियाँ हमारे बी०बी०सी० कार्यालय को भी भेजी गयी थीं, लेकिन जहाँ तक हमारी जानकारी है, इनकी जाँच-पड़ताल की कोई कारंवाई नहीं की गयी। इस तथ्य से कि इन दोनों हत्यारों को, जो इस घटना के सबसे महत्त्वपूर्ण गवाह भी थे, इंडोतिब्बत बार्डर पुलिस द्वारा गोली मारी गयी, बार्डर पुलिस के अनुशासन के बारे में कोई अच्छी तस्वीर नहीं उभरती। उन्हें प्रधानमंत्री की सुरक्षा में मदद के लिए तब बुलाया गया था जब उनकी जान के खतरे इतने गम्भीर हो गये थे कि उन्हें सिर्फ दिल्ली पुलिस पर छोड़ना उचित नहीं समझा गया। कुछ लोगों ने इस घटना की तुलना अमेरिका के राष्ट्रपति केनेडी के हत्यारे ली हार्वी ओसवाल्ड के साथ की, जिसे मार डाला गया था। श्रीमती गाँधी की हत्या के पुलिस नक्शे में, जिसे एक सिख असिस्टेंट ड्राफ्ट्समैन (अपराध) बलबीरसिंह ने बनाया, श्रीमती गाँधी के मकान की छत पर गोलियों के तीन निशान दर्शाये गये हैं। ये निशान संकेत देते हैं कि हत्या की साजिश बेअन्त सिंह और सतवन्त सिंह की योजना से भी कहीं अधिक गहरी और रहस्य-भरी थी। सतवंत सिंह के वकील पी. एन. लेखी के अनुसार, पोस्टमार्टम रिपोर्ट कहती है कि श्रीमती गाँधी की पीठ में भी सात गोलियाँ लगीं थीं। यानी उन पर गोलियाँ सामने से ही नहीं, पीछे से भी चलायी गयीं। लेकिन यह भी मुमकिन है कि उनकी पीठ पर लगी गोलियाँ भी इन्हीं दोनों हत्यारों द्वारा तब दागी गयी हों जब वे जमीन पर औंधी पड़ी थीं।

यह महज प्रधानमंत्री की सुरक्षा के लिए बनी व्यवस्था की शर्मनाक ढिलाई ही नहीं थी। श्रीमती गाँधी की मृत्यु के कुछ ही महीने बाद उनके प्रमुख सचिव ने इस्तीफा दिया, जब यह पता चला कि उनके स्टाफ के निचले कर्मचारी गोपनीय दस्तावेजों की फोटोकॉपी करवाकर उन्हें विदेशी दूतावासों को बेचा करते हैं। यह ढिलाई इसलिए आयी थी कि श्रीमती गाँधी भी पूरब के नवाबों-रजवाड़ों की कई कमजोरियों का शिकार थीं; उन्होंने अपने आपको चापलूसों से घेर रखा

या जो वहां बातें थे जो वह सुनना चाहती थीं, वह नहीं जो उन्हें सुनना चाहिए था। हालांकि वे लोकतांत्रिक पद्धति से चुनी गयी प्रधानमंत्री थी, लेकिन उनके चारों ओर पुराने दरबारों जैसा वातावरण था, जहाँ गप्पों और तिकड़मों को फलने-फूलने का भरपूर मौका होता है। राजीव गांधी इस बात से अच्छी तरह वाकिफ थे। एक बार मैंने उनसे पूछा कि उनकी माँ के दरबारियों की जो आलोचना चारों ओर हो रही है, उसके बारे में वे क्या सोचते हैं, तो उनका जवाब था : 'बिना काकस (मंडली) के काम नहीं चलता। हर व्यक्ति जो सत्ता में होता है, उसे एक काकस तो रखना ही पड़ता है। लेकिन सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि उस काकस में हैं कौन-कौन।'

राजीव गांधी यह भी जानते थे कि स्वर्णमन्दिर पर सैनिक कार्रवाई को टाला जा सकता था, अगर उनकी माँ पहले ही भारत के सबसे समृद्ध राज्य पंजाब में हिंसा, नफरत और सांप्रदायिक जहर फैलाने वाले सिख उग्रवादी संत भिंडरांवाले के खिलाफ सख्त कार्रवाई करती। इस 'संत' ने सिख मन्दिर को एक किले में तब्दील कर डाला था, जहाँ से वह भारत सरकार और भारतीय सेना की ताकत को चुनौती दे रहा था। प्रधानमंत्री के बेटे ने सार्वजनिक रूप से स्वर्ण मन्दिर में किलेबंदी करने के पहले ही भिंडरांवाले को गिरफ्तार कर पाने में सरकार की असफलता की आलोचना की थी, लेकिन श्रीमती गांधी ने उसे अनसुना कर दिया था।

आखिर श्रीमती गांधी ने पहले कार्रवाई क्यों नहीं की ? इसकी कई स्पष्ट राजनीतिक व्याख्याएँ हैं। अपने कार्यकाल के अन्तिम दौर में श्रीमती गांधी कांग्रेस पार्टी के पारम्परिक समर्थकों—मुसलमानों और हरिजनों या अछूतों—पर निर्भर रहना छोड़कर बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय को एक ठोस 'वोट ब्लॉक' में बदलने की कोशिश कर रही थी। जाति-पाँति के गहरे विभाजन के कारण पहले यह कभी सम्भव नहीं हो पाया था। इस नये राजनीतिक समीकरण के लिए उत्प्रेरक का काम कर रही थी समूचे हिन्दुस्तान में बहने वाली हिन्दू पुनरुत्थानवाद की लहर। हिन्दू अपने आपको 30 साल की धर्मनिरपेक्ष नीति का शिकार हुआ महसूस करने लगे थे जिसके तहत मुस्लिम पारिवारिक कानून सुरक्षित रखा गया था, सिखों को उनका अपना सूबा दे दिया गया था, हरिजनों या अछूतों को शिक्षा और रोजगार में विशेष सुविधाएँ और अवसर दिये गये थे और यह सब कुछ सवर्ण हिन्दुओं की कीमत पर। जैसा कि एम० जे० अकबर का कहना है - 'हिन्दू पुनरुत्थानवादियों ने कहना शुरू किया कि हिन्दू बहुसंख्या वाले हिन्दुस्तान में अब इस्लाम नहीं, खुद हिन्दू धर्म ही खतरे में है।'[3]

इसका असर इतना ज्यादा था कि स्वयं श्रीमती गांधी यह महसूस करने लगी थी कि अगर अल्पसंख्यकों को और तरजीह दी गयी तो अब व्यापक 'हिन्दू प्रतिरोध'

होगा। वजाय इसके कि वे इस प्रकार के पुनरुत्थानवाद को चुनौती दें, वे उसी पर सवार होकर जितनी दूर हो सके, जाना चाहती थीं। धर्म-निरपेक्षता से हटकर हिन्दू-वाद की ओर श्रीमती गाँधी की राजनीति के परिवर्तन को देखते हुए कुछ लोगों का कहना था कि उन्होंने भिंडराँवाले के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने में इसलिए देर की कि वे एक अल्पसंख्यक समुदाय को दी जाने वाली इन खुली चुनौतियों से खुश हो रही थीं। इसी देरी ने उन्हें हिन्दू समुदाय को जोड़ने में सहायता पहुँचायी।

इस सिद्धान्त के कुछ प्रवक्ताओं का मानना है कि श्रीमती गाँधी ने तभी कार्रवाई की, जब भिंडराँवाले की कारगुजारियाँ खुद उनके हितों के विरोध में जाने लगीं और जब खुद हिन्दू समुदाय अपने रक्षक के रूप में उनकी क्षमता को शक की निगाह से देखने लगा। कुछ अन्य लोग तो इससे भी ज्यादा सनक-भरा तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, दरअसल श्रीमती गाँधी हिन्दू समुदाय की प्रशंसा पाने के लिए सिख सम्प्रदाय को अन्तिम रूप से पराजित कर डालना चाहती थीं। 1984 के अन्त में लोकसभा के आम चुनाव होने वाले थे। कहा गया कि श्रीमती गाँधी कोई करिश्मा करना चाहती थीं, जिससे दुर्गा (हिन्दुओं की संहार-देवी) की उनकी छवि एक वार फिर स्थापित हो सके, जिसे उन्होंने तव अर्जित किया था जव 1971 में उन्होंने पाकिस्तानी सेना को हराकर पाकिस्तान को दो टुकड़ों में तोड़ डाला था।

श्रीमती गाँधी द्वारा पाकिस्तान पर दुवारा आक्रमण करने के आदेश की संभावना के वारे में अखवारों में वहस की जा रही थी। हमने कभी इसे गम्भीर संभावना नहीं माना। श्रीमती गाँधी तव तक गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की अध्यक्ष वन चुकी थीं और अपनी अन्तर्राष्ट्रीय छवि को लेकर इतनी सतर्क थीं कि पाकिस्तान के विरुद्ध विश्व जनमत जुटा लेने से पहले वे हमला नहीं कर सकती थीं। ऐसा ही उन्होंने 1971 में किया था। पाकिस्तान के फौजी शासक जनरल जिया इतने चतुर-चालाक थे कि वे उन्हें लड़ाई की कोई वजह ही नहीं देना चाहते थे। वल्कि उन्होंने ठीक इसका उलटा किया। उन्होंने 'शान्ति के आक्रमण' (पीस ऑफेंसिव) की रणनीति अपनायी और आलोचकों का तर्क है कि इसी वजह से चुनावी करिश्मे के लिए श्रीमती गाँधी को अपनी नजर पाकिस्तान से हटाकर कहीं और मोड़नी पड़ी—और उन्हें मिल गया पंजाव।

स्वर्णमन्दिर पर सैनिक कार्रवाई के वारे में जो प्रत्यक्ष रूप से इन्दिरा गाँधी की मौत का कारण वनी, सतीश जेकव और मेरे पास इससे कहीं कम डरावनी व्याख्या है। भले ही भारतीयों ने श्रीमती गाँधी को 'दुर्गा' या पश्चिमी प्रेस ने उनको 'लौह महिला' अथवा 'हिन्दुस्तान की सम्राज्ञी' कहा हो, लेकिन अगर पिछले 20 वर्षों को देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि श्रीमती गाँधी स्पष्ट फैसला

लेने वाली स्त्री नहीं थी। कोई भी कार्रवाई करने से वे हिचकती थीं और उन्होंने प्रत्याक्रमण तभी किया जब चारों ओर से उन्हें कोने में घेर डाला गया। उनके प्रधानमंत्रित्व काल में सबसे पहला गहरा संकट 1969 में आया, जब उन्होंने अपने पिता जवाहरलाल नेहरू के सहयोगियों द्वारा बाँधी गयी जंजीरों से अपने आप को आजाद करने के लिए कांग्रेस पार्टी को दो टुकड़ों में तोड़ डाला। शुरू के तीन सालों में उन्होंने इस कैद से आजाद होने की कोई खास कोशिश नहीं की थी। कार्रवाई उन्होंने तभी की जब ऐसा लगने लगा कि कांग्रेस के बूढ़े लोग उन्हें बाहर निकाल फेंकेंगे। तब उन्होंने यह काम इस राजनीतिक हिंसा के साथ किया कि पूरी कांग्रेस पार्टी को ही नष्ट कर डाला और उसकी जगह पर जड़-विहीन, खुदगर्ज सहयोगियों का एक ऐसा समूह तैयार किया जो पूरी तरह उनके करिश्मे पर निर्भर रहता था। यह एक ऐसा संगठन था जो किसी भी शासक के लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज—उसकी नीतियों के कार्यान्वयन और प्रभाव के बारे में सूचना दे पाने में बिलकुल नकारा था।

श्रीमती गाँधी ने बंगलादेश संकट को ठीक वक्त पर विलक्षण सूझबूझ से निपटाया था, लेकिन चार साल के भीतर-भीतर वह फिर जमीन पर आ गयीं। इस बार उनकी सरकार के भ्रष्टाचार और निकम्मेपन ने उनकी विश्वसनीयता को इस कदर बिगाड़ दिया कि जब वे खुद चुनाव में भ्रष्टाचार की दोषी पायी गयीं तो उनकी जर्जर पार्टी ने भी उनसे छुटकारा पाने की कोशिश की। श्रीमती गाँधी पर भ्रष्टाचार का यह आरोप करीब-करीब तकनीकी मुद्दों पर था और अगर वह अपनी सरकार की प्रतिष्ठा को इस हद तक गिरने से बचा पातीं तो इस्तीफे के लिए अपने ऊपर पड़ने वाले दबाव का भी सामना कर सकती थीं। जब उन्होंने जवाबी संघर्ष शुरू किया तो उन्होंने एक तरह से भारतीय लोकतंत्र के अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया—आपातकाल की घोषणा, संसद, न्यायालय और अखबारों का मुँह बन्दकर और अपने सारे प्रमुख विरोधियों को जेल में डाल कर। एक बार फिर श्रीमती गाँधी 'बहुत कम, बहुत देर से' के बजाय 'बहुत ज्यादा, और बहुत देर से' की मिसाल साबित हुईं।

अपने कुछ विरोधियों की अक्षमता और अकूत महत्वाकांक्षाओं के चलते ही श्रीमती गाँधी आपातकाल की नीतियों को सामने रखकर लड़े गये चुनाव में मतदाताओं के हाथों बुरी तरह पराजय की घटना से दुबारा उबर पायीं। लेकिन जब 1980 में वे दुबारा सत्ता में आयीं तब भी स्पष्ट निर्णय लेकर काम करने में उन्होंने आश्चर्यजनक हिचकिचाहट दिखायी।

1984 में उनकी प्रतिष्ठा फिर गिर गयी। उत्तर-पूर्वी राज्य असम में शरणार्थियों के अवैध प्रवेश से समस्या विकट होती चली गयी। असमिया जनता पर श्रीमती गाँधी द्वारा जबरन थोपे गये चुनाव के दौरान 3,000 लोगों का

कत्लेआम हुआ। भारत का हृदय कहे जाने वाले राज्य उत्तर प्रदेश में मुसलमान आजादी के बाद सबसे भयावह सांप्रदायिक हिंसा के शिकार हुए। पंजाब में लगा कि एक सनकी उग्रपन्थी का शासन स्थापित हो गया है, जिसे 'सिखों का अयातुल्ला खुमैनी' कहा जा रहा था। राजीव गाँधी द्वारा कांग्रेस पार्टी को फिर से जिन्दा करने की कोशिशों के बावजूद उपचुनावों के नतीजे श्रीमती गांधी की पार्टी के लिए बुरे ही साबित होते रहे। लगता था कि श्रीमती गाँधी अपने सामने खड़ी अनेक समस्याओं से निपटने के बारे में अनिर्णय की हालत में थीं।

अंग्रेज लेखिका और फिल्म आलोचक मेरी सेटन तीस वर्षों से श्रीमती गाँधी की अन्तरंग दोस्त थीं। कुमारी सेटन ने श्रीमती गाँधी को आखिरी बार स्वर्णमन्दिर पर सैनिक कार्रवाई के कुछ ही दिनों बाद देखा था। (1985 की शुरुआत में उनकी भी मृत्यु हो गयी।) एक पारिवारिक भोज के दौरान कुमारी सेटन ने श्रीमती गाँधी के स्वभाव में एक तरह की असहायता और थकान लक्ष्य की : 'वह एक ऐसी औरत की तरह दिखायी देती थीं जिसका दम उखड़ चुका हो।' कुमारी सेटन ने बाद में 'संडे टाइम्स' के इयान जैक को बताया : 'वह हमेशा गुपचुप किस्म की महिला थीं। वह बहिर्मुखी नहीं, अन्तर्मुखी थीं। तजुर्बों की जगह भावनाओं से प्रेरित होकर काम करती थीं, लेकिन अब ऐसा लगता था कि वे दरअसल बहुत टूट चुकी हैं और अवसाद से घिर गयी हैं। मैंने पिछले तीस सालों में उन्हें ऐसा कभी नहीं पाया। उनसे मिलकर मुझे लगा कि वे समझ नहीं पातीं कि किस पर भरोसा किया जाये और किसकी सलाह पर काम किया जाये। मुझे लगता है कि वे खुद अपने फैसलों पर शक करने लगी थीं। मैंने उनके लिए अपने भीतर गहरा दुख और सहानुभूति महसूस की।'

मेरी सेटन ऐसी अकेली व्यक्ति नहीं थीं जिसे लगा हो कि श्रीमती गाँधी की पकड़ धीरे-धीरे ढीली पड़ती जा रही है। संसद के सेंट्रल हाल में, जहाँ संसद सदस्य राजनीतिक गपशप के लिए अकसर इकट्ठे होते हैं, आगामी चुनावों में काँग्रेस की पराजय की सम्भावना पर बातें होने लगी थीं। अखबार भी श्रीमती गाँधी की सफलता के बारे में बहुत आशावादी नहीं थे। इसलिए हमारा मानना है कि एक बार फिर संकट में पड़कर ही श्रीमती गाँधी भिंडराँवाले के खिलाफ सख्त कार्रवाई करने पर विवश हुईं। त्रासदी यह थी कि इस बार 'बहुत ज्यादा और बहुत देर से' काम नहीं आया।

इन्दिरा गाँधी ने अपनी मृत्यु से उत्तराधिकार का फैसला कर दिया, लेकिन अपने बेटे के लिए उन्होंने एक ऐसा देश छोड़ा जो विभाजन के बाद से कभी भी इस कदर खंड-खंड नहीं हुआ था। श्रीमती गाँधी सिख पुराण पंथियों की चालों में फंस गयी थीं और उनमें से अब कई खुल्लमखुल्ला पृथकतावादी थे। भारत की सबसे समृद्ध और प्रगतिशील कौम सिखों को अपमान सहना पड़ा था। श्रीमती गाँधी की मृत्यु के बाद होने वाले दंगों के बाद वे सिख भी, जिन्होंने कभी भारत से अलग होने की बात नहीं सोची थी, सोचने लगे कि क्या वे सचमुच भारत के भीतर सुरक्षित हैं ?

2

सिख

आजादी के बाद दिल्ली की जनसंख्या बेतहाशा बढ़ी है। उस समय यह तीन लाख थी और अब 70 लाख के आसपास है। जनसंख्या की यह चौकानेवाली बढोतरी बँटवारे के दौरान पाकिस्तान से आये हिन्दू और सिख शरणार्थियों से शुरू हुई। 1984 तक ये दोनों समुदाय पूरे भाईचारे के साथ रहे थे। आजादी के बाद हिन्दू-मुसलमान झगड़े तो कई बार हुए, लेकिन हिन्दू-सिख टकराव की बात कोई सोच भी नही सकता था। ये दोनों एक ही समुदाय की तरह रह रहे थे।

आगरा जाने वाली मुख्य सडक पर, जहाँ हमारा कार्यालय है, इसका एक स्पष्ट उदाहरण दिखायी पड़ा। वहाँ मोटरगाड़ियों का एक खुला वर्कशाप, पेट्रोल स्टेशन और टैक्सी स्टैंड है। इस वर्कशॉप को एक हिन्दू भीमसेन पोल्ले चलाता है, लेकिन बिजलीवाले काम के लिए हमें एक सिख हरबस सिंह सैनी के पास जाना पडता है। हमारी कार के पंक्चर वगैरह जोड़ने का काम भी एक सिख जरनैल सिंह किया करता है। वहाँ पर टैक्सी ड्राइवर ज्यादातर चारपाइयो पर बैठे हुए ताश खेलते या गप्पें मारते हुए वक्त गुजारते हैं। सवारियाँ कम ही मिलती हैं। कुछ टैक्सी ड्राइवर हिन्दू हैं और कुछ सिख। सिख ड्राइवरो मे हरदेव सिंह, सुखदेव सिंह और बलदेव सिंह भिंडर, तीन भाई भी है। 1 नवम्बर, 1984 की सुबह श्रीमती गांधी की हत्या के ठीक दूसरे दिन पास ही भोगल और आश्रम के बाजारो की लूटपाट करने के लिए हिन्दू भीड टूट पडी। सिखो के मकानों और दूकानो से उठते हुए धुएँ को देखकर हरदेव सिंह ने सोचा कि इसके पहले कि भीड आगरा रोड पर पहुँचे, उसे अपनी टैक्सी वहाँ से हटा लेनी चाहिए। उसने जिंदगी मे पहली बार अपने केश और दाढ़ी कटायी जिससे कि वह सिख न समझा जाये। सुखदेव सिंह को अपना मजहब अपनी रोजी से भी ज्यादा प्यारा था, इसलिए उसने अपनी टैक्सी वहीं भाग्य भरोसे छोड़कर पास के एक मकान मे शरण ले ली। भीड ने उस दिन उस स्टैंड में तीन टैक्सियाँ जलायी।

किस्मत से तीसरा भाई बलदेव सिंह अपने गाँव पंजाब गया हुआ था। सो उसकी पगड़ी और दाढी बची हुई है। उसके परिवार में सबसे छोटा भाई हरदेव सिंह ही ऐसा था, जिसे अपना धर्म त्याग देने के लिए अपने माँ-बाप के ताने सुनने

पड़े। उसने कहा : 'अपनी दाढ़ी और केश कटा लेने के बाद मुझे बेहद दुख और ग्लानि हुई। उस शाम मेरे पिता ने मुझे देखा तो वे स्तब्ध रह गये। उन्होंने मुझे गालियाँ दीं। बुरा-भला कहा। मेरी माँ और दूसरे रिश्तेदारों ने जब हमारे गाँव मोमिनवाल में मुझे देखा तो उन्हें जैसे धक्का लगा, लेकिन मैं कर क्या सकता था? मुझे अपनी जान बचानी थी। बलदेव के जीजा और उसके दो चचेरे भाइयों को नन्दनगरी (पूर्वी दिल्ली) में जिन्दा भून डाला गया था। मेरे चचेरे भाइयों के दादा ने जब देखा कि भीड़ ने उसके दोनों पोतों को जलती हुई आग में झोंक दिया है, तो वह खुद भी अपने घर की छत से उस चिता में कूद पड़े।'

ये तीनों भाई अब अपने हिन्दू दोस्तों के साथ फिर उसी टैक्सी स्टैंड में आ गये हैं। हिन्दू मैकनिक, सिख इलैक्ट्रीशियन और पंक्चर जोड़ने वाला सिख, सब अपने काम में भी लग गये हैं, लेकिन उनमें से कोई भी उस दिन को नहीं भूल सकता जब हरदेव सिंह ने अपने अन्तिम गुरु के आदेशों का उल्लंघन करके अपने धर्म के प्रतीक त्याग दिये थे।

सिख अपने गुरुओं के बन्दे होते हैं। सिख शब्द का अर्थ है 'शिष्य'। सिख धर्म दस गुरुओं की परम्परा से पनपा। इनमें प्रथम गुरु, गुरु नानक के जन्म को देखा जाये तो एक बड़े धर्म के संस्थापक के रूप में उन्हें बहुत पुराना नहीं माना जायेगा। उनका जन्म 500 वर्ष पहले भारत के एक हिस्से पंजाब में उस वक्त हुआ था, जब वहाँ हिंसक राजनीतिक उथल पुथल का दौर था। भारत की राजधानी दिल्ली को लूटने या उस पर कब्जा जमाने के लिए आने वाली हमलावर सेनाओं से पंजाब बहुत पहले से परिचित था। गुरु नानक के जीवनकाल में ही भारत का पहला मुगल बादशाह गद्दी पर बैठा और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह आखिरी महान मुगल बादशाह औरंगजेब के एक साल बाद मरे।

गुरु नानक के जमाने में मुगलों का मजहब इस्लाम पोंगापंथी मुल्लाओं के हाथ में था। भारत का ऐतिहासिक धर्म, हिन्दू धर्म, जातपाँत में जकड़ा हुआ था और उस पर पुरोहितों और कर्मकांड का दबदबा था। लेकिन ऐसा भी नहीं था कि धार्मिक रूढ़ियों को चुनौती न दी गयी हो। कई ऐसे इस्लामी और हिन्दू आन्दोलन उभर आये थे, जिन्होंने कर्मकांड की जगह आध्यात्मिकता पर ज्यादा जोर दिया। गुरु नानक भी इस आध्यात्मिक परंपरा से गहरे प्रभावित हुए। आध्यात्मिकता धर्म की आत्मा की खोज है, इसलिए सभी धर्मों के अध्यात्मवादियों के बीच अनिवार्य समानताएँ हैं। आखिरकार जब कट्टर सिद्धांत के फंदे काट दिये जायें तो हर धर्म का मकसद मनुष्य की एक ही आकांक्षा पूरी करना है। और वह आकांक्षा है : एक ईश्वर पर आस्था रखने की, उसकी पूजा करने की और अपने जीवन को सार्थकता देने की। गुरुनानक आध्यात्मिक थे, इसलिए उन्होंने ऊपर से एक-दूसरे के बिलकुल विरोधी लगने वाले एकेश्वरवादी इस्लाम और बहुदेवतावादी

हिन्दू धर्म का अपने उपदेशों मे समन्वय किया। सिखों के पवित्र ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहब' में गुरु नानक द्वारा पंजाबी मे लिखे गये ढेरों पद हैं। बहुत-से पद उनके उत्तराधिकारी परवर्ती गुरुओं के भी हैं। लेकिन उसमें बहुत-से पद ऐसे हैं, जो हिन्दू या मुसलमान अध्यात्मवादियों (सूफियों, संतो) द्वारा भी लिखे गये हैं।

गुरु नानक ने पुनर्जन्म और कर्म की धारणा हिन्दू धर्म से ग्रहण की। हिन्दू विश्वासों के अनुसार मनुष्य की जिन्दगी उसके पिछले जन्म में किये गये कर्मो के *द्वारा ही संचालित होती है या कि जैसा गुरु नानक कहते हैं : 'आदमी वही काटता है जो वह बोता है और वही खाता है जो वह पैदा करता है।'* लेकिन उन्होंने हिन्दू जाति-व्यवस्था को पूरी तरह ठुकरा कर इस्लाम से भाईचारे का सिद्धांत लिया। एकेश्वरवाद पर उनकी अटूट आस्था को देखते हुए लगता है कि उन पर इस्लाम का गहरा प्रभाव था। दरअसल ईश्वर को एक मानना ही सिख धर्म का मूल उपदेश है। *वह शाश्वत है, अनिर्वचनीय है और हिन्दू देवताओं की तरह—बल्कि ईसाइयत* के प्रभु की तरह भी – कभी अवतार नही लेता। नानक ने ईश्वर को निरंकार (निराकार)कहा और उन्होने हिन्दुओ द्वारा देवी-देवताओ की मूर्तिपूजा की भर्त्सना की। लेकिन प्रतिमाएँ विभिन्न धर्मों मे अपने घुसने का रास्ता खोज ही लेती है। शायद यही वजह है कि सिख अपने पवित्र स्थलों और अपनी पवित्र पुस्तक (गुरु ग्रंथ साहब) पर इतनी गहरी श्रद्धा रखते हैं। गुरु नानक भक्ति और ध्यान के द्वारा ईश्वर को पाने मे विश्वास रखते थे। उनके पास पूजा-पाठ और कर्मकाड के लिए वक्त नही था। हिन्दुओ के एक सबसे पवित्र तीर्थ मे गुरु नानक की यात्रा की इस कहानी से भी यही प्रगट होता है।

> जब वे गंगा के किनारे स्थित हरिद्वार गये, तो उन्होंने वहां हिन्दुओ को अपने पुरखों की आत्माओ की शांति के लिए पूरब की ओर जल उलीचते हुए देखा। नानक ने अपने हाथों की अंजुली बनायी और पश्चिम की ओर पानी उलीचना शुरू किया। लोगो को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसा आदमी है जो परपरा के विरुद्ध, उगते हुए सूरज की ओर नही, सूरज के डूबने की दिशा मे अर्घ्य चढा रहा है ! नानक ने कहा कि मेरे गाँव मे मेरा जो खेत है उसे सीचने *के लिए मैं यह पानी फेंक रहा हूँ।* लोगों ने समझा कि यह पागल है और नानक से कहा : अरे मूर्ख, यह पानी कभी तेरे खेत तक नही पहुँच सकता, क्योकि वह बहुत दूर है। नानक ने जवाब दिया तुम्हारे पुरखे तो और भी ज्यादा दूर हैं। जब तुम्हारा फेंका हुआ पानी वहां तक पहुँच सकता है तो मेरा पानी मेरे खेत तक क्यो नही पहुँच सकता ? तुम मुझे मूर्ख कह लो, पर *तुम तो मुझसे भी बड़े मूर्ख हो।*[1]

गुरु नानक ने जातिप्रथा का भी कड़ा विरोध किया। उन्होंने 'गुरु का लंगर' खोला, जिसमें उनके अनुयायी जातपाँत का भेद खत्म करने के लिए एक साथ बैठ कर खाना खाते थे।

गुरु नानक और ब्राह्मणों के उपदेशों में कितना भी अन्तर क्यों न रहा हो, हिन्दुओं ने हमेशा सिखों को अपने धर्म का एक अविभाज्य अंग माना है। उनकी मान्यता है कि हिन्दू के रूप में जन्म लेने वाला कोई भी व्यक्ति चाहे जिस मत या धर्म को माने, आजीवन हिन्दू ही रहता है। सिखों ने हमेशा से अपनी अलग पहचान स्थापित करने के लिए जो जद्दोजहद की, उसका एक कारण यह भी है। उनको भय था कि कहीं हिंदू धर्म उनके धर्म को निगल न जाये।

गुरु नानक ने व्यापक यात्राएँ की थीं। वे हिन्दुओं और मुसलमानों के पवित्र तीर्थस्थलों में गये थे। लेकिन वे स्वयं पंजाबी थे, उन्होंने पंजाबी में ही लिखा और पंजाब में ही उनके उपदेशों ने अपनी जड़ें जमायीं। उनकी मृत्यु के 40 साल के भीतर-भीतर उनके अनुयायियों का एक अच्छा-खासा समूह तैयार हो गया, जिसे बादशाह अकबर ने भी मान्यता दी। बादशाह द्वारा दान में मिली जमीन पर सिखों ने अपने तीर्थ का निर्माण शुरू किया। इसी के चारों ओर उनका पवित्र अमृतसर शहर बसने लगा। अमृतसर का शाब्दिक अर्थ है—अमृत का सरोवर। इसका आशय उस पवित्र सरोवर से है जिसे चौथे गुरु ने खुदवाया था। स्वर्ण मन्दिर यानी हरि मन्दिर को इसी सरोवर के मध्य पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने बनवाया था। हालाँकि 'हरि' हिन्दू देवता विष्णु का नाम है, पर हरिमन्दिर हिन्दू मन्दिर से नितांत भिन्न है। इसकी नींव की शिला एक मुसलमान, लाहौर के सूफी संत-मियाँ मीर-ने रखी थी। इस मन्दिर में एक के बजाय चार दरवाजे थे और उनका अर्थ यह था कि इसके दरवाजे हिन्दू समाज की चारों जातियों के लिए खुले हुए हैं। मन्दिर में प्रवेश करने के लिए भक्तों को सीढ़ियों से उतर कर जाना होता था, ताकि उन्हें ध्यान रहे कि ईश्वर के निकट आने के लिए विनम्रता और विनयशीलता अनिवार्य है।

गुरु अर्जुन ने महसूस किया कि गुरु नानक के उपदेशों को प्रतिष्ठापित करने के लिए यह जरूरी है कि उनका एक प्रामाणिक संकलन तैयार किया जाये। उन्होंने ही सिखों की पवित्र पुस्तक 'आदि ग्रन्थ' का संकलन किया जिसे आगे चलकर 'गुरु ग्रन्थ साहब' के रूप में जाना गया। उन्होंने उसे स्वर्ण मन्दिर में रखा। अमृतसर और स्वर्ण मन्दिर सिख धर्म के लिए उसी तरह महत्वपूर्ण हैं जैसे मुसलमानों के लिए मक्का और काबा। यही कारण था कि भारतीय सेना द्वारा स्वर्ण मन्दिर पर हमले ने समूचे सिख समुदाय को हिलाकर रख दिया।

स्वर्ण मन्दिर के निर्माता गुरु अर्जुन देव सिखों के पहले शहीद भी थे। अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर से उनकी नहीं बनी। जहांगीर को शक था कि गुरु

अर्जुनदेव की उसके बागी बेटे के साथ साँठ-गाँठ है, इसलिए, उसने उन्हें फाँसी की सजा दे दी। उन्हें यातनाएँ देकर मार डाला गया। सिखों ने हमेशा से अपने शहीदों को अपार सम्मान दिया है और निश्चित ही यह एक भारी भूल थी कि गुरु अर्जुनदेव की शहादत की वर्षगाँठ के दिन स्वर्ण मन्दिर को भारतीय फौजों ने घेर लिया। बादशाह जहाँगीर भी गुरु अर्जुनदेव की विरासत की ताकत का अन्दाजा नहीं लगा सका था। उसने उनके बारे में लिखा था :

> ब्यास नदी के किनारे बसे गोविन्दवाल में सतई और निर्मलता के वेश मे अर्जुन नाम का एक हिन्दू था। उसने अपने हाव-भाव और कौशल से बहुत सारे सीधे-सादे हिन्दुओं और इस्लाम के कुछ अज्ञानी और मूर्ख अनुयायियों को भी अपने प्रभाव में ले लिया था और उन्होंने उसकी प्रशंसा के गीत गाने शुरू कर दिये थे। वे उसे 'गुरु' कहते थे और मूर्खों की यह जमात उस पर अपना सम्पूर्ण विश्वास प्रकट करने, उसे पूजने के लिए चारों तरफ से जुटने लगी थी। तीन या चार पीढियों तक (आध्यात्मिक उत्तराधिकारियों की) उन्होंने यह बाजार गर्म रखा। कई बार मेरे दिमाग में आया कि मुझे इस फालतू तमाशे को अब खत्म कर देना चाहिए या उसे इस्लाम के भीतर समेट लेना चाहिए।[2]

यह 'फालतू तमाशा' और 'मूर्खों की यह जमात' संसार के प्रमुख धर्मों में से एक बनी और जहाँगीर के मुगल साम्राज्य से भी ज्यादा लम्बी उम्र इसने पायी।

गुरु अर्जुन के छोटे पुत्र और उत्तराधिकारी हरगोबिन्द ने स्वर्णमन्दिर परिसर के भीतर दूसरा महत्वपूर्ण पूजा-स्थल बनाया: अकाल तख्त यानी शाश्वत सिंहासन। यह सिख धर्म की लौकिक शक्ति का प्रतीक माना गया। मुगल बादशाह की हुकूमत को चुनौती देने के लिए उन्होंने इसी अकाल तख्त मे अपने दरबार लगाये और अकाल तख्त की ऊँचाई बादशाह के सिंहासन से भी ऊँची रखी। गुरु अर्जुनदेव की शहादत ने सिख धर्म को ज्यादा जुझारू और सैन्यवादी धर्म बना दिया और दरअसल तभी से सिख अपने गुरु की अनुयायी सेना के रूप मे बदले।

सिखों के दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह ने इस सेना को घोर लड़ाकू शक्ति के रूप में सगठित किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को केश न कटाने और दाढ़ी रखने का निर्देश देकर सिखो की एक अलग शारीरिक पहचान बनायी। 1699 में उन्होंने हिन्दू धर्म मे विलीन हो जाने के खतरे और मुसलमान शासको के धार्मिक उत्पीड़न से सिखो की रक्षा के लिए अनेक कदम उठाये। उस वक्त तक मुसलमान शासक सिखों के पक्के दुश्मन बन चुके थे। गुरु गोबिन्द सिंह ने पजाब के आनन्दपुर में सिखों की एक विशाल सभा बुलायी और वहाँ उन्होंने सिखो के पंथ 'खालसा' (यानी शुद्ध सिख) की स्थापना की घोषणा की। खालसाओं की

अलग पहचान करने के लिए उन्होंने उन्हें आदेश दिया कि वे केश रखें, दाढ़ी न कटायें, कंघा, कड़ा, कच्छा और कृपाण धारण करें। इन पंच 'ककारों' से आज भी कट्टर सिखों की पहचान होती है। खालसा पन्थ स्वीकार करने वालों को गुरु ने आदेश दिया कि वे अपने नाम के अन्त में 'सिंह' (शेर) लगायें। महिलाएँ भी खालसा पंथ में आयीं और उनके नाम के अन्त में 'कौर' यानी राजकुमारी लगा। सिख धर्म ने हमेशा स्त्रियों की स्वतंत्रता का सम्मान किया है और आज राजनीति में कई महत्वपूर्ण सिख महिलाएँ हैं।

खालसा सिख सेना का खास दस्ता बना। उनका नारा था : 'राज करेगा खालसा।' आज तक सिख इस नारे को दोहराते हैं, जिसका अगर शाब्दिक अर्थ लिया जाये तो भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष देश में इसकी परिणति अंततः वफादारियों की टकराहट में ही होगी। सिख धर्म की एक केन्द्रीय धारणा यह है कि आध्यात्मिक और लौकिक सत्ता, धर्म और राजनीति अविभाज्य हैं। लेकिन खालसा कभी भी पंजाब में पूरी तरह से शासन करने या मुगल बादशाह को पराजित कर पाने में कामयाब नहीं हुए। खालसा पन्थ के जन्म से लेकर औरंगजेब की मृत्यु तक के आठ वर्षों में उन्होंने मुगल सेनाओं से कई घमासान पर अनिर्णीत लड़ाइयाँ लड़ीं। वे बार-बार मुगल सेनाओं से जूझते रहे।

1708 में जब गुरु गोबिन्द सिंह की हत्या हुई, तो उन्होंने अपने पीछे अपनी एक मिथकीय छवि छोड़ी—कवि, उपदेशक, पथ-प्रदर्शक, रणकौशल में दक्ष, साहसी निर्भय और कभी न झुकने वाला—जो सिखों की आने वाली पीढ़ियों की कल्पना को धार देती रह सकती थी। जब भिंडराँवाले के अनुयायियों से पूछा गया कि भिंडराँवाले में ऐसा कौन-सा आकर्षण था, जिसके कारण वे उसके साथ हैं, तो उनका जवाब था : 'वह बिलकुल दूसरे गुरु गोविन्द सिंह की तरह लगते हैं।' गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी मृत्यु के पहले यह निर्देश दिया था कि उनके बाद अब सिखों का कोई और गुरु नहीं होगा। जीवित गुरु की जगह 'गुरु ग्रन्थ साहब' ही सिखों को आध्यात्मिक दिशा निर्देश देगा, जबकि सांसारिक मामलों का निर्णय 'पंथ', खालसा सम्प्रदाय और उनके प्रतिनिधियों के हाथ में होगा।

गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों को बताया था कि उन्हें अपनी अस्मिता हर कीमत पर बचाये रखनी चाहिए। उनके जमाने में दाढ़ी और लम्बे केश उन सिखों की पहचान थे, जो मुसलमानों के विरुद्ध अपने धर्म की रक्षा के लिए मर मिटने को तैयार थे। भिंडराँवाले के लिए ये पाँच 'क' उन सिखों के प्रतीक बने जो हिन्दुओं से लड़ने के लिए तैयार थे।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक मुगल शासन का पतन होने लगा था और वह इतना कमजोर हो चुका था कि उसने पंजाब को अफगानिस्तान के शासक अहमद शाह अब्दाली के हाथों सौंप दिया। मुगल शासक अफगान हमलावरों से अपनी

राजधानी की भी रक्षा नहीं कर सके। लेकिन अहमद शाह अब्दाली ने सिखों को एक अलग ही तरह की कौम पाया। एक भारतीय इतिहासकार ने लिखा है: 'गुरु हरगोविन्द का सीधा-सादा अनाड़ी किसान अब खालसा का नियमित और हथियारों से लैस सिपाही बन चुका है। हथियारों के इस्तेमाल में दक्ष और छापामार लड़ाई के लिए प्रशिक्षित खालसाओं ने विजय का स्वाद भी पा लिया और उन्हें लूटपाट का चस्का भी लग गया था।[3] अफगानों को लूटने का तर्क उन्होंने अपने अन्तिम गुरु के इस कथन में पा लिया था कि 'लुटेरे को लूटना कोई पाप नहीं है।'

अपनी फौजों और सामान ले जानेवाली गाड़ियों पर सिखों के हमले से बौखलाकर अफगान शासक ने अमृतसर पर धावा बोल दिया। उसने ईश्वर की अलौकिक शक्ति के प्रतीक स्वर्ण मन्दिर को ध्वस्त कर डाला और सरोवर में हलाल किये हुए जानवरों के लोथड़े फिंकवा दिये। स्वर्ण मन्दिर के सामने स्थित अकाल तख्त, जो कि ईश्वर की लौकिक सत्ता का प्रतीक था, धूल में मिला दिया गया। लेकिन अविचलित सिखों ने अपने पवित्र स्थलों का दोबारा निर्माण किया और उन की तब तक सुरक्षा की, जब तक कि अफगानों की ताकत चुक नहीं गयी और अहमद शाह अब्दाली पंजाब से हमेशा के लिए हट नहीं गया। उस दिन से लेकर कभी भी सिख धर्म के पवित्र स्थलों में किसी फौज ने प्रवेश नहीं किया था। उसने प्रवेश किया जून 1984 में, जब श्रीमती गांधी ने अकाल तख्त को एक किले में तब्दील कर देने वाले उग्रपन्थी भिंडरांवाले को खत्म करने के लिए सेना भेजी।

एक साहसी अंग्रेज जार्ज थामस ने, जिसने वर्तमान हरियाणा राज्य के भीतर, दिल्ली से कुछ ही दूर हांसी में अपना एक निजी राज्य स्थापित कर लिया था, अफगानों का त्रास बने सिख योद्धाओं का प्रत्यक्षदर्शी ब्यौरा दिया है :

'अपने धर्म में बताये गये कर्तव्यों के अनुसार स्नान और प्रार्थना करके वे (सिख) अपनी दाढ़ी और बालों को कंघे से खूब सँवारते हैं। फिर अपने घोड़ों पर सवार होकर दुश्मन की ओर रवाना हो जाते हैं। दुश्मन के साथ आगे बढ़ने और पीछे हटने की इस भिड़त में वे तब तक लगे रहते हैं जब तक घोड़ों के साथ-साथ वे खुद भी थक कर चूर नहीं हो जाते। फिर वे शत्रु से कुछ दूर चले जाते हैं और कोई खेत दिखायी देने पर अपने घोड़ों को मनचाहा चरने के लिए छोड़ देते हैं। अपने लिए थोड़ा-सा चना-चबेना भूनते हैं और इस कम-खर्च आहार से उदर-पूर्ति करने के बाद अगर शत्रु कहीं पास ही हुआ तो दुबारा उस पर टूट पड़ते हैं। अगर दुश्मन दूर हट गया हो तो फिर वे अपने घोड़ों को अच्छा चारा-दाना देते हैं और खुद अपने लिए भी भोजन जुटाने में लग जाते हैं। अपने बचपन से ही वे कठोर जिंदगी के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें तम्बुओं में रहना पसन्द ही नहीं। इसकी बजाय हर घुड़सवार के पास दो कम्बल रहते हैं। एक खुद के लिए और

दूसरा अपने घोड़े के लिए। घोड़े की पीठ पर काठी के नीचे रखे ये कंवल, चनों से भरा थैला और पिछाड़ी के रस्से ही लड़ाई के दिनों में सिखों का असवाव होते हैं। उनके खाने-पकाने के बरतन टट्टुओं पर लदे होते हैं। इस ढर्रे की जिंदगी और उनके असाधारण फुर्तीलेपन को देखते हुए उनके फौजी कूच पर कोई ताज्जुव नहीं। यह विशेपता उन लोगों को विलकुल अकल्पनीय लगती है, जिन्होंने अभी तक यूरोपीय किस्म की लड़ाइयाँ हीं देखी हैं।'[4]

अफगानों के चले जाने से सिखों के लिए सारा मैदान खाली हो गया। उनका एक मिसलदार या सरदार रणजीत सिंह अंग्रेजों के अलावा सभी प्रमुख सैनिक शक्तियों के पतन का फायदा उठाकर 21 वर्ष की उम्र में पंजाव का राजा वन गया। रण-जीतसिंह ने यह प्रमाणित किया कि अगर चाहें तो सिख भी अपना साम्राज्य वना सकते हैं और शासन कर सकते हैं।

अनपढ़ और वचपन में चेचक के कारण एक आँख से काने रणजीत सिंह ने अपना साम्राज्य कश्मीर से चीन और तिव्वत की सरहद खैवर दर्रे तक और दक्षिण-पश्चिम में सिन्ध की सरहद तक फैलाया। अंग्रेजों ने, जो कि मुगल वादशाह को पेंशन देते हुए तव तक दिल्ली में जम चुके थे, रणजीतसिंह के साम्राज्य को दक्षिण में और अधिक फैलने से रोका। लेकिन उन्होंने कभी इस सिख राजा पर हमला करने का साहस नहीं किया। रणजीत सिंह के साथ अंग्रेजों का सम्वन्ध वरावरी का था। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड आकलैंड ने अपने कार्यकाल के अन्तिम दिनों में लाहौर के सिख दरवार की सरकारी यात्रा भी की थी।

इस समय तक रणजीत सिंह पूरव की एक शक्ति वन चुके थे, जिनके पास मुगल शासन के श्रेष्ठ दिनों जैसा ही भव्य दरवार था। लार्ड आकलैंड की वहन एमिली एडन ने लिखा कि 'सफेद गलमुच्छों और एक आँख वाले महाराजा विलकुल एक बूढ़े चूल्हे की तरह दिखायी देते थे।' उन्होंने यह भी लिखा है कि हालाँकि वे दोनों पैरो में मोजे पहनकर आते थे, लेकिन आराम से वैठने के लिए उनमें से एक उतार देते थे। एक पाँव पर हाथ रखे हुए वह कुर्सी में एक पैर पर दूसरा पैर चढ़ाकर वैठते थे। एमिनी एडन के भाई लार्ड आकलैंड का सैनिक सचिव विलियम ऑसवोर्न भी रणजीत सिंह से मिलने पर वहुत प्रभावित हुआ था :

> वह नजारा आश्चर्यजनक था। वगीचे के हर रास्ते पर सिपाही खड़े थे। और गद्दी के पीछे की जगह रणजीत सिंह के सेनापतियों की भीड़ रहती थी जिनमें सोने, जवाहरात से चमचमाते, तरह-तरह के रंगों और फैशन के कपड़ों और शस्त्रों से सजे-धजे कंधार, कावुल और अफगानिस्तान के लोग भी

होते थे।

सुनहरी कुर्सी पर पैर पर पैर चढ़ाकर, एकदम सफेद कपड़े पहने रणजीत सिंह बैठते थे। उनके शरीर पर कोई आभूषण नही होता था। सिर्फ कमर मे मोतियों की एक पतली-सी जंजीर होती थी और उनकी बाँह मे प्रकाश का पहाड़ इतिहास-प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा बँधा होता था (इस हीरे से निकलने वाली चमक रणजीत सिंह की अकेली आँख से निकलने वाली कौंध से अगर कम नही तो ज्यादा भी नही थी)। और इस तरह लाहौर का शेर शान से बैठा रहता था।[5]

रणजीत सिंह को नफीस जवाहरात का बहुत शौक था। उन्होंने कश्मीर मे अफगानिस्तान के शासक शाह शुजा को कैद से आजाद करने के एवज मे कोहिनूर हीरा प्राप्त किया था। महाराजा इसे सभी सार्वजनिक अवसरो पर पहनते थे और जहाँ भी जाते अपने साथ रखते थे। लेकिन कुछ ही अर्से बाद कोहिनूर पंजाब से चला गया। जब अंग्रेजों ने पजाब पर कब्जा किया, तो इसे ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने हासिल कर लिया। उनके लिए इसे तराशा गया, इस पर पॉलिश की गयी और कोहिनूर अपने पुराने आकार का आधा रह गया।

रणजीत सिंह को सिर्फ खूबसूरत जवाहरात का ही शौक न था। उन्होंने पंजाब कश्मीर और फारस की बहुत सी बेहद खूबसूरत औरतो को अपनी एक ऐसी रेजि-मेंट मे भर्ती किया था, जिसमे सिर्फ औरतें होती थी और जो वर्दी पहनकर उनके सामने नियमित कवायद करती थी। विलियम ऑसबोर्न ने उन्हे 'वीरांगनाएँ' कहा है। उसने लिखा है कि एक बार महाराज रणजीत सिंह ने हँसते हुए उससे कहा कि वे बस औरतों की इस रेजिमेंट को नही सँभाल पाये और इसने उन्हें इतना परेशान कर रखा है जितना उनकी बाकी सेना ने मिलकर भी नही किया।

दरबार मे समारोहों के लिए हाथी रखे गये थे, लेकिन महाराजा की ज्यादा दिलचस्पी घोड़ो मे थी। उनके अपने घोड़े इतने चकदक और अलकृत थे कि अंग्रेज सुरुचि के साथ तो वह लगभग अत्याचार लगता था। एमिली एडन ने लिखा है कि एक भव्य समारोह मे एक घोड़े ने रणजीत सिंह का मन मोह लिया और 'वे अपना राजपाट भूलकर खुली धूप मे दौड़ पड़े और जाकर घोड़े की रानें छू-छूकर जाँचने लगे।'[6]

लाहौर दरबार की चमक-दमक उस सशक्त साम्राज्य का जैसे साकार रूप था जो रणजीत सिंह के व्यक्तित्व और उनकी सेना की ताकत से बना था। उनके मंत्रियों मे हिन्दू और मुसलमान, दोनों शामिल थे। महाराजा इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि उनकी प्रजा और उनकी सेना मे गैर-सिखो की सख्या ज्यादा है। उनके प्रति आदर प्रकट करने के लिए वे सभी प्रमुख धर्मो के त्यौहार

मनाते थे। उनका यह व्यवहार गुरु गोविन्द सिंह के धर्म-सिद्धान्त से काफी हटकर था। अपनी निजी जिन्दगी में महाराजा रणजीत सिंह अधार्मिक व्यक्ति नहीं थे। मिसाल के लिए वह नियमित रूप से 'गुरुग्रन्थ साहब' का पाठ सुनते थे। लेकिन उन्होंने दसवें गुरु के मद्यनिषेध के उपदेश का पालन नहीं किया। वे खास तौर से तैयार करवायी गयी 'शर-आब'(आग के पानी) के खास शौकीन थे। वे ईमानदारी से स्वीकार करते थे कि वे शराब उत्तेजना के लिए पीते हैं और स्कॉच ह्विस्की तो खास तौर पर पसन्द करते हैं।

अपने मंत्रियो को नियुक्त करने में महाराजा रणजीत सिंह जितने धर्म-निरपेक्ष थे, उतने ही धर्म-निरपेक्ष अपनी बीवियों के चुनाव में भी थे। उनकी 22 में से कई बीवियाँ मुसलमान थीं। गवर्नर-जनरल आकलैंड का अविवाहित होना उनके लिए कुतूहल की चीज थी। इसी विषय को लेकर आकलैंड के साथ रणजीत सिंह की एक दिलचस्प बात चीत का उल्लेख एमिली एडन ने किया। गवर्नर-जनरल ने उनसे कहा कि उन्होंने शादी इसलिए नहीं की कि 'इंग्लैंड में सिर्फ एक ही बीवी रखने की इजाजत है और अगर बदकिस्मती से वह बुरी निकल गयी तो फिर उससे छुटकारा पाना मुश्किल है। रणजीत सिंह ने कहा कि इंग्लैंड का यह रिवाज तो बहुत बुरा है। हमारे यहाँ सिखों को तो 25 बीवियाँ रखने की इजाजत है और उनमें से कोई भी बीवी बुरी होने की हिम्मत नहीं कर सकती, क्योंकि ऐसा करने पर पति उसकी पिटाई कर सकता है। गवर्नर-जनरल ने जवाब दिया कि यह बहुत अच्छा रिवाज है। जब यहाँ से लौटकर इंग्लैंड जायेंगे तो इस रिवाज को वहाँ भी शुरू करवाने की कोशिश करेंगे।'[7]

महाराजा ने अपनी पत्नियों के भीतर गहरी निष्ठा पैदा की थी। राजधानी लाहौर पर विजय पाने के ठीक चालीस साल बाद जब उनकी मृत्यु हुई तो उनकी चार बीवियाँ और सात बाँदियाँ भी प्राचीन हिन्दू प्रथा—सती प्रथा का पालन करते हुए उनकी चिन्ता में जीवित जल गयीं, हालाँकि सती प्रथा को सिख गुरुओं ने वर्जित माना था।

इस सशक्त और धर्मनिरपेक्ष शासक के अधीन अकाल तखत के पुरोहितों का काम सिर्फ यह रह गया था कि वे अमृतसर के मन्दिर में अकसर लौट आने वाली हिन्दू रीतियों की रोकथाम करें। पुरोहित अपना सांकेतिक नियंत्रण जतलाने के लिए कभी-कभी महाराजा को सजा सुना देते थे। जैसे एक बार उन्हें इस अपराध के लिए सजा दी गयी कि महाराजा ने सिख धर्म स्वीकार न करने वाली मुस्लिम औरत से शादी की जिसने अकाल तखत पर दरबार में कई दिन से टँगी चद्दर चढ़ाने से इनकार किया। फिर भी उनके पास इस शिकायत का कोई आधार नहीं था कि महाराजा ने कभी अमृतसर की उपेक्षा की। अमृतसर फलता-फूलता व्यापारिक केन्द्र बनता जा रहा था, क्योंकि महाराजा ने व्यापारियों को वहाँ

बसने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अकाल तख्त की ऊपरी तीन मंजिलों का निर्माण करवाया और हरिमन्दिर की शैली को बदलकर उसे उस स्वर्णमन्दिर के रूप में निर्मित किया, जिसे आज हम जानते हैं। उन्होंने मन्दिर के लिए पाँच लाख रुपये का अनुदान दिया और अपने जमाने के सर्वश्रेष्ठ शिल्पकारों को, जिनमें से ज्यादातर मुसलमान थे, उसके निर्माण में लगाया।

रणजीत सिंह की सेना उनके साम्राज्य की रीढ़ थी। सिख उसकी बहादुरी को याद आज तक गर्व से करते हैं। रणजीत सिंह के पहले सिख सेना मुख्य रूप से घुड़सवार सेना थी, जिसके पास सिर्फ तोड़ेदार बन्दूकें थीं और वह बिना किसी नियम या अनुशासन के हमला करने और भाग जाने का तरीका अपनाती थी। सिख सैनिक पैदल सेना को पसन्द नहीं करते थे। बहुत जल्द रणजीत सिंह यह समझ गये कि यूरोपीय शैली की सेना के भारत आ जाने के बाद एक प्रशिक्षित और कुशल पैदल सेना ही जिसके साथ तोपखाना भी हो, सफल और समर्थ सेना बन सकती है। उन्होंने अपनी सेनाओं को ऊपर से लेकर नीचे तक दुबारा सगठित करना शुरू किया। इसके लिए उन्होंने यूरोप की ही शैली अपनायी। आर्थिक प्रोत्साहन देकर उन्होंने सिखों के मन में पैदल सेना के प्रति जो नापसन्दगी थी, उसे दूर करने की कोशिश की। रणजीत सिंह ने एलार्ड और वेंतूरा जैसे नेपोलियन की पराजित सेना के प्रख्यात पश्चिमी सैनिक अधिकारियों को पंजाब में अपनी सेना को प्रशिक्षण देने के लिए बुलाया। प्रोत्साहन की यह नीति कामयाब रही और रणजीत सिंह के शासन काल के समाप्त होने तक सिखों ने पैदल सेना में भर्ती होना स्वीकार कर लिया था और वे नियमित सेना का सबसे प्रभावशाली समुदाय बनने लगे थे।

रणजीत सिंह की मृत्यु के दस वर्षों के भीतर ही उत्तराधिकार को लेकर होने वाली कलह और झगड़ों का फायदा उठाते हुए अंग्रेजों ने सिख साम्राज्य को हराकर पंजाब पर कब्जा कर लिया। पंजाब पर अंग्रेजों के सौ वर्षों के शासनकाल में बहुत सारी ऐसी शक्तियाँ पनपीं जिन्होंने सिखों की अपनी अलग अस्मिता को नष्ट करने की कोशिश की।

सिख धर्म के सबसे सशक्त शत्रु हिन्दू पुनरुत्थानवादी स्वामी दयानंद सरस्वती थे। उन्हें हिन्दू प्रोटेस्टेंटवाद का सूत्र माना जा सकता है। उन्होंने 1875 में आर्यसमाज की स्थापना की। इसका नारा था – वेदों की ओर लौटो। यह हिन्दू जैसे उदार धर्म के भीतर एक विरल घटना थी। धर्मान्तरण कराने वाली शक्ति के रूप में *आर्यसमाजियों* का कहना था कि पंजाबी सिख और मुसलमान पहले हिन्दू थे और बाद में उनका धर्मान्तरण किया गया, इसलिए यह लाजिमी है कि उन्हें वापस मूल धर्म में शामिल कर लिया जाये।

उस समय के सामाजिक रिवाजों से आर्यसमाजियों का यह तर्क सही लगता था कि सिख वास्तव में हिन्दू ही हैं। इन दोनों समुदायों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध

होते रहते थे और हिन्दू परिवार अकसर अपने बड़े लड़के को सिख धर्म की दीक्षा दिलवाते थे। हिन्दू एक पीढ़ी में सिख धर्म को अंगीकार करते थे और दूसरी पीढ़ी में छोड़ भी देते थे। अमृतसर का मेहरा परिवार आज वहाँ एक सबसे बड़ा व्यापारी परिवार हैं, लेकिन इस परिवार के मौजूदा बुजुर्ग के दादा सिख थे। सात साल की उम्र में उनके सिर में बहुत फोड़े निकले। उस जमाने में नाई बाल काटने और चीरफाड़ करने का डाक्टरी काम भी किया करते थे। नाई ने सलाह दी कि बच्चे के सिर के सारे बाल काट दिये जायें, तभी इन फुंसियों का इलाज हो सकता है। उसके पिता ने, जो पहली पीढ़ी में सिख थे, बात मानी, बच्चे के बाल कटवाये और इस तरह मेहरा परिवार फिर से हिन्दू हो गया। हिन्दुओं के साथ गहरे पारिवारिक बंधनों के अलावा गुरुद्वारों के बहुत-से महंत सिख से अधिक हिन्दू थे, उन्होंने सिख धर्म में बहुत सारी हिन्दू मान्यताओं और रिवाजों को प्रविष्ट किया जैसे—छुआछूत, मूर्ति-पूजा और गाय की पवित्रता की धारणा।

पर ऐसे सिख नेता भी थे, जो इस सब को हिन्दू धर्म का छलपूर्ण खतरा मान कर उससे अपने धर्म को बचाने की पुरजोर कोशिश कर रहे थे। उस समय का सबसे महत्त्वपूर्ण सिख आंदोलन सिंह-सभा था, जिसे 1873 में कुछ सम्पन्न जमींदार और पुरातनवादी सिखों ने स्थापित किया था। उनका उद्देश्य सिखों को उनके अपने धर्म के प्रति जागरूक बनाना और शिक्षित करना, हिन्दू तौर-तरीकों से उन्हें छुटकारा दिलाना और अपनी सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाना था। उन्होंने हिन्दुओं को बदलकर सिख धर्म में लाने का अभियान शुरू कर आर्य समाज के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। उस समय सिख समुदाय यहाँ-वहाँ बिखरा हुआ था और मुख्य रूप से देहाती था। उनको एक-दूसरे से अलग करने वाली दूरियाँ सिर्फ देहात की कच्ची पगडंडियों की ही नहीं थीं। बल्कि जिस सिख धर्म का मकसद ही जाति-भेद को मिटाना था, स्वयं उस धर्म में जातिगत वर्गीकरण पैदा होने लगे थे। कई नये उदारवादी मत भी सिखों को खालसा पंथ से विमुख कर रहे थे। लेकिन सिंह-सभा आन्दोलन तेजी से फैलने लगा। उसने खालसा स्कूलों का एक ऐसा तंत्र बना डाला जहाँ पर 'गुरुग्रन्थ साहब' और दूसरे गुरु अंगद देव द्वारा निर्मित पंजाबी लिपि—गुरुमुखी का अध्ययन अनिवार्य था। 1902 में पहला सिख राजनीतिक संगठन बना—'चीफ खालसा दीवान'। यह संगठन विभिन्न सिंह-सभाओं के बीच एक तरह का संयोजक संगठन था, जिस पर वफादार अमीर-उमरा का नियंत्रण था।

सिखों को अपनी अलग पहचान बनाये रखने के लिए प्रोत्साहित करने में अंग्रेजों के निहित स्वार्थ थे। अंग्रेज-सिख लड़ाइयों में, जिनकी परिणति पंजाब पर अंग्रेजों के कब्जे में हुई, अंग्रेजों को पता लग गया था कि सिख कितने उम्दा सैनिक हैं, और अपनी फैसलाकुन हार के दस साल के भीतर ही सिख सैनिक विद्रोहों को दबाने में अंग्रेजों की मदद करने लगे। सिखों में इस आश्चर्यजनक परिवर्तन का

आंशिक कारण यह भी था कि ईस्ट इंडिया कंपनी के सैनिकों के प्रति उनके मन में सिर्फ घृणा ही थी, क्योंकि अंग्रेज अफसरों के नेतृत्व में इन्हीं सैनिकों ने सिखों को पराजित किया था। भारतीय सेना के बारे में लिखी गयी अपनी किताब में फिलिप मैसन का कहना है : सिखों ने 'पंजाब में पूर्वी सैनिकों की मौजूदगी का हमेशा विरोध किया, क्योंकि उनके मन में पलने वाली राष्ट्रीयता की मूल भावना पंजाबी थी, भारतीय नहीं। इसीलिए वे बंगाली सैनिकों से अपना पुराना हिसाब-किताब चुकाना चाहते थे और इस मौके पर इस बार अंग्रेज उनके साथ थे।'[8]

जब सैनिक विद्रोह (गदर) हुआ था तो यह कहना कठिन था कि सिख अंग्रेजों के प्रति वफादार रहेंगे। 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' में इस घटना के बारे में लिखते हुए कार्ल मार्क्स ने कहा कि 'सिख मुसलमानों की तरह ही ब्राह्मणों (हिन्दुओं) के साथ अपने को जोड़ रहे थे। इस तरह ब्रिटिश राज के खिलाफ सभी समुदायों के बीच एक सामूहिक एकता बड़ी तेजी से विकसित हो रही थी।' लेकिन मार्क्स गलत साबित हुए। जब अंग्रेजों को दिल्ली से बाहर कर दिया गया, और अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र अनिच्छापूर्वक विद्रोहियों के नेता बने और लगभग समूचा उत्तरी भारत उथल-पुथल में डूबने-उतराने लगा, तो गदर के वक्त अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर हेनरी कूपर को भी यह शक हुआ कि सिख इस विद्रोह में बागियों का साथ देंगे। फिर भी ब्रिटिश राज पर लोगों का विश्वास खत्म न हो जाये, इसलिए उसने यह किसी को बताया नहीं।

> 'परिस्थिति की गंभीरता को साफ-साफ समझाना जरूरी था। जबकि इन हालात पर किसी तरह फिलहाल काबू पाने की बात किसी मानवीय तरीके से ही सोची जा सकती थी···उत्तर से परिवहन के अचानक पूरी तरह ठप्प हो जाने के कारण अमृतसर में जनसंख्या 1,50,000 तक बढ़ गयी थी। इस उद्वेलित जनसमूह में एशिया के हर वर्ग, नस्ल, हर दर्जे और हर जलवायु के लोग शामिल थे। व्यापार का सारा कारोबार दिल्ली से ही पूरी तरह जुड़ा हुआ था। बड़े व्यापारी और पूंजीपति, जिनके लिए राजनीति अपनी पूंजी के उतार-चढ़ाव तक ही सीमित थी और जो अंग्रेजों का साथ देते आये थे, जब उन्हें यह पता चला कि विद्रोह के कारण अंग्रेजी राज के इतिहास में पहली बार ग्रैंड ट्रंक रोड पर आवा-जाही भंग हो गयी है, तो उनके होश उड़ गये। ···फिर भी अभी यह देखना बाकी था कि अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा का जो ज्वार हिन्दुओं और मुसलमानों में पहली बार फौरी एकता पैदा कर रहा था, क्या वह सिख समुदाय को भी अपने साथ ले लेगा? लेकिन पवित्र मन्दिर के आसपास फैल रहे स्कूलों और गुरुद्वारों के बावजूद अस्थिरता और गड़बड़ी के कोई लक्षण दिखायी नहीं दे रहे थे।[9]

अंग्रेजों के प्रति वफादारी का इनाम सिखों को मिला। सैनिक विद्रोह के वाद ब्रिटिश भारतीय सेना में वुनियादी वदलाव करके उसमें सिखों को महत्वपूर्ण जगह दी गयी। अंग्रेजों ने इस वात पर जोर दिया कि सेना में भरती होने वाला हर सिख सिपाही अपने धर्म के पाँचों 'क' धारण करे और 'गुरु ग्रंथ साहव' की वफादारी की शपथ ले। सैनिक अधिनियम के अनुसार :

> सिख विरादरी की धार्मिक शपथों में किसी भी तरह का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। अपने धर्म के अनुसार सिखों को दाढ़ी रखने और अपने सिर के वालों का जूड़ा वांधने की इजाजत रहनी चाहिए। इन मामलों में किसी तरह की दखलंदाजी का अर्थ सिखों की धार्मिक आस्था पर चोट पहुँचाना होगा और इसके नतीजे वहुत खराव निकलेंगे, इससे सिखों के मन में अविश्वास और घवराहट फैलेगी। यहाँ तक कि उन लोगों को भी, जिन्होंने सिखों की पारंपरिक ऊपरी विशेषताएँ अपना रखी हैं, ब्रिटिश सेना में भरती होने के वाद उन चीजों को छोड़ने की इजाजत नहीं मिलनी चाहिए।[10]

मंसूवे यही थे कि एक जुझारू कौम के रूप में सिखों की पहचान अलग उभारी जाये जिसकी सारी वफादारी अंग्रेजी राज के प्रति हो।

ब्रिटिश भारतीय सेना में सिखों की हिस्सेदारी पहले महायुद्ध के दौरान अपने शिखर तक पहुँच गयी, जैसा कि 'हिस्टरी ऑफ दि सिक्स' में खुशवंत सिंह ने लिखा है :

> 1915 में सिख सैनिकों की जो संख्या 35,000 थी, वह विश्व युद्ध के अन्त तक एक लाख तक पहुँच गयी थी। लड़ने वाली कुल सेना का यह करीव पाँचवाँ हिस्सा था। सिख सैनिकों ने यूरोप, टर्की, अफ्रीका के हर मोर्चे पर लड़ाइयाँ लड़ीं और अपनी वहादुरी से अपनी कौम का सम्मान वढ़ाया। अपने विशिष्ट पराक्रम के लिए भारतीयों को मिलने वाले कुल 22 पदकों में से सिखों ने 14 पदक पाये।[11]

महायुद्ध के वाद अंग्रेजी राज के प्रति सिखों की वफादारी में खिचाव पैदा होने लगा। महात्मा गाँधी के पहले सविनय अवज्ञा आंदोलन के आह्वान की प्रतिक्रिया पंजाव में वहुत जोशीली रही। जव पंजाव जाते हुए महात्मा गाँधी को रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया गया तो पंजाव में जितना हिंसक विरोध हुआ, उसकी परिणति भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय जलियाँवाला वाग के त्रासद नरसंहार में हुई।

13 अप्रैल 1919 को जनरल आर० ई० एच० डायर सेना की एक प्लाटून लेकर जलियाँवाला वाग पहुँचे। धूल से भरा और ईंटों की दीवाल से घिरा यह

मैदान स्वर्ण मंदिर से बस एक-दो मिनट पैदल की दूरी पर था। जनरल डायर उत्तर भारत के प्रसिद्ध शराब-निर्माता परिवार के थे। उस समय जलियाँवाला बाग में जनरल डायर द्वारा लागू की गयी निषेधाज्ञा का उल्लघन करते हुए बुलायी गयी राजनीतिक सभा में भाग लेने के लिए भारी संख्या में भीड़ उमड़ आयी थी। जलियाँवाला बाग के अहाते का सिर्फ एक प्रवेशद्वार था, जहाँ जनरल डायर ने एक फौजी टुकड़ी तैनात करके गोली चलाने का आदेश दिया। लगभग 379 लोग मरे और 1200 से ज्यादा घायल हुए। मरने वाले और घायल होने वाले लोगों में ऐसे निर्दोष देहाती सिखों की संख्या भी काफी थी, जो खालसा पंथ की वर्षगाँठ के दिन अमृतसर में बैसाखी का त्यौहार मनाने आये थे। इसके बाद कई हफ्तों तक कठोर मार्शल लॉ लागू रहा। अमृतसर की एक गली में, जहाँ एक अंग्रेज महिला को मारा-पीटा गया था, अंग्रेज सैनिकों ने भारतीयों को पेट के बल जमीन पर रेंगने के लिए मजबूर किया। जलियाँवाला बाग के नरसंहार और फिर मार्शल ला ने भारतीयों के साथ अंग्रेजों के रिश्ते को गिरावट के उस बिंदु तक पहुँचा दिया, जहाँ वह गदर के बाद कभी नहीं पहुँचा था। इससे चीफ खालसा दीवान के नाम पर भी कलंक लगा जिसने अंग्रेजों की कार्रवाई का समर्थन किया था। शुरू में जनरल डायर को अंग्रेजों ने हीरो बताया, और व्यापक सिख समुदाय की घृणा और क्षोभ को नजरअंदाज करते हुए अकाल तख्त और स्वर्णमंदिर के महंतों ने भी यही काम किया। अब तक सिखों के दो सबसे पवित्र मंदिर सरकारी नुमाइंदों के हाथ में आ गये थे। उन्होंने जनरल डायर को सरोपा भेंट किया और उसे खालसा पंथ में शामिल होने के लिए निमंत्रित किया। मोहिंदर सिंह ने अपनी किताब 'दि अकाली मूवमेंट' में इस अवसर पर स्वर्णमंदिर में हुई बातचीत को उद्धृत किया है :

> 'साहब', उन्होंने कहा, 'आपको जरूर सिख बन जाना चाहिए।' जनरल डायर ने उन्हें सम्मान के लिए धन्यवाद दिया, लेकिन कहा कि एक ब्रिटिश अफसर होने के कारण वह अपने सिर के बाल नहीं बढ़ा सकता। स्वर्णमंदिर का प्रबंधक (सरबराह) अरूर सिंह हँसने लगा, 'कोई बात नहीं, हम आपको इसकी छूट दे देंगे।' जनरल डायर ने दूसरी आपत्ति रखी, 'लेकिन मैं सिगरेट पीना भी नहीं छोड़ सकता।' महंत ने कहा : 'चलिए, हम आपको धीरे-धीरे इसे छोड़ने की अनुमति दे देंगे।' डायर ने जवाब दिया, 'अच्छा मैं इसका वादा करता हूँ। एक साल में एक सिगरेट कम करने की रफ्तार से।'[12]

जलियाँवाला बाग के नरसंहार और महंतों द्वारा जनरल डायर को सम्मानित किये जाने के परिणामस्वरूप गुरुद्वारों में सुधार के लिए आंदोलन फूट पड़े। 1920 से 1925 तक चलने वाले इन आन्दोलनों ने हमेशा-हमेशा के लिए अंग्रेजों के प्रति

सिखों की वफ़ादारी के भ्रम को समाप्त कर डाला।

इस आंदोलन का लक्ष्य सिख मंदिरों को भ्रष्ट हिन्दूकृत महंतों के हाथ से मुक्त कराना था। कई महंतों ने अपने आपको इन मंदिरों का कानूनी मालिक बनवा लिया था, जबकि वास्तव में वे सिर्फ उनके संरक्षक थे। 19वीं शताब्दी के अन्त में मंदिरों के भीतर होने वाली कारगुजारियों का ब्यौरा मोहिंदर सिंह ने अपनी पुस्तक में दिया है :

> मंदिरों में चढ़ावे के रूप में आने वाली कीमती चीजें सरबराह और दूसरे महंतों के घरों में जाने लगी थीं। चौहद्दियों में ज्योतिषी और पंडित भरे रहते थे और गुरुद्वारे के परिसर में खुलेआम मूर्तियों की पूजा होने लगी थी। उस काल के विवरणों के अनुसार वसंत और होली के त्यौहारों पर यह जगह चोरों और लफंगों के हुल्लड़ का अड्डा बन जाती थी। अश्लील किताबें धड़ल्ले से बिकती थीं और आसपास के मकानों में चकले खुले हुए थे, जहाँ इन पवित्र मंदिरों में आने वाली निर्दोष स्त्रियों को लंपट साधुओं, महंतों और उनके यार-दोस्तों की हवस का शिकार बनाया जाता था।[13]

1920 में प्रमुख सिखों ने इन भ्रष्ट महंतों के खिलाफ लोगों को एकजुट करना शुरू कर दिया। आन्दोलनकारियों को पहली बड़ी जीत तब हासिल हुई जब उनकी इस धमकी से कि स्वर्णमंदिर के प्रबंधक की नकली शवयात्रा निकाली जायेगी, प्रबंधक ने डर के मारे अपने पद से इस्तीफा दे दिया। अंग्रेज सरकार के दूसरे नुमाइंदों ने भी इस्तीफे दिये और स्वर्ण मंदिर आन्दोलनकारियों के कब्जे में आ गया।

इस सफलता ने दो ऐसी संस्थाओं को जन्म दिया जो पंजाब में आज तक सिख राजनीति को संचालित करती हैं—शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति और अकाली दल। शि० गु० प्र० स० (एस० जी० पी० सी०) भ्रष्ट महंतों के चंगुल से मुक्त किये गये स्वर्णमंदिर की देखभाल के लिए एक समिति के बतौर बनी थी। आगे चलकर यह एक तरह से सिखों की संसद बन गयी, जिसका पंजाब के सिख मंदिरों और उनकी विशाल वार्षिक आमदनी पर पूरा नियंत्रण था। इसी तरह अकाली दल, जो आगे चलकर पूरी तरह से एक राजनीतिक दल बना, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के हितों के लिए लड़ने वाले कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित और संगठित करने के काम में जुटा।

1925 में गुरुद्वारा आन्दोलन के सामने अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ा और उसने पंजाब के 200 से भी ज्यादा गुरुद्वारों को एस० जी० पी० सी० के अधिकार में दे दिया। यह संख्या बढ़कर अब 700 हो गयी है और उनके राजस्व से सिखों

की धार्मिक पार्टी अकाली दल का खर्च चलता है। 59 वर्षों बाद इसी अकाली दल के नेताओं ने भिंडरांवाले के सामने घुटने टेक दिये, जिसका नतीजा स्वर्णमन्दिर पर सैनिक आक्रमण के रूप में सामने आया।

गुरुद्वारा आंदोलन से सिखों को महात्मा गाँधी की अहिंसात्मक रणनीति (सत्याग्रह) का महत्व भी अच्छी तरह समझ में आया—ऐसी रणनीति, जिसका इस्तेमाल वे भिंडरांवाले के दौर में भारत सरकार के खिलाफ करने वाले थे। महात्मा गाँधी के अंग्रेज अनुयायी और पादरी सी० एफ० एंड्रूज ने अकाली सत्याग्रह के प्रति अंग्रेज सरकार की प्रतिक्रिया की एक चश्मदीद घटना का ब्यौरा देते हुए यों लिखा है :

> दो अंग्रेज अफसरों समेत लगभग दो दर्जन पुलिसवालों के सामने चार अकाली सिख खड़े थे। उनके सिर पर काली पगड़ी थी। जब मैं वहाँ पहुँचा तो वे धीरे-धीरे टहलते हुए पुलिसवालों की कतार से बमुश्किल एक गज की दूरी पर आकर मौन खड़े हो गये थे। वे बिलकुल स्थिर थे और जरा भी आगे नहीं बढ़ रहे थे। उनके हाथ जुड़े हुए थे और साफ था कि वे प्रार्थना कर रहे हैं। तभी बिना किसी उकसावे के, खामख्वाह एक अंग्रेज ने अपनी पीतल से मढ़ी लाठी आगे की ओर घुमायी। उसने लाठी इस तरीके से घुमायी कि उसकी मुट्ठी, जो लाठी थामे थी, प्रार्थना करते हुए अकाली सिखों की कंधे की हड्डी पर जाकर जोरों से लगी। यह एक अत्यन्त कायराना प्रहार था। मैंने जब इस कृत्य को देखा तो बड़ी मुश्किल से अपने पर काबू पा सका।''' प्रहार इतना तेज था कि अकाली सिख जमीन पर गिर पड़ा। वह लुढ़क पड़ा, फिर धीरे से खड़ा हुआ, और तभी दुबारा उसको वही सजा मिली। हर बार चारों में से जो भी सिख आगे बढ़ता, कभी अंग्रेज अफसरों तो कभी उनके अधीन पुलिसवालों के लगातार घूँसों से जमीन पर औंधा गिर जाता। इस दृश्य की क्रूरता और अमानवीयता को शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता। यह एहसास तब और गहरा हो जाता था, जब यह सोचा जाये कि इन प्रार्थनारत लोगों ने पहले ही यह शपथ ले रखी थी कि वे अपने शब्द और कर्म से मौन और शांत ही रहेंगे। ये अकाली सिख, जिन्होंने चलने के पहले स्वर्णमन्दिर में और बाद में गुरु का बाग में यह शपथ ली थी, ज्यादातर भारतीय सेना के सैनिक थे। उन्होंने युद्ध के दौरान, फ्रांस, फ्लैंडर्स, मेसोपोटेमिया और पूर्वी अफ्रीका में कई सैनिक अभियानों में अपनी सेवाएँ समर्पित की थीं। निश्चय ही इनमें से कइयों ने अपनी जान की बाजी लगाकर युद्ध में घायल अंग्रेजों की रक्षा की होगी। और अब वही सिख अंग्रेज अफसरों के हाथों मार खाकर जमीन पर पड़े हुए थे। और ये अंग्रेज अफसर उसी सरकार

के नौकर थे, जिसकी सेवा उन सिखो ने की थी।[14]

जब गुरुद्वारा आन्दोलन में अकाली कामयाब हुए तो उनके सामने एक दुविधा पैदा हुई। एक तरफ तो उन्हें महसूस हुआ कि महात्मा गाँधी और स्वतन्त्रता-आन्दोलन, दोनों का समर्थन करने के लिए वे वचनवद्ध हैं; दूसरी तरफ वे यह भी नहीं चाहते थे कि कांग्रेस पार्टी उन्हें निगल जाये। महात्मा गाँधी कांग्रेस को सभी भारतीयों की पार्टी के रूप में देखते थे—सिख, हिन्दू, मुसलमान और इस उप-महाद्वीप में फलने-फूलने वाले दूसरे धर्मों के लोगों की पार्टी। मुस्लिम लीग और जिन्ना की तरह कई अकालियों को यह भारत में हिन्दू राज स्थापित करने का प्रपंच नजर आया। इस एहसास के वाद अकाली दल को मुस्लिम लीग का स्वाभाविक सहयोगी दोस्त हो जाना चाहिए था, लेकिन मुसलमानों के प्रति सिखों की वितृष्णा वरकरार रही। सिखों ने वचपन से ही मुगल शासकों द्वारा अपने गुरुओं के उत्पीड़न की कहानियाँ सुन रखी थीं। इसलिए अधिकांश अकालियों ने महात्मा गाँधी और कांग्रेस पार्टी द्वारा चलाये जा रहे स्वतंत्रता-आंदोलन को अपना समर्थन दिया।

स्वतंत्रता-आंदोलन के महान शहीदों में से एक सिख भी था—भगतसिंह। उन्हें अंग्रेजों ने एक अंग्रेज पुलिस अधिकारी की हत्या के आरोप में फाँसी पर चढ़ा दिया था। उस अंग्रेज अधिकारी के वारे में कहा जाता था कि स्वतंत्रता-आंदोलन के एक दिग्गज लाला लाजपतराय की क्रूरतापूर्ण पिटाई में उसका हाथ था। लाठियाँ खाने के कुछ ही सप्ताह वाद लाला लाजपत राय की मृत्यु हो गयी थी। भगतसिंह उन तीन नौजवानों में से एक थे, जिन्होंने उनकी मौत का वदला चुका कर भारतीय जनता का दिल जीत लिया था। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है :

> भगतसिंह···अपने आतंकवादी कार्यों के कारण लोकप्रिय नहीं हुए, वल्कि इसलिए लोकप्रिय हुए कि उस क्षण ऐसा लगा जैसे उन्होंने लाला लाजपत राय और उनके माध्यम से समूचे राष्ट्र की मर्यादा को वचा लिया। वे एक प्रतीक वन गये।···और कुछ ही महीनों के भीतर समूचे पंजाव के गाँवों-कस्वों और एक हद तक सारे उत्तरी भारत में उनका नाम गूँजने लगा। उनके वारे में गीत गाये जाने लगे, और इस व्यक्ति ने जैसी लोकप्रियता पायी, वह सचमुच आश्चर्यजनक है।[15]

युद्ध छिड़ने से सिखों के सामने फिर एक दुविधा पैदा हुई। सशस्त्र सेना में अपने समुदाय की इतनी वड़ी संख्या के वावजूद वे कैसे सरकार से कांग्रेस पार्टी के असहयोग के आह्वान का समर्थन करें? कइयों ने ऐसा न करने का निर्णय लिया।

मास्टर तारा सिंह ऐसे ही सिख थे जो 1920 के बाद के वर्षों तक अकाली राजनीति मे छाये रहे। हिन्दू परिवार में जन्मे मास्टर तारा सिंह ने अपने स्कूल के दिनो में सिख धर्म कबूल किया था। बी. ए. की डिग्री लेने के बाद वे एक स्कूल में मास्टर हो गये। बहुत जल्द ही वे स्कूल छोडकर अकाली राजनीति मे आ गये, हालांकि उन्होंने अपने नाम के साथ शुरू मे लगे 'मास्टर' को कभी नही छोड़ा। मास्टर तारा सिंह युद्ध के मसले पर कांग्रेस से अलग हो गये और उन्होंने ब्रिटेन को समर्थन दिया। यहाँ तक कि अपनी पगड़ी के ऊपर लोहे का फौजी टोप पहनकर उन्होंने फोटो भी खिचवाया, ताकि सिखो को फौज में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।

अकाली दल के इस रवैये के बावजूद सिख सैनिक राष्ट्रीयता की भावना से प्रभावित थे। एक अपेक्षाकृत समृद्ध और उद्यमी कौम होने के कारण, जिसके सूत्र मजबूती से पजाब के गाँवो से जुडे हुए थे, वे फिलिप मैसन के अनुसार, 'भारतीय सेना के दूसरे समुदायो की तुलना मे राजनीतिक दृष्टि से ज्यादा जागरूक थे।'[16] 1940 में सेंट्रल इंडिया हार्स के विद्रोह मे यह प्रमाणित हुआ। विदेश मे नियुक्ति हो जाने के कारण सेंट्रल इंडिया हार्स का एक सिख स्क्वेड्रन बम्बई के लिए रवाना हुआ। बम्बई मे स्क्वैड्रन की ट्रेन चौबीस घटे तक के लिए साइडिंग में खडी कर दी गयी। इससे उन चार सिपाहियो को, जो देहाती कम्युनिस्ट आन्दोलन 'किरती लहर' से प्रभावित थे, स्क्वैड्रन के सिपाहियो को बगावत के लिए उकसाने का मौका मिला। स्क्वैड्रन ने विदेश जाने से इनकार कर दिया। उनका कोर्ट-मार्शल किया गया और उनके नेताओ को कालापानी की सजा भुगतने अडमान भेज दिया गया। इस घटना से सेना-मुख्यालय मे उथल-पुथल मच गयी और यहाँ तक कि सिख सैनिक इकाइयो को भग कर देने की बातें की जाने लगी। ध्यान रहे, स्वर्णमन्दिर पर सैनिक कार्रवाई के बाद सिख सैनिक फिर बगावत करने वाले थे।

आजाद हिन्द फौज मे भी सिखो ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। जापान द्वारा गिरफ्तार किये गये भारतीय सैनिको मे से आजाद हिन्द फौज को सिंगापुर मे एक सिख कैप्टन मोहन सिंह ने ही खडा किया था। मोहन सिंह के अनुसार, आजाद हिन्द फौज के 20,000 सैनिको मे से एक तिहाई सिख थे।

युद्ध जब समाप्त होने लगा तो अकाली नेताओ के सामने निराशाजनक भविष्य था। यह स्पष्ट हो चुका था कि अंग्रेज भारत को आजादी देने जा रहे हैं, लेकिन यह भी उतना ही साफ था कि वे मुसलमानो की अलग मुल्क की माँग को भी पूरा करने वाले हैं, या तो उन्हें प्रांतीय स्वायत्तता देकर या फिर पूरी आजादी देकर। एक सम्भावना यह भी थी कि पूरे पजाब पर मुसलमानो का शासन रहेगा। यह सिखो के लिए एक अभिशाप था। दूसरा विकल्प यह था कि पजाब का विभाजन कर दिया जाये। चूँकि सिख पूरे पंजाब में हर जगह बसे हुए थे, इसलिए यह उनके

लिए और भी बुरा था। इसका सीधा अर्थ यह था कि उनकी कौम दो टुकड़ों में बँट जायेगी और पंजाब के दोनों ही हिस्सों में वे दुर्बल अल्पसंख्यक के रूप में रहेंगे। यह सिख धर्म के अस्तित्व पर ही एक संकट था।

अकाली नेताओं ने भी अपने लिए अलग वतन की माँग करनी शुरू कर दी। लेकिन सिख नेताओं में इतना मतभेद था और वे इतने असमंजस में थे कि उन्हें अपने अलग वतन की माँग का ठीक-ठीक अर्थ भी पता नहीं था। यही वजह थी कि उनकी इस माँग को महज पाकिस्तान के निर्माण को रोकने की एक कोशिश के रूप में समझा गया। खुशवंत सिंह ने 'हिस्टरी ऑफ दि सिख्स' में लिखा है : 'एक अलग सिख राज्य के लिए सिख प्रवक्ता जिस ढंग से वकालत कर रहे थे उससे लगता था कि जैसे यह उनकी कोई वास्तविक और स्वाभाविक माँग नहीं है, बल्कि पाकिस्तान बनने के खिलाफ बहस का एक मुद्दा है। इस रवैये ने उनकी माँग पर गम्भीरता से ध्यान दिये जाने की स्थिति ही नहीं बनने दी।'

भारतीय इतिहास के लम्बे नाटक में जब अँग्रेजों की संक्षिप्त भूमिका समाप्त हुई, तो उन्होंने उसी सिख समुदाय को दो हिस्सों में बाँट दिया जिसे उन्होंने अपने शासन-काल में विशेष संरक्षण दिया था। लगभग 40 प्रतिशत सिख पाकिस्तानी हिस्से में थे और बाकी 60 प्रतिशत सरहद के इस पार भारतीय हिस्से में। भारतीय पंजाब में तेरह जिले रहे जिनमें पूरा जालन्धर और अम्बाला डिवीजन तथा अमृतसर शामिल थे। यह पूरे क्षेत्र का 40 प्रतिशत था। सिखों पर सबसे गहरा आघात था महाराजा रणजीत सिंह की राजधानी लाहौर का पाकिस्तान को दे दिया जाना।

विभाजन इतिहास की अभूतपूर्व विभीषिका लाया। पाकिस्तानी पंजाब में रहने वाले सिख इसके सबसे बड़े शिकार हुए, लेकिन उन्होंने इसका बदला पूर्वी पंजाब में चुकाया। कोई कभी नहीं जान पायेगा कि कितने लोग मारे गये, वैसे अभी तक 5,00,000 की अनुमानित संख्या को कोई चुनौती नहीं दी गयी है। नयी सरहद के दोनों ओर लाखों लोग बेघरबार हो गये। मुसलमान पूर्वी पंजाब छोड़ कर चले गये और हिन्दू-सिख पश्चिमी पंजाब से। अकाली नेता मास्टर तारा सिंह का घर पाकिस्तान में चला गया। इसी तरह बहुत-से ऐतिहासिक सिख तीर्थ-स्थल भी इस्लामी पाकिस्तान के कब्जे में आ गये, जिनमें गुरु नानक का जन्म-स्थान ननकाना साहब भी था। कांग्रेस पार्टी ने, जो अब सत्ता में आ गयी थी, सिखों के अपने स्वतंत्र राज्य की माँग का विरोध करने में उतनी ही निर्णायक भूमिका निभायी, जितनी मुस्लिम लीग ने। फिर भी पश्चिमी पंजाब से बहुत बड़ी संख्या में आने वाली सिख जनसंख्या ने पूर्वी पंजाब में उनके समुदाय को मजबूत बनाया। अब अकाली दल के नेताओं को अपना मुख्य उद्देश्य लगा, धर्म की सुरक्षा के लिए सिखों को अधिकार और सुविधाएँ दिलाना, क्योंकि उनका ख्याल था कि आजाद

हिन्दुस्तान हिन्दुओं द्वारा शासित राष्ट्र होगा।

सिखों की अस्मिता का यह संकट ही वह फोड़ा था जिससे भिंडरांवाले ने हिन्दुओं के विरुद्ध इतनी नफरत का जहर निचोड़ा। भिंडरांवाले के उग्रवाद की जड़ें ईश्वर से प्रेम या भय में नहीं, बल्कि हिन्दू धर्म से भय में थी।

3

सिखों का असंतोष

कांग्रेस के प्रति अपने सारे सन्देहों और विभाजनों में हुए भारी नुकसान के बावजूद सिख बहुत जल्दी सँभले और स्वतंत्र भारत में फलने-फूलने लगे। आजादी के बाद के वर्षों में शेष भारत के लिए वे जैसे शक्ति और सक्रियता के प्रतीक बन गये। वे देश की प्रमुख जातियों में सब से समृद्ध हो गये और पंजाब में प्रति व्यक्ति आय देश में सबसे ज्यादा हो गयी। उन्होंने पंजाब को सबसे विकासशील और कृषि के क्षेत्र में सबसे ज्यादा उत्पादक राज्य बनाया। वे जंगलों के कटने से खाली होने वाली दूसरे राज्यों की जमीनों में भी बसने लगे। ट्रैक्टर और दूसरी खेती की मशीनों ने बैलों और लकड़ी के हल की जगह ले ली। पहले सिनेमा, फिर ट्रांजिस्टर-रेडियो और आगे चलकर वीडियो ने सारे पंजाब में आधुनिकता की लहर फैलायी। सिख किसानों पर इसका असर पड़ा। पत्रकार एम० जे० अकबर का कहना है: 'सिख किसानों के उद्यम ने पंजाब को तीसरी दुनिया की आर्थिक बदहाली की दलदल से निकालकर कम-से-कम दूसरी दुनिया की सुविधाओं तक पहुँचा दिया।' वे सिख जो देश के दूसरे राज्यों में, बल्कि कहें, दुनिया के दूसरे देशों में भी पहुँच गये थे, उन्होंने वहाँ से धन भेजकर पंजाब की सम्पन्नता को बढ़ाने में और भी योगदान किया। सिख शुरू से ही घुमक्कड़ कौम रही है, इसलिए आजादी के पहले से ही भारत के लगभग हर कोने में उन्होंने अपने को जमा लिया था। वे बर्मा, पूर्वी अफ्रीका और कनाडा जैसे ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे देशों में भी प्रवासी होकर पहुँच चुके थे। आजादी के बाद वे भारत से विदेश जाने वाली आप्रवासियों की भीड़ की सबसे अगली कतार में थे और यह सब तब तक चलता रहा जब तक ब्रिटेन, कनाडा और आस्ट्रेलिया ने अपने दरवाजे बन्द नहीं कर लिये।

अब सवाल यह है कि सिख आखिर क्यों जिंदगी से इस तरह विरक्त हो गये कि उन्हें लगा, भारत सरकार से मुकाबला करना पड़ेगा? इसका छोटा-सा जवाब है कि सभी सिखों ने ऐसा महसूस नहीं किया। लेकिन सिख समुदाय का एक महत्वपूर्ण हिस्सा ऐसा था, जो अकाली दल से जुड़ा हुआ था, जिसने महसूस किया कि सम्पन्नता के साथ आने वाली आधुनिकता के कारण उनका धर्म खतरे में है और सिखों की अस्मिता पर संकट पैदा हो गया है। टेरीकाट के शर्ट, जीन्स,

मोटर साइकिलें और व्हिस्की पांच पवित्र 'क' के साथ नहीं चल सकते थे। आधुनिक जिंदगी की इतनी तेज रफ्तार है कि वहां सिर पर पगड़ी बांधने-साधने और कमर से नीचे तक झूलते बालों को धोने-सुखाने का वक्त नहीं है। नतीजा यह हुआ कि बहुत-से सिखों के लिए सेफ्टीरेजर आधुनिकता का प्रतीक बन गया और इससे पुरानपंथी सिख घबरा उठे।

और फिर हिन्दू धर्म का पुराना खतरा मौजूद था ही। पुरातनपन्थी सिखों के पास हिन्दू धर्म से डरने के कई कारण पहले से थे। एक करोड़ दस लाख की जनसंख्या वाला सिख समुदाय समूचे भारत की जनसख्या के दो प्रतिशत से भी कम है। अनुमानतः सिखों की कुल आबादी का 80 प्रतिशत पंजाब में ही रहता है, लेकिन वहां भी वे पूरी तरह से बहुमत वाली संख्या नहीं सिद्ध होते। दिल्ली जैसी दूसरी जगहों में भी श्रीमती गांधी की हत्या के बाद बड़ी कीमत चुका कर उन्होंने पाया कि वे एक नन्हें अल्पसख्यक है। दूसरी तरफ भारत में 80 प्रतिशत हिन्दू है। हिन्दू समुदाय भले ही जाति और दूसरे खानों में बुरी तरह से बँटा हो, लेकिन हिन्दू धर्म ने दूसरे धर्मों को प्रभावित करने और उन्हें आत्मसात कर लेने की विलक्षण क्षमता को प्रमाणित किया है। आखिर बौद्ध धर्म इसी कारण अपनी जन्मभूमि से ही गायब हो गया। हिन्दू धर्म ने बुद्ध को अपने ईश्वर विष्णु का अवतार बनाकर बौद्ध धर्म को अपने में विलीन कर लिया। जैन धर्म भी भारत में ही पैदा हुआ था और उसकी भी स्थिति बस जरा-सी बेहतर मानी जा सकती है। यह हिन्दू धर्म के प्रभाव का ही परिणाम है कि सिख समाज भी जाति के आधार पर विभाजित है। निचली जातियों के हिन्दू, जिनके पूर्वजों ने सिख धर्म को अपनाया था, अभी भी दूसरे सिखों द्वारा पूरी तरह से स्वीकृत नहीं हो सके हैं। ईसाई मिशनरियों ने भी हिन्दू धर्म को बड़ा मुश्किल धर्म पाया। हिन्दुओं को ईसाई बनाने में उन्हें थोड़ी-बहुत सफलता मिली भी है, तो भी वे इन ईसाइयों में जाति-पाँति और ऊँच-नीच की धारणा मिटाने में सफल नहीं हो सके हैं। पांडिचेरी के रोमन कैथोलिक गिरजाघरों में 1930 के दशक तक धार्मिक सभाओं में 'अछूत ईसाइयों' को दूसरे ईसाइयों से अलग करने के लिए उनके बीच परदे लटकाये जाते थे। फ्रांसीसी आर्कबिशप कोलास ने जब यह धमकी दी कि अगर ये परदे नहीं हटाये जाते तो वह सारे गिरजाघरों को बन्द कर देगा, तब भी कई गिरजाघरों ने बन्द हो जाना ही बेहतर समझा। यहूदी भी प्रथम विश्वयुद्ध तक हरिजनों को अपने धर्म में शामिल नहीं करते थे और रोमन कैथोलिकों के साम्राज्य गोआ में अब भी गिरजाघर जाति के आधार पर विभाजित है। यहाँ तक कि मुसलमान मौलवियों को भी इसके लिए लगातार संघर्ष करना पड़ा कि कहीं हिन्दू रीति-रिवाज उनके यहाँ प्रवेश न कर जायें।

आजादी मिलने के वक्त से ही अकाली नेता मास्टर तारा सिंह ने तय किया था हिन्दू धर्म और आधुनिकता द्वारा सिख धर्म के विनाश को टालने का एक ही रास्ता है कि सिखों को एक अलग कौम के रूप में वैधानिक मान्यता दिलायी जाये। उन्होंने भारत की नयी सरकार से कहा, 'अगर आप सच्चे राष्ट्रवादी हैं तो कृपया राष्ट्र के हित में, सिखों को सम्मान के साथ जीने का अधिकार दीजिए। अगर राष्ट्रवाद के नाम पर आपने सिखों की अलग अस्मिता को खत्म कर डालने की कोशिश की तो यह आपकी बहुत बड़ी भूल होगी। हमें अपना सम्मान प्यारा है। अगर हमारा अलग अस्तित्व नहीं रह पाया, तो हमारे पास गर्व करने के लिए अपना कुछ भी नहीं बचेगा...।'

दूसरे अकाली नेताओं ने भी हिन्दू सांप्रदायिकता के खतरों के प्रति सिखों को लगातार आगाह किया। 1952 में प्रमुख अकाली हुक्म सिंह ने खांटी धर्मनिरपेक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू तक की नीयत पर खुलकर हमला किया था। हुक्म सिंह ने, जो आगे चलकर धर्मनिरपेक्ष कांग्रेस पार्टी के सदस्य और फिर बाद में संसद के अध्यक्ष बने, लिखा था, 'अगर बड़े नरम अल्फाज में भी कहा जाये तो पंडित नेहरू हिन्दू अंधराष्ट्रवाद के सबसे अगुआ हैं। लोकतंत्र का गुणगान करने वाला और राष्ट्रीयता के बारे में धुआँधार लफ्फाजी करने वाला यह व्यक्ति दरअसल तानाशाह और गोएबेल्स की तरह झूठ बोलने वाला है। मुख्तसर में वह एक सियासी ठग, धोखेबाज और हिन्दुस्तानी प्रतिक्रियावाद का धूर्त सौदागर है।'

हिन्दू सांप्रदायिकता के विरुद्ध अभियान चलाने वाले सिखों के पास अपने पक्ष में अनेक प्रमाण भी थे। पश्चिमी पंजाब से आने वाले हिन्दू और सिख शरणार्थियों को दोबारा भारतीय पंजाब में स्थापित होने में कड़ी जद्दोजहद करनी पड़ी थी और इस जद्दोजहद में सांप्रदायिक पूर्वाग्रह भी उभरे। 1948 में पंजाब के प्रमुख अंग्रेजी अखबार 'ट्रिब्यून' ने लिखा :

> 'यह मानना सही नहीं होगा कि जिसे साम्प्रदायिक जहर कहा जाता है, वह अचानक ही पैदा हुआ है···हमें ईमानदारी के साथ यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह पहले से ही यहाँ मौजूद था और बढ़ता जा रहा था। इसकी मौजूदगी और इसकी बढ़ोतरी ने ही शरणार्थियों के पुनर्वास में गड़बड़ियाँ फैलायीं। विस्थापित लोग कहीं पर स्थायी रूप से इस भय के कारण नहीं बस रहे हैं कि कहीं उन्हें फिर विस्थापित न कर दिया जाये। साम्प्रदायिक भावनाओं से न सिर्फ पुनर्वास में देरी हुई है, बल्कि इसे एक गलत किस्म का संदर्भ भी मिला है। सरहद के पार से आने वाले दोनों समुदाय पुनर्वास के मामले में एक-दूसरे के साथ सहयोगी रुख अपनाने के बजाय प्रतिद्वन्द्विता का रवैया अपना रहे हैं। वे एक-दूसरे के प्रति भय से भरे हुए हैं और स्थानीय

आबादी से भी डरे हुए हैं।"

उग्र हिन्दूवाद ने 1951 में भारतीय जनसंघ के बनने के साथ ही एक राजनीतिक शक्ल ग्रहण कर ली। यह एक दक्षिणपंथी दल था, जिसने भारतीय सभ्यता के वैदिक स्रोतों पर ज्यादा जोर दिया। आर्यसमाज के प्रभाव के कारण इसकी सदस्यता पंजाबी हिन्दुओं में खूब फैली।

लेकिन अकालियों का दावा है कि खतरे से घिरे हुए सिख धर्म को पृथक पंजाबीभाषी राज्य के लिए चलने वाले आन्दोलन ने सबसे ज्यादा बल दिया। सन् 1953 में पंडित नेहरू ने भारत के विभिन्न हिस्सों से उठने वाली माँगों को देखकर राज्यों के पुनर्गठन के लिए आयोग नियुक्त किया था, जिसका काम भाषाई आधार पर अलग-अलग राज्यों की सीमाओं का पुनर्निर्धारण करना था। कुछ भाषाई समुदायों को इससे संतोष मिला, लेकिन अकाली संतुष्ट नहीं हुए। आयोग ने सिखों की पंजाबी सूबे की माँग को इस तर्क पर ठुकरा दिया कि पंजाबी भाषा पूरी तरह से हिन्दी से भिन्न भाषा नहीं है। इसके अलावा यह भी कि इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों का आम समर्थन इस माँग को प्राप्त नहीं है।

पंजाबी हिंदुओं का कहना था कि यह माँग सांप्रदायिक है। संयुक्त पंजाब की तीन प्रमुख भाषाएँ थीं—हिन्दी उर्दू और पंजाबी की विभिन्न बोलियाँ। इन तीनों में पंजाबी सभी समुदायों द्वारा, जिनमें हिन्दू भी शामिल थे, सबसे ज्यादा बोली जाती थी। लेकिन अकालियों का कहना था कि पंजाब की भाषा गुरुमुखी लिपि में लिखी पंजाबी ही होनी चाहिए। इस लिपि का आविष्कार सिखों के दूसरे गुरु ने धर्मग्रन्थों के लिए किया था। गुरुमुखी सिखों की धार्मिक संस्थाओं के बाहर ज्यादा नहीं सिखायी जाती थी। यही कारण था कि हिन्दुओं को यह कहने का मौका मिला कि गुरुमुखी लिपि की माँग सिखों की धार्मिक माँग है। पंजाबी सूबा आन्दोलन और भाषा तथा साम्प्रदायिकता के रिश्तों के कारण सन् 1961 की जनगणना में बहुत-से पंजाबीभाषी हिंदुओं ने अपनी मातृभाषा हिंदी घोषित की। भिंडराँवाले इन हिन्दुओं के बारे में गुस्से के साथ कहा करता था, 'ये वे लोग हैं जो अपनी माँ तक को छोड़ने के लिए तैयार हैं।' प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने जीवन के अन्त तक अलग पंजाबी सूबा बनाने का विरोध करते रहे। वे भी मानते थे कि अकालियों की यह माँग साम्प्रदायिक है। उन्होंने संसद में कहा था . 'इसमें कोई शक नहीं कि पंजाबी सूबा एक भाषाई मसले के रूप में नहीं पनपा है। बल्कि यह एक साम्प्रदायिक मसला है।' यह माँग साम्प्रदायिक रही हो या नहीं, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि अकालियों की महत्वाकांक्षा एक ऐसा राज्य बनाने की थी, जिस पर वे हमेशा शासन कर सकें। लेकिन वे यह भूल गये कि सभी सिख अकाली नहीं हैं और बिना हिन्दुओं के समर्थन के वे सिख-बहुल राज्य

में भी शासन करने की उम्मीद नहीं कर सकते।

मास्टर तारा सिंह ने राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा पंजावीभाषी राज्य की माँग को ठुकरा देने के फैसले को सिखों के 'विनाश का फैसला माना।' आयोग अपनी रपट प्रस्तुत भी नहीं कर पाया था कि उन्होंने पंजावी सूवे के लिए आन्दोलन छेड़ दिया। हर रोज सुवह-सुवह अकालियों का जत्था अकाल तखत पर जाकर अरदास करता था और वहाँ से आशीर्वाद लेता था; इसके वाद वे जुलूस वनाकर नारे लगाते हुए वाहर निकलते थे जहाँ खड़ी हुई पुलिस उन्हें गिरफ्तार कर लेती थी। 4 जुलाई 1955 की तारीख सिखों के इतिहास में इस घटना के रूप में दर्ज हो चुकी है कि उस दिन स्वर्णमन्दिर के ठीक सामने, सड़क के पार वनी सरायों में पुलिस पहली वार शिरोमणि गुरुद्वारा प्रन्वधक समिति और अकाली दल के दफ्तर पर छापा मारने के लिए अन्दर घुसी। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर ने पत्रकारों को वताया कि पुलिस ने दोनों सिख संगठनों के दफ्तरों पर अकाली आन्दोलन से संवद्ध फरार लोगों और घोषित अपराधियों को पकड़ने के लिए छापा मारा था। यह तारीख इसलिए भी सिखों के इतिहास में दर्ज हुई कि पुलिस ने अकालियों की भीड़ को तितर-वितर करने के लिए आँसू-गैस के गोले दागे। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवन्धक समिति के अनुसार ये गोले स्वर्ण मन्दिर परिसर के केन्द्र में वने पवित्र सरोवर के चारों ओर संगमरमर के फर्श पर गिरे और इस तरह पुलिस ने मन्दिर की पवित्रता भंग की। इस घटना के लगभग 20 साल वाद जव भिंडराँवाले और उनके समर्थकों ने स्वर्णमन्दिर परिसर में स्थित सरायों में अपना कार्यालय वनाया तो श्रीमती गाँधी ने पुलिस भेजने से पहले इसीलिए इनकार किया था कि इससे 'सिखों की भावनाओं को चोट लगेगी।' वहरहाल, पंडित जवाहरलाल नेहरू के समय में चलने वाले पंजावी सूवा आन्दोलन में अकालियों को एक छोटी-सी जीत तव हासिल हुई, जव पंजावी सूवे के पक्ष में नारों पर लगे प्रतिवन्ध को हटा लिया गया। लेकिन इसके वावजूद पंडित नेहरू अपने वुनियादी सिद्धान्त पर अटल रहे। उन्होंने लगातार माना कि पंजावीभाषी राज्य की माँग एक साम्प्रदायिक माँग है।

1960 में जाकर मास्टर तारा सिंह को यह लगने लगा कि पंजावी सूवे की माँग को लेकर एक दूसरे आन्दोलन के लिए अव सिख तैयार हो गये हैं। इसलिए 24 जनवरी को शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवन्धक समिति के 132 सदस्यों ने अकाल तखत पर शपथ ली। उन्होंने पंजावी सूवे को हासिल करने के लिए अपना तन-मन-धन समर्पित करने की प्रतिज्ञा की। इस वार आन्दोलन के नेता एक कदम और आगे वढ़ गये। उन्होंने अपना मुख्यालय स्वर्णमन्दिर परिसर के केन्द्रीय हिस्से के वाहर नहीं, वल्कि अकाल तखत में ही वना लिया। एक प्रमुख अकाली राजनीतिज्ञ अजीत सिंह सरहदी ने लिखा :

सरकार की दमनकारी कार्रवाइयाँ इस हद तक बढ़ी कि संयोजकों को मजबूरी में अपना आन्दोलन संचालित करने के लिए श्री दरबार साहब का चुनाव करना पड़ा। यहाँ से स्वयंसेवक बाहर जाते थे और गिरफ्तारियाँ देते थे। नेता अकाल तखत में होते थे। श्री दरबार साहब को शरणस्थल और मुख्यालय बनाने के इस फैसले की आलोचना अकाली दल के शुभचिंतक भी करने लगे थे, बिना यह समझे हुए कि सिख धर्म, इतिहास और परम्परा में गुरुद्वारों और खासकर स्वर्णमंदिर की धार्मिक-राजनीतिक हैसियत रही है।'[1]

इस तरह भिंडरांवाले के सामने अकाल तखत पर कब्जा जमाने के लिए पंजाबी सूबा आंदोलन की मिसाल पहले से ही मौजूद थी।

एक साल के बाद मास्टर तारा सिंह ने सरकार पर और दबाव डालने का निर्णय लिया। उन्होंने एक नाटकीय घोषणा की 'मैं मरना तो नहीं चाहता, लेकिन जिन्दा रहते हुए मैं यह भी नहीं देखना चाहता कि सिख पंथ अपमानित होता रहे और दूसरे सम्प्रदायों की तुलना में सिख कौम को ओछा माना जाये। 15 अगस्त से मैं आमरण अनशन की शुरुआत करूँगा और इसे तब तक जारी रखूँगा जब तक पंजाबी सूबे की माँग सरकार नहीं मान लेती।'

अफसोस की असल बात यह थी कि मास्टर एकदम मरना नहीं चाहते थे। उनकी धमकियों के आगे पंडित नेहरू दृढ़ रहे और आखिरकार 43 दिन पर तारा सिंह ने अपना अनशन तोड़ दिया। उनको अकाल तखत में बुलाकर उन पर आरोप लगाये गये और पाँच दिन तक प्रायश्चित करने की सजा दी गयी। उन्हें दंड स्वरूप सबसे घटिया काम करने के लिए कहा गया—स्वर्णमन्दिर में आने वाले भक्तों के जूते को साफ करने का काम। रावलपिंडी जिले का यह स्कूल-मास्टर जिसने स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान और आजादी के बाद 14 वर्षों तक अकालियों का मार्गदर्शन किया, उसका राजनीतिक जीवन इस अपमान के साथ खत्म हुआ। अपने जीवन के आखिरी छह वर्ष वह अकालियों से टूटे हुए एक छोटे दल के मुखिया-भर रह गये थे।

मास्टर तारा सिंह के बाद अकाली दल का नेतृत्व उनके प्रमुख सहयोगी सन्त फतहसिंह को मिला। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था, क्योंकि सन्त फतहसिंह पूर्वी पंजाब के किसानों की प्रभावशाली 'जाट' जाति के थे। संत फतहसिंह के नेतृत्व से आजादी के बाद शुरू हुई उस प्रक्रिया पर मुहर लगी, जिसका अकाली राजनीति में बहुत महत्व है, यानी अकाली नेतृत्व पर धीरे-धीरे जाटों का बढ़ता प्रभाव। गुरुओं के जमाने से ही पंजाब के बहुत सारे जाट किसान सिख बना लिये गये थे। वे महाराजा रणजीत सिंह की सेना की रीढ़ थे और बाद में अंग्रेजों की भारतीय सेना की भी मुख्य शक्ति थे। लेकिन आजादी मिलने तक उन्हें सिखों के

व्यापारिक वेर्गों, जिनमें से ज्यादातर पश्चिमी पंजाब से आये थे, के नीचे दबकर रहना पड़ा था। सन्त फतहसिंह के नेतृत्व में आखिरकार उन्हें अपना नेतृत्व मिला और अकाली पार्टी ऐसी पहली पार्टी बन गयी, जिसकी प्रमुख भूमिका थी पंजाब के किसानों यानी जाटों के हितों का प्रतिनिधित्व करना।

1964 में अपनी मृत्यु तक नेहरू पंजाबी सूबे की माँग के विरोधी ही रहे, लेकिन 1966 में उनकी बेटी श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने पंजाबी-भाषी राज्य की माँग को स्वीकार कर लिया। सन्त फतहसिंह ने उनसे साफ-साफ कहा कि उनकी माँग एक पंजाबी-भाषी राज्य की है, सिख राज्य की नहीं। निश्चित ही श्रीमती गाँधी 1965 में पाकिस्तान के साथ हुई लड़ाई में सिख सैनिकों की वीरता और खासतौर पर से पंजाब के सरहदी इलाकों में रहने वाले ग्रामीण लोगों की भूमिका से बहुत प्रभावित हुई थीं। 1965 में युद्ध-विराम हो जाने के बाद पंजाब की विधानसभा को सम्बोधित करते हुए केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि, पंजाब के राज्य पाल ने कहा :

'एक तरफ जहाँ हमारे सेना अधिकारियों और सैनिकों ने अपने साहस, वीरता और बलिदान से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ायी है, वहीं दूसरी ओर पंजाब की जनता —किसान, व्यापारी, मजदूर और यहाँ तक कि महिलाओं ने भी कुशलता, धैर्य और सहनशीलता जैसे दुर्लभ गुणों का प्रदर्शन किया है। उन्होंने सेना और पुलिस को अपना अमूल्य सहयोग दिया है। सभी नागरिक सेवाओं ने भी अपना कर्तव्य सराहनीय ढंग से निभाया है। ट्रक-ड्राइवरों, कंडक्टरों और क्लीनरों ने भारी दिक्कतों और अड़चनों के बावजूद दुश्मनों से जूझने वाली हमारी सेना, पुलिस और होमगार्ड्स को जिस तरह से अपनी गाड़ियों से सामग्री और रसद पहुँचायी, वह सचमुच तारीफ के काबिल है।'

कहने की जरूरत नहीं कि लगभग सभी ट्रक-ड्राइवर सिख थे।

श्रीमती गांधी जिस तरह की चालाक राजनीतिज्ञ थीं, उन्होंने भाँप लिया कि उनके पिता द्वारा छोड़े गये कांग्रेस पार्टी के दिग्गज नेताओं से संघर्ष में अकाली अच्छे सहयोगी हो सकते हैं। श्रीमती गाँधी 1966 में अपने पिता की मृत्यु के सिर्फ 20 महीने बाद सत्ता में लायी गयी थीं। उन्हें जनता की माँग पर प्रधानमंत्री नहीं बनाया गया था, बल्कि बनाने वाला था पार्टी के बुजुर्ग राजनीतिज्ञों का गुट, जिसे 'सिंडिकेट' कहा जाता था। सिंडिकेट के सभी नेता नेहरू के प्रधानमंत्रित्व-काल में अपने-अपने राज्यों के प्रभावशाली नेता भी थे। जब नेहरू के उत्तराधिकारी लालबहादुर शास्त्री की ताशकन्द में मृत्यु हुई तो सिंडिकेट के नेता यह फैसला नहीं कर पा रहे थे कि उसके किस सदस्य को प्रधानमंत्री बनाया जाये। उनकी निगाह नेहरू की बेटी इन्दिरा गाँधी पर पड़ी, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि अपनी अनुभव-हीनता के कारण वह उनके हाथों की कठपुतली बनकर रहेंगी। लेकिन उन्होंने

इंदिरा गाँधी का गलत मूल्यांकन किया। इंदिरा गाँधी ने बहुत जल्द यह जान लिया कि अगर राजनीतिक रूप से उन्हें जिन्दा रहना है तो विभिन्न राज्यों में कांग्रेस पार्टी के समूचे तंत्र पर सिंडिकेट का जो नियंत्रण है, उसे उसके हाथों से छीनकर सिंडिकेट को तोड़ना पड़ेगा। ऐसा करने के लिए इन्दिरा गाँधी को जितने मिल सकें उतने दोस्तों की जरूरत थी।

पंजाब बंदोवस्त के अंतर्गत हिन्दीभाषी क्षेत्रों से हरियाणा राज्य का निर्माण किया गया, जिसकी सरहदें दिल्ली तक हैं। हिमालय की तराइयों से एक और नया राज्य हिमाचल प्रदेश बनाया गया और शेष हिस्से से बना पंजाब। पंजाब में सिख अल्पमत में थे, यानी कुल आबादी का 56 प्रतिशत। लेकिन इस विभाजन का आधार धर्म नहीं, भाषा थी। पंजाब के निर्माण से सन्त फतहसिंह बहुत खुश हुए। ठेठ देहाती, सिख खुशमिजाजी से भरपूर और अविवाहित सन्त फतहसिंह ने कहा, 'आज मेरे घर एक खूबसूरत बच्चा पैदा हुआ है।'

पर पंजाबी सूबा सिखों की खोखली जीत ही साबित हुआ, क्योंकि सिखों के वोट बुरी तरह से बँटे हुए थे और वे पंजाब में अकेले सत्ता में आने की बात सोच भी नहीं सकते थे। अकालियों के पास सत्ता में आने का एक ही रास्ता था—हिंदू परस्त जनसंघ पार्टी के साथ सत्ता में साझेदारी। 1967 और 1969 के चुनावों के बाद संविद सरकारें बनाकर यह कोशिश की भी गयी। लेकिन ये सरकारें टिकाऊ साबित नहीं हुईं। यानी सिखों को अपना राज्य तो मिल गया, लेकिन इसका संचालन उनके हाथ में कभी नहीं आया। अपना जनसमर्थन बरकरार रखने के लिए उन्होंने सिखों के भीतर असन्तोष की भावना को लगातार जिन्दा रखा और सत्ता के बाहर रहते हुए वे आंदोलन की राजनीति चलाते रहे। पंजाबी सूबे के मामले में अपनी जीत के बाद भी अकालियों ने हमेशा अपने लिए आन्दोलन का रास्ता खुला रखा। पंजाबी सूबा बन जाने के कुछ ही महीनों के भीतर सन्त फतहसिंह ने फिर से आमरण अनशन शुरू कर दिया। इस बार मकसद चण्डीगढ़ को पंजाब के सुपुर्द कर देने के लिए श्रीमती गाँधी पर दबाव डालना था। विभाजन के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू के इस फैसले से कई सिखों को कष्ट हुआ कि अविभाजित पंजाब का दूसरा सबसे बड़ा शहर अमृतसर पाकिस्तान की सीमा के इतने करीब है कि उसे राज्य की राजधानी नहीं बनाया जा सकता। पाकिस्तान को लाहौर के बारे में ऐसा डर नहीं था, हालाँकि वह अमृतसर की तुलना में सरहद के ज्यादा करीब है और वह पाकिस्तानी पंजाब की राजधानी बना रहा। नेहरू ने फैसला किया था कि भारतीय पंजाब की राजधानी के लिए एक नया शहर चंडीगढ़ सीमा से काफी दूर बनाया जाये। यह नया शहर एक
के किनारे बसाया गया, जहाँ से शिमला की पहाड़ियाँ नजर आती
का वास्तुकार था ले कारबूजिए। उसने इस नये शहर को 'ग्रिड-पैटर्न' (

पर बनाया। बहुत-से लोग प्रशासनिक इमारतों को ले कारबूज़िए के सर्वश्रेष्ठ कार्यों में से मानते हैं। अमेरिका की नोरमा ईवन्सन ने लिखा है :

> इस नगर का सबसे उत्कृष्ट पक्ष ले कारबूजिए द्वारा निर्मित विशाल सरकारी इमारतों के परिसर में दिखायी देता है। ऐसा लगता है कि अपनी खामियों के बावजूद चंडीगढ़ ने दुनिया के सामने नागरिक स्थापत्य की एक सशक्त अवधारणा प्रस्तुत की है। इसी ने चंडीगढ़ को अन्तरराष्ट्रीय ख्याति दिलवायी और ले कारबूजिए के प्रशंसकों के लिए वह एक तीर्थस्थल जैसा बन गया।[2]

अतएव चंडीगढ़ एक मूल्यवान धरोहर थी और उसे पंजाब या हरियाणा को सौंपने के मुश्किल फैसले को श्रीमती गाँधी टालती रहीं। यह कहा गया कि फिल-हाल कुछ समय के लिए चंडीगढ़ केन्द्र-शासित क्षेत्र होगा और उसमें पंजाब और हरियाणा, दोनों की विधानसभाएँ तथा सचिवालय रहेंगे, हालाँकि यह समस्या का कोई स्पष्ट समाधान नहीं था।

सन्त फतहसिंह ने अपना पहला अनशन मकसद पूरा हुए बिना ही समाप्त कर दिया। फिर 1969 में एक वरिष्ठ गैर-अकाली राजनीतिज्ञ नेता दर्शन सिंह फेरुमान के सामने सन्त फतहसिंह की आभा धुंधली पड़ गयी। दर्शन सिंह फेरुमान ने चंडीगढ़ के लिए सचमुच मौत तक अनशन जारी रखा। जब सन्त फतहसिंह को यह लगा कि कहीं उनकी पकड़ अकाली राजनीति पर ढीली न पड़ जाये, तो उन्होंने घोषणा की कि अगर चंडीगढ़ पंजाब को नहीं दिया गया तो वे आत्मदाह कर लेंगे। अकाल तखत के पास की एक इमारत की छत पर 5 फुट व्यास का एक कड़ाह बनाया गया। अकाली नेता फतहसिंह कहीं आग की लपटों से डरकर भागने की कोशिश न करें, इसलिए लोहे की जंजीरें रखी गयीं और आग में डालने के लिए पेट्रोल और मिट्टी के तेल के कनस्तर इकट्ठे किये गये। लेकिन इससे पहले कि सन्त फतहसिंह की अन्तिम परीक्षा होती, श्रीमती गाँधी ने घोषणा की कि चंडीगढ़ पंजाब को मिलेगा। उन्होंने यह शर्त रखी कि वह बदले में अपनी दो तहसीलें, अबोहर और फाजिलका हरियाणा को देगा। यह भी उलझा हुआ निर्णय था। इन दोनों छोटी-छोटी तहसीलों को हरियाणा के सुपुर्द करने का एक ही आधार था कि ये हिन्दू-बहुल इलाके थे। लेकिन वे हिन्दी नहीं, पंजाबी बोलने वाले लोग थे। इस तरह पंडित नेहरू के रवैये के विरुद्ध राज्यों का सीमांकन भाषाई आधार पर नहीं, बल्कि धार्मिक आधार पर किये जाने की शुरूआत हुई। पर इस निर्णय को कभी अमल में नहीं लाया गया और चंडीगढ़ एक ऐसा मुद्दा बन गया जिसे लेकर समझौता-वार्ता 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' के ठीक पहले पूरी तरह टूट गयीं।

चंडीगढ़ समझौते को अमली जामा पहनाने को टालते रहने का वक्त अकाली

दल के लिए बुरा साबित हुआ। 1971 में बंगला देश की आजादी और पाकिस्तानी सेना की पराजय के बाद श्रीमती गाँधी लोकप्रियता और सता के शिखर पर पहुँच गयी थीं। 1972 में उन्होंने विधान सभाओं के चुनावों में भारी सफलता पायी। नेहरू के जमाने के बुजुर्ग नेता बुरी तरह ध्वस्त हुए और विपक्षी दल, जिनमें अकाली दल भी शामिल था, जैसे रेगिस्तान में फेंक दिये गये। इस स्थिति को और बिगाड़ा श्रीमती गाँधी द्वारा नियुक्त पंजाब के मुख्यमंत्री ज्ञानी जैलसिंह ने। वे लगभग हर मौके पर सिखों की धार्मिक भावनाओं को भड़काकर अकालियों की घन-गरज को भी मात दे रहे थे। ज्ञानी जैलसिंह ने आगे चलकर भिंडरांवाले की कहानी में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और वे भारत के पहले सिख राष्ट्रपति बने। पंजाब के मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने जो राजनीति चलायी, उसको लेकर कांग्रेस पार्टी के कई वरिष्ठ सदस्यों ने श्रीमती गाँधी से यह शिकायत की थी कि पंजाब की सरकार साम्प्रदायिक है।

अपनी स्थिति को बचाने के लिए अकाली दल ने समस्याओं की एक सूची बनाने का फैसला किया जिससे कि सिखों की समझ में यह बात आ जाये कि ज्ञानी जैलसिंह भी उनकी न्यायसंगत माँगों को पूरा करवा पाने में अक्षम हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर अकाली नेताओं ने प्रमुख सिखों की एक समिति बनायी और उसे सिख पंथ के असली लक्ष्यों को पाने के लिए अगुआई करने तथा उनके उद्देश्यों और लक्ष्यों को रेखांकित करने का काम सौंपा, क्योंकि कांग्रेस सरकार की सिख-विरोधी नीतियों के कारण सिखों के असली अधिकार उन्हें नहीं मिल रहे थे। 1973 में आनन्दपुर साहब में अकाली दल की कार्य समिति ने एक बैठक में प्रमुख सिखों के इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया। आनन्दपुर साहब में ही गुरु गोबिन्द सिंह ने खालसा पन्थ की स्थापना की थी। समिति की इस रपट को बाद में 'आनन्द पुर साहब प्रस्ताव' के रूप में जाना गया। यही प्रस्ताव अकालियों द्वारा चलाये जाने वाले उस आन्दोलन की केन्द्रीय माँग बना जिसकी परिणति स्वर्णमन्दिर में सैनिक कार्रवाई के रूप में हुई। यह आनन्दपुर साहब प्रस्ताव आगे चलकर भिंडरांवाले के लिए वह हथियार भी बना, जिसके जरिये उसने आन्दोलन का नियंत्रण अकाली नेताओं के हाथ से छीन लिया।

विडम्बना यह थी कि अकाली दल ने प्रस्ताव को लिखने का जिम्मा जिस *समिति को सौंपा था, उसमें राजनीतिक व्यक्ति ज्यादा थे और कानूनदां कम।* इस लिए अधिक स्वायत्तता की अपनी माँग को दो टूक ढंग से उठाकर उन्होंने भारी गलती की। उन्होंने 'सुरक्षा, विदेश सम्बन्ध, मुद्रा और संचार' के क्षेत्र में केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप को कम करने की बात भी प्रस्ताव में कही। कोई उदार-से-उदार प्रधानमंत्री भी प्रस्ताव की इन शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकता था, फिर श्रीमती गाँधी तो एक मजबूत केन्द्रीय सरकार के बारे में शुरू से ही दृढ़ थीं। इस

माँग को मानने का मतलब होता भारत की अखंडता को खतरे में डालना। इसने देश की पूरी अर्थव्यवस्था को भी चौपट कर डाला होता, क्योंकि हर राज्य अपनी सीमा में चुंगी नाका खोलकर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक आने-जाने वाले माल पर प्रतिवन्ध लगा देता।

भारत की स्वातंत्र्योत्तर अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भता के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए वहुत सतर्कतापूर्वक निर्मित की गयी थी, जिसमें आयात न्यूनतम रखा गया। इससे अनेक ऐसे उद्योग पनपे जो भारत की सुरक्षित, पर फैलती हुई अर्थव्यवस्था के भीतर ही प्रतियोगिता करने वाले उद्योग थे। इसी सुरक्षावादी नीति के कारण भारत विश्व अर्थव्यवस्था के उन तूफानों से वचा रह सका जिन्होंने दूसरे विकास-शील देशों को हिला डाला था। भारत में ये शानदार न सही, वढ़िया आर्थिक विकास के वर्ष थे।

पंजाव के कृषि-उत्पादन के लिए भी भारतीय अर्थव्यवस्था ने एक सुरक्षित वाजार की गारंटी दी। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा जनता को दिये जाने वाले अन्न का 50 प्रतिशत से भी ज्यादा हिस्सा पंजाव से आता है। अकालियों के संविधान के अनुसार केन्द्र सरकार के पास सार्वजनिक वितरण प्रणाली को नियंत्रित और संचालित करने का अधिकार नहीं रह जाता। सिख किसानों को अभी तक यह शिकायत है कि सरकार उनके उत्पादन के लिए जो कीमत उन्हें देती है वह सन्तोपजनक नहीं है। लेकिन 1970 और 80 के दशकों की अन्तर-राष्ट्रीय परिस्थितियों में अगर पंजाव को अनाज के निर्यात की इजाजत दे भी दी जाती तो अंतरराष्ट्रीय वाजार में वेच पाने में उन्हें वहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। श्रीमती गाँधी के साथ 1982 और 1984 की वातचीत में अकाली दल के नेताओं ने सुरक्षा, विदेश सम्वन्ध, मुद्रा और संचार के क्षेत्र में केन्द्र सरकार को चुनौती न देने की वात चुपचाप मान ली थी। लेकिन भिंडराँवाले आनन्दपुर साहव प्रस्ताव को पूरी तरह मनवाने पर अड़ा रहा। इस तरह वह उन सीधे-सादे अनु-यायियों के वीच अकाली दल की जड़ें कमजोर करने लगा, जो यह समझने में असमर्थ थे कि आखिर उनके नेता अपनी माँगें क्यों छोड़ते जा रहे हैं।

आनन्दपुर साहव प्रस्ताव में अकाली दल ने साफ-साफ घोषित किया था कि वह तमाम सिखों की पार्टी है। प्रस्ताव के अनुसार, 'शिरोमणि अकाली दल सिख कौम की आकांक्षाओं और उम्मीदों का साकार रूप है और इसीलिए इसे अपना उपयुक्त प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।' विना शक यह दावा अलोकतांत्रिक था। भारतीय लोकतंत्र में सिखों को हक था कि वे इसे न मानें और कइयों ने ऐसा किया भी। किसी भी चुनाव में अकाली दल ने समस्त सिखों का 50 प्रतिशत मत भी नहीं प्राप्त किया। दरअसल, सिखों के सिर्फ एक हिस्से ने अकाली दल का लगा-तार समर्थन किया है और वह है खेतिहर किसानों का जाट तवका। यही वजह है

कि शहरी और देहाती, सभी सिखों की पार्टी होने का दावा करने के बावजूद आनन्दपुर साहब प्रस्ताव में किसानों का इतना ज्यादा पक्ष लिया गया है कि वह व्यापारियों और उद्योगपतियों के खिलाफ चला जाता है। प्रस्ताव के अनुसार अकाली दल 'ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले सभी वर्गों, विशेष रूप से गरीबों और मध्यवर्ग के किसानों का जीवन-स्तर उठाने की पूरी कोशिश करेगा।' प्रस्ताव में भूमिसुधारों और गरीब और मंझले वर्ग के किसानों के लिए कर्ज की मांग की गयी थी उसमें यह भी कहा गया था कि कृषि उत्पादनों का मूल्य 'मध्यम वर्ग के किसान की आय के आधार पर' निर्धारित किया जाये।

आनन्दपुर साहब प्रस्ताव ने खाद्यान्न व्यापार के सम्पूर्ण राष्ट्रीयकरण' की मांग करके व्यापारी वर्ग के खिलाफ अपने पूर्वाग्रहों को साफ कर दिया। कुछ दिनों के लिए श्रीमती गांधी ने खाद्यान्न के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर भी दिया। लेकिन इसका असर किसानों और उपभोक्ताओं पर बहुत बुरा पड़ा। आनन्दपुर साहब प्रस्ताव में उद्योगपतियों के खिलाफ आग्रहों को उसकी इस धारा से समझा जा सकता है : 'शिरोमणि अकाली दल जोरों से यह मांग करता है कि सभी बुनियादी उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के अन्दर ले लिये जायें।' 5 साल बाद पारित प्रस्तावों में अकाली दल ने कहा : 'ऐतिहासिक आनन्दपुर साहब प्रस्ताव में पूंजीपतियों के उस एकाधिकारवादी नियंत्रण को खत्म करने की जरूरत पर खास तौर से जोर दिया गया है जो तीस साल से कांग्रेसी राज में अर्थव्यवस्था पर थोपा गया है।' इसके साथ ही इन प्रस्तावों में पंजाब के औद्योगिक शहर लुधियाना में स्टॉक एक्सचेंज स्थापित करने की मांग भी की गयी। हालांकि अकाली पूंजीनिवेश के लिए जिस 'माहौल' के पक्षधर थे, उसे देखते हुए लुधियाना के स्टॉक एक्सचेंज में भला कौन उद्योगपति अपनी पूंजी लगाता ?

किसानों और कृषि की इतनी तरफदारी (जोकि जाट किसानों पर निर्भर रहने का नतीजा थी) के बावजूद अकालियों ने लगातार यह दावा किया कि औद्योगिक विकास के क्षेत्र में केन्द्र सरकार ने पंजाब की उपेक्षा की है। यह सच है कि इस्पात और भारी बिजली के कारखाने जैसे बड़े उद्योगों के मामले में केन्द्र सरकार से पंजाब को बहुत कम मिला। लेकिन जब आनन्दपुर साहब प्रस्ताव पारित किया गया था, उस वक्त पंजाब में औद्योगिक पूंजी का निवेश बड़ी तेजी से बढ़ रहा था और जिस वक्त स्वर्णमन्दिर में भारतीय सेना ने प्रवेश किया, उस समय तक राज्य का औद्योगिक उत्पादन 8.4 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रहा था। बढ़ोतरी की यह दर समूचे देश के उत्पादन की दर से दुगनी थी। गांवों की धरती पंजाब एक आधुनिक शहरी राज्य में बदल रहा था। यह भारत का पांचवां सर्वाधिक शहरीकृत राज्य बन चुका था। इसने शहरीकरण की रफ्तार में कलकत्ता जैसी महानगरी वाले पश्चिम बंगाल को भी पीछे छोड़ दिया था। वैसे यह सच है

कि नये उद्योगों में पंजाब से बाहर के बहुत सारे मजदूरों को रोजगार दिया, जिस से राज्य की बेरोजगारी की अपनी समस्या हल नहीं हुई। शायद यही वजह थी कि अकालियों के इस दावे को समर्थन मिला कि पंजाब अभी भी औद्योगिक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। अकाली नजरिये में शायद यह तथ्य ज्यादा महत्वपूर्ण था कि ज्यादातर कारखानों का स्वामित्व हिन्दुओं के हाथ में है।

पंजाब के किसानों ने चाहे जितना विकास किया हो, लेकिन कृषि का क्षेत्र ही सिखों के असन्तोष को पैदा करने वाला सबसे उपजाऊ क्षेत्र साबित हुआ। जब आनन्दपुर साहब प्रस्ताव का प्रारूप बना, उस समय पंजाब का कृषि-उत्पादन बड़ी तेजी से हरित क्रान्ति के दौर में बढ़ रहा था और वह आत्मनिर्भर भारत का अनाज-भंडार हो चला था। लेकिन 9 साल बाद जब अकाली दल ने आनन्दपुर साहब प्रस्ताव को लागू किये जाने के लिए अपना लम्बा आन्दोलन छेड़ा, तब तक हरित क्रान्ति दम तोड़ने लगी थी। पंजाब की लगभग 85 प्रतिशत भूमि सिंचित हो चुकी थी और ज्यादा खेती के लिए जमीन पाना सम्भव नहीं था। 65 प्रतिशत से अधिक फार्म पाँच एकड़ से कम के थे और खाद तथा आधुनिक उपकरणों की बढ़ती कीमतों से वे इतना उत्पादन नहीं कर सकते थे कि ज्यादा मुनाफा कमाया जा सके। निश्चित ही ऐसे किसानों के पास साल के अन्त मे इतना पैसा नहीं शेष रहता था कि वे अपने एक से ज्यादा बेटों को खेती के ही कामो में लगाये रहें। इसलिए छोटे बेटों को नौकरी की तलाश में नये शहरों की ओर जाना पड़ता था, जहाँ उनकी होड़ भारत के दूसरे क्षेत्रों से आये कामगारों के साथ होती थी। हालत इसलिए भी बिगड़ती चली गयी कि खेतिहर परिवारों से विस्थापित ऐसे बहुत सारे नौजवान शिक्षित भी थे और यह तय है कि किसी भी क्रान्ति के लिए शिक्षित बेरोजगारों से अधिक उपजाऊ कोई और जमीन नहीं हो सकती।

अकाली दल का यह भी कहना था कि सरकार जानबूझकर सिखों के पारम्परिक पेशे से उनको अलग कर रही है। यह पारम्परिक पेशा था सेना में नौकरी का। सरकार ने सेना में भर्ती के लिए एक नयी नीति अपना रखी थी, जिससे देश के उन समुदायों और इलाकों को भी अवसर मिले जहाँ सेना में भर्ती होने की कोई परम्परा नहीं रही है। अगर नयी नीति को कड़ाई के साथ लागू किया जाता तो भारतीय सेना में सिखों की हिस्सेदारी घटकर फकत 2 प्रतिशत रह जाती, क्योंकि भारत की जनसंख्या में सिख 2 प्रतिशत ही हैं। लेकिन इस नीति को कभी पूरी तरह लागू नहीं किया गया। और जब अकाली दल ने आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के लिए अपना आन्दोलन छेड़ा था तब भारतीय सेना में सिखों की संख्या 10 प्रतिशत से भी ज्यादा थी। इस तर्क के पक्ष में भी पर्याप्त सबूत हैं कि सिख खुद ही सेना में भर्ती नहीं होना चाहते। भारत का रक्षा-मंत्रालय अपनी भर्तियों के आंकड़े बताने में बहुत गोपनीयता बरतता है, लेकिन लेफ्टिनेंट जनरल सिन्हा (जो अकाली आन्दोलन

के वक्त थल-सेना के वाइस चीफ थे) के अनुसार, सेना में सिखों के लिए जो कोटा निर्धारित है उसे भरने के लिए खुद सिख जवान पर्याप्त संख्या में आगे नहीं आते। भारतीय सेना के सिपाहियों की जिन्दगी में खास बदलाव नहीं आया है। जवानों को अभी भी बहुत अधिक प्रतिबन्धित और अनुशासित जिन्दगी गुजारनी पड़ती है। खास तौर से 'टीप आर्म्स' जैसे रेजिमेंटों में, जिनमें सिखों के भरती होने की परम्परा रही है। पंजाब का जनजीवन बहुत अधिक बदल चुका था और फौजी छावनियों की जिन्दगी नौजवान सिखों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाती थी। इन तथ्यों के बावजूद सेना में भर्ती की नीति में परिवर्तन को तूल देकर अकाली सिखों ने इसे एक भावनात्मक मसला बना लिया। खास तौर पर जाट सिख इसमें बहुत उद्वेलित हुए, क्योंकि उनके पास सेना में नौकरी करने की सौ साल से भी ज्यादा पुरानी परम्परा रही है और वे फौज में भर्ती होना अपना हक समझते हैं।

आनन्दपुर साहब प्रस्ताव में उठाये गये आर्थिक मुद्दों में सबसे ज्यादा भावनात्मक और गलतफहमी पैदा करने वाला मुद्दा था पानी का। पंजाब की पाँच में से तीन नदियों का पानी पाकिस्तान के साथ विभाजन के बाद हुई 'सिन्धु जल संधि' के अनुसार भारत को मिला। ये नदियाँ हैं—सतलज, रावी और व्यास। सिख किसान समझते थे कि इस पानी पर उन्हीं का हक है। वह धरती जो कभी करीब-करीब रेगिस्तान थी वहाँ ऐसी जिद कोई आश्चर्यजनक बात तो नहीं लेकिन ऐसी जिद्दों को आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में पानी जैसी आवश्यक चीज के वितरण का आधार तो नहीं बनाया जा सकता। दुर्भाग्य से इस जल-विवाद को लेकर चलने वाली लम्बी और चक्करदार बातचीत का आधार यही रहा। जैसा कि चंडीगढ़ के 'सेंटर फार रिसर्च इन रूरल एँड इंडस्ट्रीयल डेवलपमेंट' ने 'पंजाब क्राइसिस' नामक पुस्तक में कहा है . 'इस विवाद की असली जड़ें पानी को अपनी जायदाद मान लेने के सिद्धांत से फूटी हैं'''मुद्दा यह होना चाहिए कि जल के जो स्रोत सामने हैं, उनका ज्यादा-से-ज्यादा इस्तेमाल कैसे किया जाये।' लेकिन सिख किसान के लिए पंजाब की तीन नदियों के पानी के 'भरपूर इस्तेमाल' का मतलब था उनका पानी चुराकर एक नये 'हिन्दू राज्य हरियाणा' और दूसरे राज्य राजस्थान को दे देना। फिलहाल पानी की कोई कमी नहीं थी। तथ्य यह है कि एक तरफ नहरें बह रही थीं और दूसरी तरफ भारतीय नदियों का जल पाकिस्तान में बेकार बह रहा था, क्योंकि सरकार अपनी सिंचाई-योजनाओं को लागू नहीं कर पा रही थी। सिख किसान इन सिंचाई योजनाओं के दूरगामी नतीजों को लेकर चिन्तित थे और केन्द्र सरकार बार-बार इसे अन्य राज्यों के अधिकार का संविधानिक मुद्दा बनाकर हालत को और उलझा रही थी। बजाय इसके कि सरकार सिखों को यह समझाने की कोशिश करती कि पानी इतना ज्यादा है कि

सबके लिए पूरा पड़ेगा।

यही वे शिकायतें थीं जिन्हें अकाली दल ने आनन्दपुर साहब प्रस्ताव में रखा जिससे सिखों को लगे कि वे हकीकत में भारत के एक उपेक्षित अल्पसंख्यक समुदाय हैं, जिन्हें या तो अपने हितों की रक्षा के लिए अब उठकर खड़ा हो जाना चाहिए या फिर हिन्दू दलदल में डूब जाना चाहिए।

कई-कई मौकों पर सरकार आनन्दपुर साहब प्रस्ताव को 'अलगाव दस्तावेज घोषित करके इस पर कोई बातचीत करने से इनकार कर देती थी। लेकिन जो प्रस्ताव का मूल मसविदा है, उससे यह साफ हो जाता है कि दरअसल अकाली 'कुछ अधिक' या शायद 'कुछ बहुत अधिक' स्वायत्तता की ही माँग कर रहे थे। खुद अकाली दल के अध्यक्ष हरचंद सिंह लोंगोवाल ने कहा था, 'हम हमेशा के लिए यह साफ कर देना चाहते हैं कि सिख किसी भी तरह भारत से अलग नहीं होना चाहते। वे सिर्फ इतना चाहते हैं कि उन्हें भारत में सिखों की हैसियत से रहने दिया जाये। उनके धार्मिक जीवन में किसी तरह की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दखलन्दाजी न की जाये। निस्सन्देह सिखों की राष्ट्रीयता भी वही है जो दूसरे भारतीयों की है।' जब भारतीय सेना ने स्वर्णमन्दिर परिसर पर हमला किया, तब भी लोंगोवाल ने कहा था कि अकाली दल ने कभी भारत से अलग होने की माँग नहीं की और न कर रहा है। अकाली दल का एक उद्देश्य भारत के भीतर रहकर सत्ता पाना था, यह तब जाहिर हुआ जब 1977 से 1979 तक उन्होंने पंजाब की राज्य सरकार में साझेदारी की। अकालियों ने उस समय आनन्दपुर साहब प्रस्ताव को लागू करने की कोई कोशिश नहीं की। वे सिर्फ केन्द्र की जनता सरकार से यह 'जोरदार आग्रह करते रहे (जिस सरकार का पुर्जा खुद अकाली पार्टी भी थी) कि सरकार देश के संविधान को वास्तविक और अर्थपूर्ण संघीय सिद्धान्तों के अनुरूप दुबारा बनाये'। सत्ता से बाहर हो जाने के बाद अकालियों ने आनन्दपुर साहब प्रस्ताव या प्रस्ताव की लंबी-चौड़ी माँगों को मनवाने के लिए श्रीमती गाँधी की सरकार के खिलाफ व्यापक आन्दोलन छेड़ दिया। बहुत-से सिखों को, खास तौर पर विश्वविद्यालयों के बेरोजगार स्नातकों और किसानों को लगा कि शेष भारत से उनकी कुछ वास्तविक आर्थिक शिकायतें हैं। अकाली दल ने इन आर्थिक असन्तोषों को धार्मिक भावनाओं के साथ जोड़कर कट्टरपंथ का एक ऐसा खतरनाक रूप फिर निर्मित किया जिसे खुद पार्टी के नेता काबू में नहीं रख सके। श्रीमती गाँधी के खिलाफ छिड़े आखिरी आन्दोलन के नेता हरचन्द सिंह लोंगोवाल ने अपनी पार्टी के रुख को स्पष्ट करते हुए एक पर्चा सभी संसद-सदस्यों को भेजा था जिसमें उन्होंने कहा था :

> भारत एक बहुभाषी, बहुधार्मिक और बहुराष्ट्रीय देश है। ऐसे देश में सिखों जैसे अत्यन्त छोटे अल्पसंख्यक समुदाय की यह आशंका स्वाभाविक है कि बौद्ध

धर्म या जैन धर्म की तरह ही कहीं वे अपनी पहचान खो न दें और हिन्दू बहुसंख्यक समुदाय के विराट समुद्र में विलीन न हो जायें।

भिंडरांवाले ने पंजाब में इसी आशंका को आधार बनाकर विद्रोह की लपटों को हवा दी, लेकिन सच्चाई यह है कि यह आग लगायी थी अकाली पार्टी ने।

4

भिंडराँवाले का उत्थान

जरनैल सिंह का जन्म भारत की आजादी के ही साल 1947 में एक अपेक्षाकृत गरीब किसान जोगिंदर सिंह के घर हुआ। लेकिन गरीवी इस संभावित संत के सामने कोई वड़ी रुकावट नहीं वनी। सच तो यह है कि उसे खुद खोजने पर भी इससे अच्छा खानदान नहीं मिलता। उसके पिता जाट थे, यानी उस जाति के, जिसका सिख समुदाय पर खासा दवदवा है। उनका पेशा किसानी था, यानी एक-मात्र ऐसा पेशा जिसे जाटों में फौजी नौकरी के अलावा सम्मानजनक समझा जाता है। उसके कुछ फौजी सम्वन्ध-सूत्र भी थे। भिंडराँवाले का एक सौतेला भाई फौज में था और 'ऑपरेशन व्लू स्टार' के वक्त तक वह तरक्की पाकर सूवेदार-मेजर के ओहदे तक पहुँच गया था। भिंडराँवाले का खुद का नाम 'जरनैल' अंग्रेजी शव्द 'जनरल' का ही पंजावीकरण था। सिख पिता अकसर अपने वेटों का नाम फौजी ओहदों पर ही रखते हैं।

भिंडराँवाले का परिवार रोडे गाँव में रहता था जो मोगा कस्वे के निकट है। यह गाँव जाट सिख ग्रामीण इलाके के वीच है, जिसके पास ही भिंडराँ गाँव है जहाँ वह धार्मिक आन्दोलन चला, जिसमें एक स्कूली विद्यार्थी के रूप में जरनैलसिंह शामिल हुआ। आगे चलकर जरनैलसिंह सिख धर्म का प्रचारक वना। इसकी प्रेरणा उसे अपने पिता की धर्मपरायणता से ही प्राप्त हुई थी। जोगिंदरसिंह नियमित रूप से गुरुद्वारों में जाकर गुरु ग्रंथ साहव का पाठ सुना करता था और उसने अपने वेटे जरनैलसिंह के लिए भी धर्म-ग्रन्थों की शिक्षा की व्यवस्था की। जोगिंदरसिंह के अनुसार जरनैलसिंह अपनी किशोरावस्था में 'ऐसा लड़का था जो एक ही वार से किसी पेड़ को गिरा सकता था और ग्रंथ साहव का पूरा-का-पूरा अध्याय याद करके एक ही दिन में सैकड़ों वार सुना सकता था।' यह जरनैलसिंह की खुशकिस्मती थी कि वह सात भाइयों में सवसे छोटा था, यानी उसके पिता के पास खेती-किसानी सँभालने के लिए और वुढ़ापे में देखभाल करने के लिए कई और वेटे थे। जोगिंदर सिंह ने अपने वेटे जरनैल सिंह को दमदमी टकसाल धार्मिक स्कूल में धर्म-प्रचारक की शिक्षा लेने के लिए खुशी के साथ भेजा, क्योंकि खेती से वह अपने सातवें वेटे का भरण-पोषण नहीं कर सकता था।

'टकसाल' शब्द का इस्तेमाल उन सिख विद्यालयों के लिए होता है, जहाँ गुरुओं के शुद्ध और मूल उपदेशों की शिक्षा दी जाती है। दमदमी टकसाल एक प्रसिद्ध विद्यालय है जिसकी स्थापना एक महान सिख योद्धा बाबा दीपसिंह ने की थी। बाबा दीपसिंह उन सिख योद्धाओं के नेता थे, जिन्होंने पंजाब पर अफगान शासक अहमद शाह अब्दाली के शासनकाल में स्वर्णमंदिर की रक्षा की शपथ ली थी। बाबा दीप सिंह ने अफगानों द्वारा स्वर्ण मंदिर को नापाक किये जाने पर सिखों की हार का बदला लेने का बीड़ा उठाया था। उन्होंने लगभग 5000 ग्रामीणों का एक संगठन बनाया, जिनके पास बिलकुल देहाती हथियार थे। यह किसान सेना जब स्वर्णमंदिर की ओर कूच कर चुकी तो हड़बड़ी में बुलायी गयी अफगान सेना ने उसको बीच रास्ते में रोक लिया। इन किसान सैनिकों ने इतना कड़ा संघर्ष किया कि अफगानी सेनापति को अपनी मदद के लिए और सैनिक टुकड़ियाँ मँगानी पड़ीं, और अन्त में बाबा दीपसिंह की सेना को स्वर्णमंदिर तक नहीं पहुँचने दिया गया। अफगान सेनापति ने सिखों को सबक सिखाने के लिए दुबारा स्वर्ण मन्दिर को अपवित्र किया। किंवदंती यह है कि इस युद्ध में बाबा दीप सिंह का सिर काट डाला गया था, लेकिन वे फिर भी एक हाथ में अपना कटा हुआ सिर और दूसरे हाथ में तलवार लेकर स्वर्णमन्दिर तक पहुँचने में कामयाब हो गये थे। सिर कटे हुए बाबा दीप सिंह के चित्र सिख घरों में सिख गुरुओं के साथ-साथ लगे हुए दिखायी देते हैं। उनके द्वारा स्थापित किया गया दमदमी टकसाल 200 वर्षों तक सिखधर्म की सुरक्षा के संघर्ष के अग्रदूतों में से था। इसी दमदमी टकसाल में बालक भिंडरांवाले ने दाखिला लिया।

ज्यादातर सिख युवक जो ऐसे धार्मिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं, उनका जीवन नामालूम ढंग से गुरुद्वारों में गुरुग्रंथ साहब का पाठ करने और गाँव-गाँव घूम कर धर्म का प्रचार करने में बीत जाता है, लेकिन भिंडरांवाले बहुत जल्द ही दमदमी टकसाल की एक असरदार शख्सियत बन गया। दुबले-पतले और प्रभावशाली, छह फुट लंबे भिंडरांवाले का व्यक्तित्व संत-महात्मा की भूमिका के लायक लगता था। उसकी लंबी नाक थी और आँखें गहरी धँसी, जो खीसें निपोरते वक्त लगभग अदृश्य हो जाती थीं, और फिर भी उनमें ऐसी कुटिलता थी कि लोग उसके मुसकराने का इन्तजार करते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में उसकी काली दाढ़ी में कुछ सफेद बाल नजर आने लगे थे। भिंडरांवाले हमेशा नीली या केसरिया पगड़ी पहनता था, जो आम सिखों की तरह तिरछी नहीं बल्कि पर्त-दर-पर्त बाँधी हुई होती थी। सिखों के पारंपरिक, घुटनों तक लंबे ढीले कुरते के नीचे कच्छा होता था जिसका रिवाज गुरु गोविंद सिंह ने शुरू किया था। उन्हीं के निर्देशों के अनुसार वह कृपाण भी रखता था, जो कंधों पर झूलती बेल्ट से बँधी होती थी। मैंने जब भी उसे देखा, उसके पास रिवाल्वर जैसा यार

भी होता था और गोलियों से भरी पेटी भी।

जरनैलसिंह दमदमी टकसाल के प्रधान करतार सिंह का सबसे प्रिय शिष्य बन गया। उसके जीवन में मोड़ तब आया जब एक बार करतार सिंह एक सड़क दुर्घटना में बुरी तरह घायल हो गये। भिंडराँवाले के गुरु करतार सिंह इतने कट्टर सिख थे कि जब डाक्टरों ने ऑपरेशन करने के लिए उनके बाल काटने चाहे तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया। मौत के पहले करतार सिंह ने स्पष्ट कर दिया था कि अपने बाद दमदमी टकसाल का उत्तराधिकारी वे अपने बेटे अमरीक सिंह को नहीं, जरनैल सिंह को ही बनाना चाहते हैं। इस तरह जरनैलसिंह दमदमी टकसाल का प्रधान और सन्त बना। उसने अपने पूर्ववर्तियों की तरह अपने नाम के साथ अपने गाँव भिंडराँ के आधार पर 'भिंडराँवाले' जोड़ लिया। अमरीक सिंह उस समय विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था और वहीं रहना चाहता था। अमरीक सिंह बाद में आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन का अध्यक्ष और भिंडराँवाले का दाहिना हाथ बना। भिंडराँवाले के नाम पर किये जाने वाले बहुत-से अत्याचारों में इसी संगठन के लोगों का हाथ था।

दमदमी टकसाल का मुख्यालय चौक मेहता गाँव के एक अपेक्षाकृत नये गुरुद्वारे में है। यह अमृतसर से लगभग 25 मील की दूरी पर है। गुरुद्वारा किसी धार्मिक गढ़ की तरह गाँव से बिलकुल अलग खड़ा है। इसकी ऊँची दीवारों के भीतर सात वर्ष और उससे बड़ी उम्र के सिख बच्चे अपने धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र से लेकर शब्द तक की शिक्षा पाते हैं। बहुत-से लोग सिख धार्मिक विद्यालयों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा को पुरातनपंथी और अन्धविश्वास की शिक्षा कहकर उसकी आलोचना करते हैं। यह सही है कि यहाँ पर ज्यादातर समय गुरुग्रंथ साहब को रटने में खपा दिया जाता है, लेकिन एक बार जब मैं वहाँ गया तो एक युवा शिक्षक से मेरी एकेश्वरवाद पर बड़ी गम्भीर बहस हुई। इस शिक्षिक ने धर्मशास्त्र की पढ़ाई विश्वविद्यालय में की थी। उसने बाइबल और कुरान को 'पढ़ा था, याद किया था और उन्हें पचा डाला था।' गुरु ग्रंथ साहब का अध्ययन तो खैर उसने किया ही था। उसके इस तर्क का जवाब देने में मैं असफल रहा कि ईसाई धर्म में ईसा के जन्म और 'ट्रिनिटी के सिद्धांत' के कारण इसे पूरी तरह से एकेश्वरवादी धर्म नहीं माना जा सकता। खासतौर से सिख धर्म के साथ तुलना करने पर तो यह बात और भी ज्यादा प्रमाणित होती है। सिख धर्म में ईश्वर एक है और मनुष्य उसे कोई आकार नहीं दे सकता।

दमदमी टकसाल में भिंडराँवाले की प्रधान के रूप में नियुक्ति पंजाब की राज-नीति में एक बदलाव के साथ हुई। 1977 में श्रीमती गाँधी ने आम चुनाव करा कर और आपातकाल के विरुद्ध मतदाताओं के फैसले को मंजूर करके देश और दुनिया को चौंका दिया। जब श्रीमती गाँधी ने 18 महीने पहले आपातकाल लाग

करने के बाद विपक्षी नेताओं को जेल में ठूँस दिया था और प्रेस पर सेंसरशिप लगा दी थी, तब इसे विकासशील देशों के आखिरी जिन्दा बचे लोकतंत्र का अन्तकाल कहा जाने लगा था। निश्चित ही आपातकाल की घोषणा के पीछे श्रीमती गांधी की असली मंशा अपनी स्थिति प्रधानमंत्री के रूप में बचाये रखने की थी। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उन्हें अपने चुनाव के दौरान भ्रष्ट आचरण का दोषी पाया था। हालांकि आमतौर पर यह माना जा रहा था कि उन पर लगाया गया आरोप फकत एक तकनीकी मुद्दा है, फिर भी उनके सहयोगी उन्हें सलाह देने लगे थे कि जब तक उनकी अपील की सुनवाई सर्वोच्च न्यायाल में नहीं हो जाती तब तक के लिए वे फिलहाल इस्तीफा दे दें। उधर महात्मा गांधी के नैतिक उत्तराधिकारी जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में समूचे विपक्ष ने सरकारी भ्रष्टाचार के खिलाफ व्यापक आंदोलन छेड़ रखा था। इस अभियान ने श्रीमती गांधी और कांग्रेस पार्टी की छवि को गहरा नुकसान पहुँचाया। श्रीमती गांधी के उन सहयोगियों का, जो उनको इस्तीफा देने की सलाह दे रहे थे, कहना था कि इससे कम कुछ करने का मतलब होगा जयप्रकाश नारायण के आंदोलन के हाथों में खिलौना बन जाना। एक स्थिति यह भी आ गयी थी कि श्रीमती गांधी ने इस तर्क को स्वीकार कर लिया था, लेकिन उनके छोटे बेटे संजय गांधी ने उन्हें ऐसा करने से रोका, उसने अपनी माँ से कहा कि वह अपने किसी भी सहयोगी पर इतना भरोसा न करें कि अगर सर्वोच्च न्यायालय उन्हें दोष मुक्त कर देता है—जैसा कि उसके अंतरिम फैसले से झलकता भी है—तो उसके बाद उन्हें प्रधानमंत्री का पद वापस मिल जायेगा।

संजय गांधी प्रसिद्ध कार निर्माता कम्पनी रोल्स रायस में अपना प्रशिक्षण पूरा नहीं कर पाये थे और खुद कार बनाने का एक कारखाना लगाने के फेर में थे। जब आपातकाल की घोषणा हुई, उस वक्त उनकी उम्र सिर्फ 28 साल की थी और उन्हें न तो कोई राजनीतिक अनुभव था और न ही उन्होंने अपनी पार्टी का कोई पद सँभाला था। लेकिन यह अनुभवहीनता उन्हें उन भयानक अधिकारों का इस्तेमाल करने से नहीं रोक पायी, जो उनकी माँ ने प्रशासन को आतंकित करने के लिए अपने हाथ में लिये थे और इस तरह समूचे तंत्र को पुलिस तंत्र में तब्दील कर डाला था। हिन्दुस्तानी पुलिस के उन्माद को रोकने के लिए नागरिक प्रशासकों, न्यायालयों और संसद की लगाम की जरूरत थी। आपातकाल में इनके न रह जाने से वह छुट्टा हो गयी और उसने व्यापक स्तर पर 'ज्यादतियाँ' कीं। सबसे गम्भीर ज्यादतियाँ संजय गांधी द्वारा चलाये गये परिवार नियोजन अभियान में की गयीं। उत्तर भारत के तमाम इलाकों में सभी सरकारी कर्मचारियों, यहाँ तक कि स्कूलों के अध्यापकों को भी 'अनिवार्य नसबन्दी कार्यक्रम' में मदद देने के लिए मजबूर किया गया।

इस बात में सन्देह है कि अखबारों में सेंसरशिप के कारण और संजय गाँधी के डर के मारे चुप्पी मारे बैठी पार्टी के चलते श्रीमती गाँधी को आपातकाल के दौरान हुई ज्यादतियों और मतदाताओं की प्रतिक्रिया के बारे में पूरी जानकारी मिल पायी थी। गुप्तचर विभाग भी प्रधानमंत्री के किसी काम नहीं आया। काँग्रेस पार्टी की ही तरह डरी हुई गुप्तचर संस्थाओं ने भी श्रीमती गाँधी को यही बताया कि आपातकाल में ज्यादतियों की बात महज विरोधी पार्टियों के कार्यकर्ताओं द्वारा फैलायी गयी अफवाहें हैं। इन्हीं को विदेशी प्रेस और बी० बी० सी० भी उठाता है जिसकी अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की सेवाएँ सुनने वाले लोगों का बहुत बड़ा वर्ग इस उपमहाद्वीप में है। अगर श्रीमती गाँधी को जनता के दिमाग की जानकारी मिल गयी होती, तो वे पहले से ही एक साल के लिए स्थगित कर दिये गये आम चुनावों की घोषणा करने का यह निर्णय न लेतीं। वैसे, संजय गाँधी ने चुनाव न करवाने की सलाह दी थी। उन्हें आपातकाल में जो कुछ हुआ उसकी जानकारी अपनी माँ से ज्यादा थी, क्योंकि उस सब में वे खुद भी शामिल थे। लेकिन श्रीमती गाँधी लोकतंत्र की बहाली चाहती थीं। एक नेता के रूप में अपनी अन्तरराष्ट्रीय छवि को लेकर श्रीमती गाँधी हमेशा सचेत रहती थीं और अलोकतांत्रिक आपातकाल से उनकी इस छवि को धक्का लगा था। उनका कहना था कि लोकतंत्र को समाप्त नहीं किया गया है, सिर्फ स्थगित किया गया है। वे इस आरोप को निर्मूल सिद्ध करना चाहती थीं कि वे तानाशाह हो गयी हैं। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि श्रीमती गाँधी शासन की लगाम इतना ज्यादा कसने से खुश नहीं थीं। उन्हें अच्छी तरह पता था कि किसी भी प्रशासन के विरुद्ध जनता के मन में जमा हो गये गुबार को निकाल देने के लिए चुनाव का बहुत महत्व है।

आपातकाल के बाद हुए चुनाव श्रीमती गांधी और काँग्रेस पार्टी के लिए एक अभूतपूर्व विपदा बने। वे उत्तर प्रदेश के अपने ही चुनाव-क्षेत्र से बुरी तरह पराजित हुईं और काँग्रेस पार्टी समूचे उत्तर भारत में एक भी सीट जीत पाने में नाकामयाब रही। यही इलाके संजय गांधी की नसबन्दी कार्यक्रम के सबसे ज्यादा शिकार हुए थे। पंजाब में अकाली दल ने नयी-नयी बनी जनता पार्टी के साथ संयुक्त सरकार बनायी। यही जनता सरकार दिल्ली में भी सत्ता में आयी। जनता पार्टी दरअसल गैरकम्युनिस्ट विपक्षी दलों का हड़बड़ी में किया गया विलय था, जो तीन बुजुर्ग नेताओं के प्रधानमंत्री बनने के आपसी झगड़े में टूटकर बिखर गया। पंजाब में जनता पार्टी को मुख्य ताकत भूतपूर्व जनसंघ से मिली थी। हालाँकि इस हिन्दू-समर्थक पार्टी के साथ साझेदारी करने का बुरा अनुभव अकाली दल को पहले मिल चुका था, लेकिन वे सत्ता में आने के लिए जनसंघी नेताओं के साथ दुबारा गठजोड़ करने में जरा भी नहीं झिझके।

शुरू-शुरू में अपनी इस अभूतपूर्व पराजय को श्रीमती गाँधी अपने राजनीतिक

जीवन की इतिश्री मानने लगी थी, लेकिन संजय ने इसे कभी स्वीकार नहीं किया। संजय ने भाँप लिया था कि जनता पार्टी की एकता कितनी कमजोर है। उन्होंने अलग-अलग पार्टियों के नेताओं की आपसी टकराहट और प्रतिद्वन्द्विता का इस्तेमाल करते हुए इस नवजात पार्टी को तोड़ने के लिए कमर कस ली। उन्हें इस पार्टी को सत्ता से उखाड़ फेंकने और दुबारा अपनी माँ को सत्ता तक पहुँचाने में तीन साल से भी कम समय लगा।

पंजाब की साझा सरकार को तोड़ने के सिलसिले में संजय ने तजुर्बेकार सिख राजनीतिज्ञ ज्ञानी जैलसिंह की सलाह पर काम किया। जैलसिंह ने संजय को सलाह दी कि वह जनसंघ को नहीं, बल्कि अकाली दल को तोड़ने की कोशिश करें। उस समय अकाली दल का नेतृत्व तीन व्यक्तियों के हाथ में था : प्रकाश सिंह बादल, जो एक संपन्न किसान और अनुभवी राजनीतिज्ञ थे और आगे चलकर 1977 में जैलसिंह के बाद वही पंजाब के मुख्यमंत्री बने। दूसरे थे हरचंद सिंह लोंगोवाल, जो भिंडरांवाले की तरह ही सिख धर्म के प्रचारक थे, सन्त थे और जिन्होंने आपात-काल के विरोध में अकाली आन्दोलन का नेतृत्व किया था। तीसरे नेता थे गुरुचरण सिंह तोहड़ा, एक चालाक लेकिन अविवेकी राजनीतिज्ञ थे, जिनके सम्बन्ध साम्य-वादियों के साथ भी थे। तोहड़ा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष थे। शुरू में संजय गाँधी ने इन तीनों नेताओं और उनके समर्थकों को एक-दूसरे के खिलाफ मोहरों की तरह खेलने की योजना बनायी। लेकिन सिख राजनीति की पेचीदगियों के गहरे जानकार ज्ञानी जैलसिंह को लगा कि अकाली नेतृत्व की इस त्रिमूर्ति में से किसी एक को हटाने से बाकी दो के बीच ज्यादा मजबूत एकता पैदा हो जायेगी। उन्होंने संजय गाँधी को एक नये धार्मिक सिख नेता की खोज की सलाह दी जो इन पारम्परिक अकाली नेताओं की साख को कम कर सके। संजय गाँधी ने आपात-काल के दिनों के अपने कुछ युवा साथियों को किसी ऐसे सन्त की तलाश में लगाया जो योजना में काम आ सके। पंजाब में सन्तों का भला कहाँ अकाल! कुछ ही दिनों में संजय के ये युवा खोजी 20 नामों की सूची लेकर आ गये। इनमें से कुछ संजय की योजना के लिए पूरी तरह तैयार नहीं थे और कुछ ऐसे थे जो इस काम के लायक नहीं थे। आखिरकार भिंडरांवाले के नाम पर बात ठहर गयी। दमदमी टक-साल जैसी ऐतिहासिक और सम्मानित संस्था का प्रधान होने के कारण सिख समुदाय में उसका सम्मान पहले ही बना हुआ था। एक धार्मिक कट्टरपंथी होने की वजह से भिंडरांवाले अकालियों द्वारा सत्ता में बने रहने के लिए सिखों के धार्मिक हितों के साथ समझौता करने की हरकतों को उघाड़कर फायदा उठा सकता था। फिर भी भिंडरांवाले को अपने इस राजनीतिक जन्म के लिए कोई-न-कोई मुद्दा तो चाहिए ही था। इसी मुद्दे को तलाशने का सवाल सामने था। जब संजय गाँधी के दोस्तों ने उसे खोजा, उस वक्त वह अपने अनुयायियों के साथ पंजाब में गाँव-गाँव घूमकर

सिख धर्म पर मँडराते खतरों के खिलाफ प्रचार कर रहा था। लेकिन दाढ़ी कटाना, सिगरेट-शराब पीना, नशीली दवाएँ लेना जैसी चीजों को कोई बड़ा राजनीतिक मुद्दा तो नहीं बनाया जा सकता था। इसीलिए संजय गाँधी और ज्ञानी जैलसिंह ने किसी ऐसे मुद्दे को खोजना शुरू किया जो एक साथ धार्मिक भी हो और राजनीतिक भी।

और यह मुद्दा उन्हें मिला निरंकारियों के बीच, जो कि सिखों की एक विधर्मी शाखा है और पंजाब के व्यापारी वर्ग पर उसका अच्छा-खासा प्रभाव है। पिछली शताब्दी में निरंकारियों का जन्म एक पुनरुत्थानवादी समुदाय के रूप में हुआ था। निरंकारी पंथ के संस्थापक बाबा दयाल दास ने सिखों द्वारा हिन्दू संस्कारों को अपनाने—मूर्ति-पूजा, ब्राह्मणों के अनुष्ठान, तीर्थयात्रा करना और गंगा में स्नान जैसे कार्यों के विरुद्ध प्रचार किया था। बाबा दयाल दास ने इस धारणा पर जोर दिया कि ईश्वर अव्यक्त है, क्योंकि वह निराकार है। निरंकार शब्द का अर्थ निराकार ही होता है। लेकिन इस आंदोलन में भी विधर्मी तत्व धीरे-धीरे घुस आये। आंदोलन विभाजित हो गया। निरंकारियों के एक बड़े वर्ग ने बाबा दयाल दास और उनके उत्तराधिकारियों को गुरु कहना शुरू कर दिया, जब कि गुरु गोबिंदसिंह ने स्पष्ट घोषणा की थी कि वे सिख धर्म के अन्तिम गुरु हैं। वे मूर्तिपूजा न करने की अपने गुरु की शिक्षा को भी भूल गये और यहाँ तक कि उनकी चप्पलों की भी पूजा शुरू कर दी। लेकिन जिस बात से कट्टर सिख सबसे ज्यादा नाराज हुए, वह थी निरंकारियों द्वारा सिख धर्म-सिद्धांतों में नयी रचनाएँ जोड़ने की हरकत। इनमें से कई पद तो गुरु ग्रंथ साहब और सिख गुरुओं के प्रति निंदापूर्ण भी माने जाते हैं। निरंकारियों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए आखिरकार सिख ग्रंथियों को हुक्मनामा जारी करना पड़ा और उन्होंने निरंकारियों को विधर्मी घोषित कर दिया। सिखों से निरंकाररियों का बहिष्कार करने और इस मत के प्रसार को रोकने के लिए कहा गया। निरंकारियों और कट्टर सिखों के बीच तनाव बढ़ता गया और उनके बीच कई दंगे भी हुए।

1978 में पंजाब की अकाली सरकार संजय गाँधी और ज्ञानी जैल सिंह का मोहरा बन गयी। उन्होंने घोषणा कर दी कि अमृतसर में निरंकारियों के एक बड़े समागम के लिए अनुमति दे दी जायेगी। एक युवा सिख व्यापारी राजा हरमीत सिंह बतरा इस समागम के दिन (13 अप्रैल 1978) स्वर्णमन्दिर के भीतर था। उसने वहाँ देखा कि अकाली सरकार के राजस्व मंत्री जीवन सिंह उमरानंगल उत्तेजित सिखों को यह समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि निरंकारियों के इस समागम को रोकने के लिए सरकार कुछ नहीं कर सकती। इसका कारण यह था कि निरंकारी व्यापारियों के सम्बन्ध सूत्र उन हिन्दू व्यापारियों से जुड़े हुए थे, जो जनसंघ के समर्थक थे और उस समय पंजाब की संयुक्त सरकार में जनसंघ

और अकाली दल के बीच समझौता था। राजस्वमंत्री उमरावनंगल से यह समझने में चूक हो गयी कि इन उत्तेजित सिख किसानों को ऐसे तर्कों से शांत नहीं किया जा सकता। सिख किसान संसार के सभी किसानों की तरह ही व्यापारियों को शोषक मानते हैं। इसी बीच भिंडरांवाले अचानक उठा और चीखा: 'हम यह निरंकारी समागम नहीं होने देंगे। हम वहाँ जायेंगे और उनके टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।' बतरा और स्वर्ण मन्दिर में इकट्ठा दूसरे लोगों ने भिंडरांवाले को शायद पहली बार देखा था। लेकिन बतरा भिंडरांवाले से प्रभावित नहीं हुआ। उसका कहना था: 'मुझे उस आदमी के व्यवहार से नफरत-सी हुई।'

भिंडरांवाले और पंजाब सरकार के एक कृषि निरीक्षक फौजा सिंह उस जुलूस के आगे-आगे चले जो निरंकारियों के खिलाफ नारे लगाता हुआ स्वर्ण मन्दिर से निकल रहा था। निहंगों का बगा यानी निहंग शिविर के दो मील लंबे रास्ते में एक जगह एक उत्तेजित सिख ने एक हिन्दू हलवाई के हाथ काट डाले। फिर भी पुलिस ने इस जुलूस को रोकने की कोई कोशिश नहीं की। जब उत्तेजित सिखों का यह जुलूस निरंकारी समागम की जगह तक पहुँचा तो फौजा सिंह ने अपनी तलवार निकाल ली और उसने निरंकारियों के गुरु बाबा गुरुबचन सिंह पर वार किये। बाबा के एक अंगरक्षक ने फौजा सिंह को गोली मार दी और सिख-निरंकारी झड़प शुरू हो गयी, जिसमें 12 सिख और 3 निरंकारी मारे गये। ये 12 सिख शहीद बन गये और संजय गांधी-जैलसिंह को आखिरकार वह मुद्दा मिल ही गया, जिसकी उन्हें तलाश थी।

संजय गांधी और कांग्रेस ने इन बारह सिखों की शहादत की घटना को निरंकारी आंदोलन को भड़काने के लिए इस्तेमाल किया। अकाली दल के नेता जब तक सत्ता में रहे तब तक वे अपनी इस दुविधा से उबर नहीं पाये कि वे क्या करें। सिख धर्म का रक्षक संगठन होने के नाते वे एक सिखधर्म-विरोधी आन्दोलन के खिलाफ चलने वाली लड़ाई से खुद को अलग नहीं रख सकते थे। दूसरी तरफ, खुद सरकार में रहते हुए वे इस अराजकता का खुला समर्थन भी नहीं कर सकते थे। जब तक अकाली दल सत्ता में रहा उसने निरंकारियों के विरुद्ध चलने वाले सिख आन्दोलन को कोई समर्थन नहीं दिया। निरंकारियों के खिलाफ ज्यादातर प्रदर्शन दिल्ली में हुए, जिन्हें कांग्रेस पार्टी द्वारा नियंत्रित दिल्ली के गुरुद्वारों की समितियों ने आयोजित किया था।

कांग्रेस प्रचार-तंत्र ने भिंडरांवाले को निरंकारी समागम पर हमला करने वाले 'हीरो' की तरह पेश करना शुरू किया। वैसे इस बारे में काफी सन्देह भी है। फौजा सिंह की विधवा बीबी अमरजीत कौर का कहना था कि जब सिखों का जुलूस स्वर्ण मन्दिर से निकलकर निरंकारी समागम तक पहुँचा, उसके पहले रास्ते में ही भिंडरांवाले जुलूस से खिसक गया था। अपने पति की मौत के बाद बीबी अमरजीत

कौर स्वर्णमन्दिर में ही रहने लगी थी। वहाँ वह उग्रवादियों के एक छोटे-से गुट 'अखंड कीर्तनी जत्था' की नेता बनी और जब तक भिंडराँवाले जिन्दा रहा तब तक वह उसके लिए गले की हड्डी बनी रही। वह स्वर्ण मन्दिर में रहने वाले गिने-चुने लोगों में से एक थी, जो खुलेआम भिंडराँवाले की आलोचना करते थे और वह अपने पति की मौत के लिए उसकी 'कायराना' हरकत की भर्त्सना करती थी।

भिंडराँवाले को चढ़ाने और अकाली नेताओं को परेशान करने के लिए संजय गाँधी और जैल सिंह को एक पार्टी की भी जरूरत थी, जो यह काम कर सके। इसीलिए 13 अप्रैल 1978 को निरंकारी समागम पर हमले के एक हफ्ते पहले एक नयी पार्टी खड़ी हो गयी। इस पार्टी का नामकरण महाराजा रणजीत सिंह के साम्राज्य से पहले की सिख सेना 'खालसा' के नाम पर 'दल खालसा' किया गया। इस नयी पार्टी का उद्घाटन समारोह एरोमा होटल में हुआ और होटल के एक कर्मचारी के अनुसार 600 रुपये के बिल का भुगतान जैलसिंह ने किया। एक स्टेनोग्राफर को, जिसने पिछले दिनों खालिस्तान के समर्थन में पर्चा छपवाया था, दल खालसा का अध्यक्ष चुना गया।

खालिस्तान की स्थापना की बातें की गयीं। 'खालिस्तान' का मतलब है खालसाओं की धरती और पृथकतावादी जिस स्वतंत्र राष्ट्र के लिए लड़ रहे हैं उसे यह नाम दिया गया। स्वर्ण मन्दिर में सैनिक कार्रवाई के बारे में सरकार द्वारा जारी श्वेतपत्र में कहा गया है कि 'दल खालसा की स्थापना दरअसल प्रकट रूप से पृथक सिख राज्य की माँग करने के लिए ही हुई थी।' इसके बावजूद जैलसिंह ने, जो पंजाब के मुख्यमंत्री रह चुके थे और जो बाद में केन्द्र सरकार में गृहमंत्री और फिर भारत के राष्ट्रपति बने, इस संगठन को लगातार अपना समर्थन देना जारी रखा। चंडीगढ़ के पत्रकारों को अच्छी तरह से यह याद है कि कैसे जैलसिंह उनको टेलीफोन करके 'दल खालसा' की गतिविधियों की खबरें अखबारों के पहले पृष्ठ पर छापने का आग्रह किया करते थे। भिंडराँवाले दल खालसा के साथ कभी भी खुले रूप से सम्बद्ध नहीं था। अपनी मृत्यु तक वह लगातार यह कहता रहा कि मैं कोई राजनीतिक व्यक्ति नहीं, एक धार्मिक व्यक्ति हूँ, लेकिन दल खालसा हमेशा भिंडराँवाले की पार्टी के रूप में ही जाना जाता रहा।

एक साल बाद दल खालसा और भिंडराँवाले ने पहली बार चुनाव में शिरकत की। ये चुनाव शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति की सदस्यता के लिए होने वाले महत्वपूर्ण चुनाव थे। अकाली दल के लिए यह बहुत अहम था कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति पर वह अपना नियंत्रण बनाये रखे, क्योंकि यही अकाली दल का खर्चा देती थी और पूरे पंजाब के गुरुद्वारों का संचालन करती थी जहाँ से दल के आदेश फैलते थे। संजय गाँधी और ज्ञानी जैलसिंह को भिंडराँवाले से बड़ी उम्मीदें थीं। भिंडराँवाले निरंकारियों के विरुद्ध चलने वाले आन्दोलन का सबसे

महत्वपूर्ण नेता बन चुका था और अकालियों का गढ़ समझे जाने वाले भटिंडा, फरीदकोट और फिरोजपुर जिलों के तमाम गाँवों में अपने उपदेशों से उसने अच्छा खासा नाम कमा लिया था। लेकिन संजय गाँधी और जैलसिंह को निराश होना पड़ा।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति की 140 सीटों में भिंडरांवाले द्वारा समर्थित 4 उम्मीदवार ही चुनाव जीत पाये। अकाली दल के नेताओं को बहुमत बनाये रखने में कामयाबी हासिल हुई। इधर संजय और जैलसिंह निरंकारीविरोधी आन्दोलन और दल खालसा के माध्यम से भिंडरांवाले के नाम को आगे बढ़ाने में लगे रहे। इन कांग्रेसियों के सौभाग्य से अकाली दल के नेताओं की कलह तीखी होती गयी, जिसने उन्हें अपनी चालों के लिए एक नया क्षेत्र दे दिया। 1979 में पंजाब के अकाली मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल ने मोरारजी देसाई की सरकार को गिराने वाले जनता पार्टी के असन्तुष्ट गुट का विरोध किया, जबकि गुरुचरण सिंह तोहड़ा इसी गुट के साथ चले गये।

हालांकि 1980 के आम चुनावों के आते-आते अकाली नेताओं की गहरी फूट और जनता पार्टी के बिखराव ने पंजाब में अकाली दल की स्थिति को बहुत कमजोर कर डाला था, लेकिन जैलसिंह को तब भी यह जरूरी लगा कि भिंडरांवाले का समर्थन कांग्रेस के लिए प्राप्त किया जाये। राजनीतिक आदमी न होने की अपनी तमाम सफाई के बावजूद भिंडरांवाले ने तीन चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस के पक्ष में बड़ी सक्रियता से प्रचार-कार्य किया। तब तक उसका नाम इतना असरदार हो चुका था कि दो उम्मीदवारों ने अपने पोस्टरों में लिख रखा था: "हमें भिंडरांवाले का समर्थन प्राप्त है।" जिन उम्मीदवारों का भिंडरांवाले ने समर्थन किया उनमें पंजाब कांग्रेस पार्टी के हिन्दू अध्यक्ष आर० एल० भाटिया भी थे। दूसरी उम्मीदवार, आपातकाल के दौरान विवादास्पद भूमिका निभाने वाले वरिष्ठ पुलिस अधिकारी पी० एस० भिंडर की पत्नी थी, जिनके लिए भिंडरांवाले ने प्रचार किया। बाद में श्रीमती गाँधी ने पी० एस० भिंडर को भिंडरांवाले के आतंकवादियों का सफाया करने के लिए पंजाब का पुलिस आयुक्त बनाकर भेजा।

श्रीमती भिंडर के चुनाव क्षेत्र गुरुदासपुर से उस समय जनता पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ रहे प्राणनाथ लेखी का कहना है कि चुनाव-अभियान में श्रीमती गाँधी और भिंडरांवाले एक ही मंच पर उपस्थित हुए। भिंडरांवाले की मृत्यु के बाद जब आधिकारिक तौर पर भिंडरांवाले के साथ श्रीमती गाँधी या कांग्रेस पार्टी के सम्बन्धों का खंडन किया गया तो प्राणनाथ लेखी ने प्रधानमंत्री को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा: "जनवरी 1980 में सातवीं लोकसभा के लिए होने वाले आम चुनाव में गुरुदासपुर चुनाव-क्षेत्र के आपके चुनावी अभियान में भिंडरांवाले आपके साथ था।" अगर भिंडरांवाले के साथ अपनी पार्टी

के सम्बन्ध को स्वीकार करने के वारे में श्रीमती गाँधी कहीं ज्यादा-से-ज्यादा खुली हैं तो वी० वी० सी० के सामयिक घटनाओं के कार्यक्र 'पेनोरामा' को दिये गये अपने इंटरव्यू में। इस इंटरव्यू में श्रीमती गाँधी से पूछा गया था कि क्या इस धर्म-प्रचारक (भिंडराँवाले) को प्रभावशाली वनाने में उनकी पार्टी का हाथ रहा है? उनका जवाव था : 'कतई नहीं। मैं उसे जानती ही नहीं थी। कभी नहीं जानती थी।' लेकिन उन्होंने यह भी कहा : 'चुनावों के दौरान भिंडराँवाले हमारी पार्टी के एक उम्मीदवार के पक्ष में प्रचार करने गये। मुझे नहीं मालूम कि वह उम्मीदवार कौन था। मैं नहीं जानती कि भिंडराँवाले ने उस उम्मीदवार के साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों के कारण ऐसा किया या स्थानीय अकालियों से नाराजगी के कारण।'

5

भिंडराँवाले की गिरफ्तारी

जब श्रीमती गांधी दुबारा सत्ता में आयी तो उन्होंने ज्ञानी जैल सिंह को अपने मंत्रिमंडल में गृहमंत्री का पद देकर पुरस्कृत किया। यह व्यक्ति जिसने अपने जीवन की शुरुआत भिंडराँवाले की तरह ही एक नामालूम धर्मोपदेशक के रूप में की, लेकिन भिंडराँवाले की तरह कभी इस पेशे के शिखर तक न पहुँचा हो, भारत सरकार के मंत्रिमंडल में दूसरे नम्बर के पद तक पहुँचने में सफल हो गया था। फिर भी जैलसिंह की यह खुशी ज्यादा दिन तक टिक नहीं सकी। उसी साल बाद में पंजाब के विधानसभाई चुनावों में भी कांग्रेस को बहुमत मिला और श्रीमती गाँधी ने जैलसिंह के कट्टर विरोधी दरबारासिंह को वहाँ का मुख्यमंत्री बना दिया। भारत में गांधी परिवार को छोड़कर बाकी सभी राजनीतिक नेताओं को अपने असली आधार की फिक्र करनी ही पड़ती है। किसी एक राज्य में अपनी मजबूत जड़ों के दम पर ही कोई नेता दिल्ली में अपना स्वतंत्र प्रभाव कायम रखने की उम्मीद कर सकता है। लेकिन चूंकि श्रीमती गांधी को कभी यह रास नहीं आया कि उनके दल के किसी नेता का कोई अपना स्वतन्त्र प्रभाव हो, इसलिए उन्होंने पूरी कोशिश की कि उनका कोई सहयोगी अपने राज्य में बहुत प्रभावशाली न बनने पाये। अगर गृहमंत्री ज्ञानी जैलसिंह के किसी नुमाइन्दे को पंजाब का मुख्यमंत्री बना दिया जाता तो जैलसिंह ही पंजाब के असली बादशाह होते। श्रीमती गांधी यह कतई नहीं चाहती थी, इसीलिए जैलसिंह के प्रतिद्वन्द्वी दरबारा सिंह को पंजाब का मुख्यमंत्री चुना गया।

राजनीतिक दृष्टि से ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी ध्रुव थे। 1972 से 1977 तक, जब जैलसिंह पंजाब के मुख्यमंत्री थे, उन्होंने अकाली दल के साथ खुद उसी के हथियार से लड़ाई लड़ी थी—यानी धर्म से। उन्होंने सिखों को यह दिखाने की जीतोड़ कोशिश की कि वे धर्म के प्रति उतने ही समर्पित हैं जितना कोई भी दूसरा अकाली नेता। उन्होंने लगभग सभी सिख त्यौहारों में शामिल होने और वहाँ धार्मिक प्रवचन करने का नियम-सा बना लिया था। अमृतसर के सिख मिशनरी कॉलेज में धार्मिक प्रवचन करने की भी खास प्रवृत्ति थी। इसी कॉलेज से खुद उन्होंने भी धार्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। जिन-जिन स्थानों में सिखों के अन्तिम

गुरु गोविन्दसिंह ने प्रवचन दिया था, उन सबको एक ही सड़क के माध्यम से जोड़ कर उन्होंने उस सड़क का नाम रखा—'गुरु गोविन्दसिंह मार्ग'। इसके बाद मुख्य मंत्री जैलसिंह आनन्दपुर से 400 मील पूर्व की ओर पंजाब के पश्चिमी सीमांत के लिए रवाना हुए, जहाँ गुरु गोविन्दसिंह ने सिखों को अपने धर्म की सशस्त्र रक्षा और पाँच 'ककार' पहनने की ऐतिहासिक जिम्मेदारी सौंपी थी। ट्रैक्टरों, ट्रकों, बसों, ट्रालियों और कारों का यह कारवाँ चार दिनों की यात्रा के बाद अपनी मंजिल तक पहुँचा। यह जुलूस रास्ते में उन जगहों पर रुकता रहा, जहाँ वर्षों पहले स्वयं गुरु गोविन्दसिंह अपनी यात्रा के दौरान रुके थे। खुद अकाली दल को मानना पड़ा था कि गुरु गोविन्दसिंह मार्ग की पूरी योजना एक निहायत मौलिक सूझ थी। लेकिन दरबारासिंह ने श्रीमती गाँधी से यह शिकायत की कि जैलसिंह सांप्रदायिक राजनीति चलाकर काँग्रेस की धर्मनिरपेक्षता पर बट्टा लगा रहे हैं। श्रीमती गाँधी को धर्म से अपने पिता पंडित जवाहरलाल नेहरू जितना परहेज नहीं था, सो उन्होंने दरबारा सिंह की धर्मनिरपेक्षता के बजाय जैलसिंह मार्का सिख राजनीति का ही समर्थन किया। इस तरह जैलसिंह लगातार धार्मिक सिख समागमों का आयोजन करते रहे। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि हर राजनीतिक सभा की शुरुआत सिख प्रार्थनाओं (गुरुवाणी) से हो। उन्होंने पंजाब के एक कस्बे का नामकरण गुरु गोविन्दसिंह के शहीद पुत्र के नाम पर किया। उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह के घोड़े के वंशज कहे जाने वाले घोड़ों का एक दस्ता भी अपने द्वारा बनवायी गयी सड़क पर भेजा। एक रपट के अनुसार : 'गाँव के लोग गहरी श्रद्धा के साथ उन घोड़ों की लीद उठा-उठाकर अपने घर ले गये।'[1] जैलसिंह की धार्मिक राजनीति ने अकाली दल को असहाय कर डाला। वे आपातकाल तक बिना किसी संकट के सत्ता में रहे आये। इस दौरान उन्हें अकालियों की किसी बड़ी चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा।

1980 में जब दरबारा सिंह मुख्यमंत्री बने तो उन्होंने जैलसिंह की इस राजनीति को उलट कर वापस काँग्रेस की परम्परागत धर्मनिरपेक्ष नीतियों की ओर मोड़ने का फैसला किया। दरबारासिंह दूसरे काँग्रेसी नेताओं और जैलसिंह की तरह कभी भी अकाली दल के सदस्य नहीं थे। वे साम्प्रदायिकता के साथ किसी भी तरह के समझौते के सख्त विरोधी थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था : 'किसी आदमी के खिलाफ खुद उसी के हथियारों से लड़ाई नहीं की जा सकती।' खुद सिख होने के बावजूद उन्होंने एक बार एक इंटरव्यू में पूरी स्पष्टता के साथ यह राय जाहिर की थी कि अब सिख संस्कृति जैसी कोई चीज शेष नहीं है। 'सिख संस्कृति' पहले जरूर थी, लेकिन अब वह संस्कृति अपनी हद तक पहुँच चुकी है। सिख संस्कृति अब मिट चुकी है, सिख संस्कृति अब एक साझी संस्कृति में बदल गयी है। और इसी साझी संस्कृति को विकसित करने का काम मैं कर रहा हूँ।'[2]

कोई ताज्जुब नहीं कि रूढ़िवादी सिखों को दरबारा सिंह के ऐसे वक्तव्यों में वही पुराना खतरा दिखायी पड़ने लगा—यानी यह कि कांग्रेस पार्टी का असली मंसूबा उनके धर्म को बहुसंख्यक हिन्दू संस्कृति के भीतर विलीन कर लेना है।

दरबारासिंह ने ऐसे मंत्रियों, अधिकारियों और वरिष्ठ पुलिस अफसरों को नियुक्त किया जो धर्मनिरपेक्ष थे और हिन्दू और सिख दोनों ही समुदायों के उग्रवादियों के विरुद्ध कड़ा रवैया अख्तियार किया। चंडीगढ़ के सेंटर फार रिसर्च इन रूरल ऐंड इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट के सदस्यों द्वारा किये गये एक अध्ययन में कहा गया है: 'कांग्रेस का एक धड़ा, जो जैलसिंह का वफादार था, लगातार साम्प्रदायिक तत्वों के विरुद्ध संघर्ष की जगह उनसे समझौते की राजनीति के पक्ष में वकालत करता रहा, हालांकि यह धड़ा कांग्रेस पार्टी में अल्पसंख्यक ही था।'[3] पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री दरबारासिंह और दिल्ली के केन्द्रीय गृहमंत्री जैलसिंह के बीच उन दिनों यही बुनियादी संघर्ष-रेखा थी।

श्रीमती गांधी के सत्ता में आने के पहले ही साल हुई तीन हत्याओं ने उनकी पार्टी के भीतर के तनाव सामने आये और इन्हीं हत्याओं के कारण पंजाब की राजनीति में भिंडरांवाले उभर कर आया। 24 अप्रैल, 1980 को निरंकारियों के गुरु बाबा गुरुबचन सिंह की दिल्ली स्थित उनके आवास में गोली मारकर हत्या कर दी गयी। अमृतसर में हुए निरंकारी समागम के वक्त से ही भिंडरांवाले ने उनके विरुद्ध अपना अभियान छेड़ रखा था। उसे सबसे ज्यादा बौखलाहट तब हुई जब पंजाब सरकार ने सिखों की हत्या के जुर्म में फंसे निरंकारियों के मुकदमे को हरियाणा के न्यायालय में ले जाये जाने की अनुमति दे दी और हरियाणा की अदालत ने उन निरंकारियों को दोषमुक्त कर दिया। निरंकारियों ने तर्क प्रस्तुत किया था कि पंजाब के किसी न्यायालय में उन्हें न्याय नहीं मिल सकेगा। इसलिए आश्चर्य नहीं कि बाबा गुरुबचन सिंह की हत्या के मामले में पुलिस रिपोर्ट में भिंडरांवाले का नाम भी आया।

जब भिंडरांवाले को इस पुलिस रिपोर्ट की भनक लगी तो वह स्वर्णमन्दिर परिसर की एक सराय में छिप गया। वह वहाँ तब तक रहा जब तक जैलसिंह ने संसद में यह वक्तव्य नहीं दे दिया कि इस हत्या में जरनैलसिंह भिंडरांवाले का कोई हाथ नहीं है। इस वक्तव्य के कुछ ही समय बाद भिंडरांवाले ने कहा कि गुरुबचन सिंह को मारने वाले सिखों को अकाल तख्त के द्वारा सम्मानित किया जाना चाहिए। भिंडरांवाले ने यह भी कहा कि अगर वे हत्यारे उसके पास आयें तो वह उन्हें सोने से तौलेगा। भिंडरांवाले के इन वक्तव्यों से जैलसिंह को परेशानी हुई, लेकिन उन्होंने उन्हें इसलिए नजरअन्दाज कर दिया कि दरबारासिंह के खिलाफ उनकी लड़ाई में भिंडरांवाले उनके लिए अब भी उपयोगी था।

दूसरी हत्या के परिणाम भिंडरांवाले के लिए ज्यादा गम्भीर साबित हुए।

9 सितम्बर, 1981 को जालंधर में पंजाब केसरी प्रकाशन समूह के मालिक लाला जगतनारायण को गोली मार दी गयी। उनका प्रभावशाली दैनिक अखबार 'पंजाब केसरी' भिंडराँवाले की तीखी आलोचना करता था और निरंकारियों का पक्ष लेता था। अपने सख्त सम्पादकीय लेखों में लाला जगतनारायण ने खुद लिखा था कि पंजाब में अल्पसंख्यकों (यानी ज्यादातर हिन्दुओं) को यह डर है कि उन्हें पंजाब की सरकार और पुलिस से कभी न्याय नहीं मिलेगा, क्योंकि पंजाब की पुलिस और सरकार निरंकारी समागम में हुए हमले की जाँच-कार्रवाई में सिखों का पक्ष ले रही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि लाला जगतनारायण के अखबारों ने हिन्दू और सिखों के बीच साम्प्रदायिक घृणा को हवा देने में एक भूमिका निभायी। पंजाब के सिखों द्वारा खालिस्तान का समर्थन किये जाने को लेकर भी उन्होंने संपादकीय लिखे। लाला जगतनारायण ने यह धारणा फैलायी कि खालिस्तान का प्रभाव सिखों में जितना सोचा जा रहा है, उससे कहीं ज्यादा है। इस तरह उन्होंने हिन्दुओं के मन में सिख समुदाय के प्रति सन्देह को और बढ़ाया। उन्होंने चेतावनी दी कि खालिस्तान की माँग कोई शिगूफा नहीं है, सरकार को इसके समर्थकों के खिलाफ सख्त कार्रवाई करनी चाहिए। लाला का मानना था कि आनन्दपुर साहब प्रस्ताव इस खालिस्तानी आन्दोलन का ही एक हिस्सा है। एक बार उन्होंने लिखा कि 'सुखजिन्दर सिंह (एक खालिस्तान समर्थक) ने यह नारा यों ही हवा में नहीं लगाया। उसे अच्छी तरह से पता है कि आनन्दपुर साहब प्रस्ताव एक-दूसरे तरीके से सिखों के अलग और स्वतन्त्र राष्ट्र की ही माँग करता है।' लाला जगतनारायण का यह पक्षपातपूर्ण रवैया प्रतीकात्मक था। दरअसल पंजाब के सभी अखबार साम्प्रदायिक आधारों पर बँटे हुए थे।

कहना न होगा कि भिंडराँवाले लाला जगतनारायण का जबर्दस्त आलोचक था और इसलिए एक बार फिर पुलिस की रपटों में कहा गया कि उसने उनकी हत्या का षड्यंत्र रचा था। साम्प्रदायिकता के खिलाफ कड़ा रुख अपनाने की अपनी नीति के कारण ही पंजाब के मुख्यमंत्री दरबारासिंह ने भिंडराँवाले को गिरफ्तार करने का निर्णय लिया। हालाँकि ऐसा कहना तो आसान था, करना मुश्किल।

लाला जगतनारायण की हत्या के चार दिन बाद आकाशवाणी ने घोषणा की कि भिंडराँवाले की गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया गया है। जब पुलिस चान्दोकलाँ पहुँची, जहाँ भिंडराँवाला प्रवचन दे रहा था, तो पता चला वह पहले ही खिसक चुका है। आकाशवाणी द्वारा इस घोषणा के प्रसारित होने के बावजूद कि भिंडराँवाले एक फरार अपराधी है, पुलिस उसे वहाँ से दो सौ मील दूर अपने गुरुद्वारे तक पहुँचने से रोक पाने में नाकामयाब रही।

चान्दोकलाँ हरियाणा में है। हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल उन दिनों

कांग्रेसी नेताओं के कृपापात्र बनने को खासे उतावले थे। जब जनता पार्टी की सरकार थी, तब भी भजनलाल हरियाणा के मुख्यमंत्री थे। दुबारा सत्ता में आने के बाद श्रीमती गांधी ने जनता पार्टी की सरकारों को बर्खास्त कर दिया था, लेकिन भजनलाल रातोंरात अपनी सरकार समेत सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी के साथ हो लिये और मुख्यमंत्री के रूप में अपनी कुर्सी बचाने में सफल हो गये। लेकिन कांग्रेसी नेता उन्हें शक की नजर से देखते थे। उनका यह सोचना जायज भी था कि अगर कभी कांग्रेस संकट में पड़ी तो भजनलाल जैसा ढुलमुल व्यक्ति उन्हें भी धोखा दे सकता है। उन दिनों कांग्रेस में वफादारी की कीमत थी। वे लोग जो श्रीमती गांधी के संकट के दिनों में जनता सरकार द्वारा आपातकाल को लेकर बैठाये गये जांच-आयोगों से डरकर श्रीमती गांधी को छोड़ गये थे, अब फिर उनका दामन थामने की फिराक में थे। वे नेता जो संकट के दिनों में श्रीमती गांधी के साथ रहे, उन्होंने ऐसे तत्वों को कांग्रेस में दुबारा शामिल किये जाने का विरोध किया। इसी लिए भजनलाल केन्द्र सरकार के मंत्रियों को उपकृत करने का कोई भी मौका नहीं चूकना चाहते थे। यही वजह है कि इस तथ्य पर विश्वास नहीं होता कि उन्होंने भिंडरांवाले को बिना गिरफ्तार किये हरियाणा से यूं ही भाग जाने दिया होगा। सम्भव है, इसके निर्देश उन्हें ऊपर से मिले हों।

प्रख्यात पत्रकार कुलदीप नैयर ने लिखा है कि केन्द्रीय गृहमंत्री जैलसिंह ने भजनलाल को टेलीफोन करके भिंडरांवाले को गिरफ्तार न करने के लिए कहा था। एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने सतीश जेकब को बताया कि भजनलाल ने भिंडरांवाले को वापस उसके गुरुद्वारे तक पहुंचाने के लिए चान्दोकलां में एक सरकारी गाड़ी तक भेजी थी। भिंडरांवाले वहां से बहुत हड़बड़ी में भागा। वह धार्मिक कागजात ढोने वाली अपनी गाड़ियां साथ नहीं ले जा सका था।

जब पंजाब पुलिस चान्दोकलां पहुंची और उसने पाया कि हरियाणा पुलिस ने भिंडरांवाले को भाग जाने दिया है, तो वह बौखला उठी। गांव वालों के अनुसार उन्होंने जानबूझकर भिंडरांवाले के वाहनों में आग लगा दी। लेकिन सरकारी पक्ष का कहना है: 'लाला जगतनारायण की हत्या के मामले में भिंडरांवाले को गिरफ्तार करने के लिए जब पुलिस चान्दोकलां पहुंची, उसके पहले ही भिंडरांवाले वहां से जा चुका था। भिंडरांवाले के कुछ अनुयायियों ने जब पुलिस पर गोली चलायी तो उसके नतीजे में हिंसात्मक घटनाएं हुईं। दोनों पक्षों में गोलियां चलीं और आगजनी की वारदात हुई।' लेकिन आगजनी की यह वारदात सरकार को बहुत महंगी पड़ने वाली थी। भिंडरांवाले का एक सचिव था, जिसका कुल काम यह था कि भिंडरांवाले के प्रवचन का एक-एक शब्द लिखता जाये ताकि भविष्य के लिए ये प्रवचन सुरक्षित रहें। भिंडरांवाले के वही अमर शब्द उस दिन चान्दोकलां में

आग की लपटों में झोंक दिये गये और इसके लिए भिंडराँवाले ने कभी भी सरकार को माफ नहीं किया। दरअसल भिंडराँवाले के अपने राजनीतिक गाडफादर जैलसिंह और श्रीमती गाँधी के खिलाफ होने की वजह प्रवचनों का जलाया जाना था, गिरफ्तारी नहीं। सरकार के खिलाफ अपने उग्र भाषणों में वह अकसर इस घटना का जिक्र करता था और श्रोताओं से पूछता था : 'अगर कोई तुम्हारे किसी घनिष्ठ को खत्म कर दे तो तुम क्या करोगे ? मेरे कागज जलाकर उन्होंने मेरे गुरु की वेइज्जती की है।'

जब चौक मेहता के गुरुद्वार में भिंडराँवाले के छुपे होने की बात हर कोई जान गया, तो विवश होकर पुलिस अर्धसैनिक बलों ने गुरुद्वारे की घेराबन्दी कर ली। दरबारा सिंह भिंडराँवाले को गिरफ्तार करने पर अड़े हुए थे, जब कि केन्द्र सरकार को डर था कि इससे हिंसा जरूर भड़केगी, क्योंकि भिंडराँवाले की सुरक्षा के लिए भारी तादाद में सिख वहाँ इकट्ठे हो गये थे। तीन पुलिस अधिकारियों को चौक मेहता गुरुद्वारे के अन्दर भिंडराँवाले से बातचीत करने के लिए भेजा गया। आखिरकार चान्दोकलाँ से भागने के पांच दिन बाद भिंडराँवाले आत्मसमर्पण के लिए तैयार हो गया। उसने कहा कि वह 20 सितम्बर को दोपहर 1 बजे पुलिस के सामने आत्मसमर्पण करेगा, लेकिन इससे पहले वह दूसरे सिख नेताओं के साथ एक धार्मिक सभा को सम्बोधित करेगा। पुलिस ने निहायत दब्बूपन के साथ उसकी यह शर्त मान ली। भिंडराँवाले ने अपनी गिरफ्तारी के पहले पंजाब सरकार के खिलाफ एक आग उगलता भाषण दिया और फिर अपने समर्थकों को उन्माद की हद तक उत्तेजित करने के बाद उसने कहा कि जब पुलिस उसे गिरफ्तार करके ले जाये तो वे किसी तरह की हिंसा पर उतारू न हों। जैसे ही पुलिस भिंडराँवाले को गिरफ्तार करके वहाँ से गयी, उसके समर्थकों ने पुलिस पर गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। दोनों पक्षों में हिंसक झड़प हुई, जिसमें कम-से-कम ग्यारह लोग मारे गये।

भिंडराँवाले की गिरफ्तारी के दिन से ही पंजाब में हिंसात्मक घटनाओं का सिलसिला शुरू हुआ, जिनकी परिणति दरबारासिंह सरकार के पतन और अन्ततः स्वर्णमन्दिर में सैनिक कार्रवाई के रूप में हुई। तीन मोटरसाइकिल-सवार सिखों ने जालंधर के वाजार में हिन्दुओं पर गोली चलाकर चार व्यक्तियों को मार डाला और 12 लोगों को घायल कर दिया। अगले दिन अमृतसर के पास तरनतारन कस्बे में एक हिंदू की हत्या हुई और 13 घायल हुए। पाँच दिन वाद अमृतसर के निकट एक मालगाड़ी पटरी से उतार दी गयी। रेल-लाइनों में गड़बड़ी करके गाड़ियों को उलटाने की दो दूसरी कोशिशें भी की गयीं। भिंडराँवाले की गिरफ्तारी के नौ दिन वाद 29 सितम्बर को सिखों ने इंडियन एयर लाइन्स के एक हवाई जहाज का अपहरण कर लिया और उसे वे लाहौर ले गये। इन घटनाओं से यह

जाहिर होता है कि भिंडरांवाले के पास एक समर्थ संगठन था। इनमें से सबसे गम्भीर घटना थी पटियाला के पुलिस डी० आई० जी० के कार्यालय में बम-विस्फोट। यह डी० आई० जी० उन पुलिस अधिकारियों में से एक था, जिन्हें भिंडरांवाले को गिरफ्तार करने के लिए चान्दोकलाँ भेजा गया था। डी० आई० जी० इस बम-विस्फोट से बाल-बाल बच निकलने में सफल हुआ, लेकिन भिंडरांवाले ने उन पुलिस अधिकारियों के खिलाफ प्रतिशोध का अभियान-सा छेड़ दिया, जिन्होंने उसके और उसके समर्थकों के खिलाफ कार्रवाई की थी। यह अभियान उसने पूरी क्रूरता के साथ जारी रखा।

फिरोजपुर जेल में बहुत कम अवधि की कैद के दिनों में भिंडरांवाले ने जिद की कि उसे सिर्फ सिख सन्तरियों की पहरेदारी में ही रखा जाये जिनकी दाढ़ियाँ लहराती हुई हों। भिंडरांवाले दाढ़ी को लेकर बड़ा मोहग्रस्त था। वह सिखों द्वारा दाढ़ी को गूँथने-बाँधने पर एतराज भी करता था। सरकार ने सिख सन्तरियों संबंधी भिंडरांवाले की माँग को मान लिया, जबकि धर्मनिरपेक्ष भारत में यह माँग कानून-सम्मत नहीं थी, क्योंकि पुलिस और जेल विभाग में सभी धर्मों और वर्गों के लोग भरती किये जाते हैं।

14 अक्तूबर को, यानी पंजाब सरकार द्वारा भिंडरांवाले की गिरफ्तारी का झंझट मोल लेने के एक महीने के ही भीतर जैलसिंह ने दिल्ली में संसद को जानकारी दी कि 'पंजाब केसरी' के मालिक लाला जगतनारायण की हत्या में भिंडरांवाले का हाथ होने के कोई सबूत नहीं मिले हैं। सरकार ने भिंडरांवाले को छोड़ देने का फैसला लिया। यह किसी न्यायालय का आदेश नहीं था। कुछ लोगों ने यह कहा कि जैलसिंह ने भिंडरांवाले को छोड़ने का आदेश इस आशा में दिया था कि इससे उसकी गिरफ्तारी के बाद पंजाब में हुई हिंसा थम जायेगी। अगर उम्मीद यही थी तो निश्चित ही गृहमंत्रालय के हाथ निराशा आयी। भिंडरांवाले की रिहाई के अगले दिन ही पंजाब सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी पर, जो कि निरंकारी था, चंडीगढ़ सचिवालय में गोली चलायी गयी और उसके भाई की हत्या कर दी गयी। इसके बाद पुलिस पर हमलों और बम-विस्फोटों का सिलसिला चल निकला।

श्रीमती गाँधी द्वारा पंजाब की दरबारा सरकार को बर्खास्त कर दिये जाने के बाद जब मैं दरबारासिंह से मिला, तो भिंडरांवाले की गिरफ्तारी से जुड़ी विचित्र परिस्थितियों पर उनका जवाब ज्यादा विश्वसनीय था। चतुर-चालाक राजनीतिज्ञ होने के कारण अपनी बातचीत में उन्होंने सीधे-सीधे अपने विरोधी जैलसिंह का नाम तो नहीं लिया, लेकिन यह साफ था कि इशारा किस ओर है।

मैंने उनसे पूछा कि भिंडरांवाले की गिरफ्तारी का आदेश पहले किसने दिया था? उन्होंने कहा, 'मैं उसे चान्दोकलाँ में ही गिरफ्तार करना चाहता था।'

'क्या यह सच है कि हरियाणा के मुख्यमंत्री ने चान्दोकलाँ में पुलिस के पहुँचने के पहले ही भिंडराँवाले को भगाने के लिए एक सरकारी कार वहाँ भेजी ?'

'अगर आपको पता है कि यह सच है तो आप यह मुझसे क्यों पूछते हैं ?'

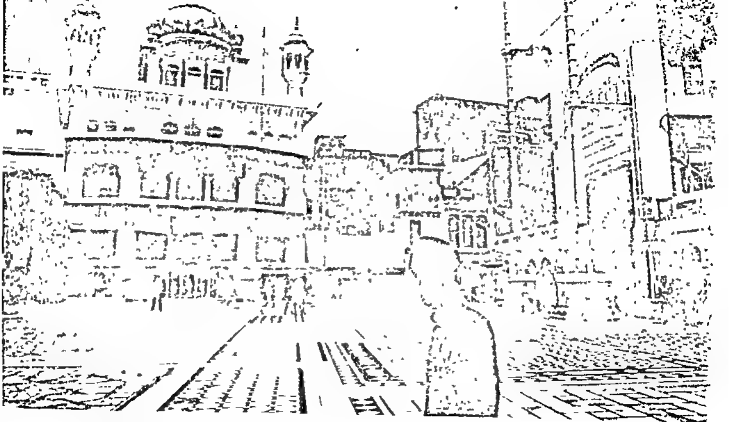
'गिरफ्तारी के बाद उसे रिहा क्यों किया गया ?'

'मुझसे मत पूछिए। आप खुद जानते हैं। उसे बन्दूकों के साथ दिल्ली आने की इजाजत क्यों दी गयी ? उसे तभी गिरफ्तार क्यों नहीं किया गया ?'

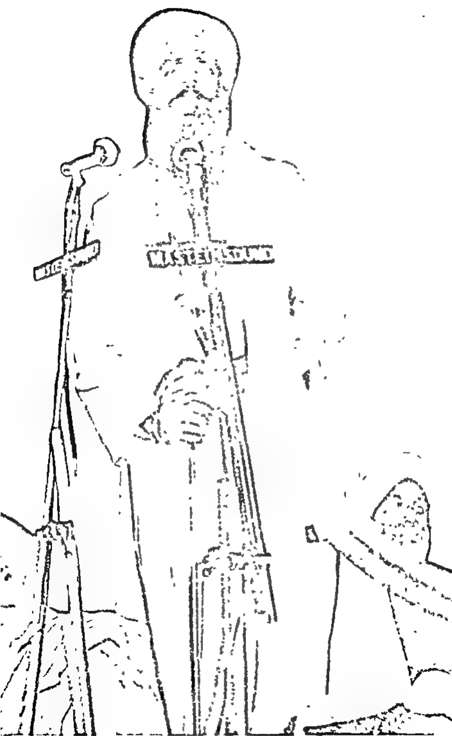
अपनी रिहाई की खुशी मनाने जब भिंडराँवाले दिल्ली आया तो उसने कानून का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन किया। वह अपने अस्सी समर्थकों के साथ राजधानी की सड़कों पर खुलेआम घूमता रहा। उसके बहुत-से समर्थक बस की छतों पर अपने गैरकानूनी हथियारों को खुलेआम चमकाते रहे। यह जिम्मेदारी जैलसिंह की थी कि वे उसे गिरफ्तार करते, क्योंकि दिल्ली पुलिस केन्द्रीय गृहमंत्रालय के अधीन है। भिंडराँवाले और उसके समर्थक इस यात्रा में दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति द्वारा इकट्ठा किये गये हजारों सिखों के साथ दिल्ली के उत्तरी सरहद के एक गुरुद्वारे से लेकर संसद के ठीक पीछे स्थित सिखों के मुख्य गुरुद्वारे बंगला साहब तक अपनी जीत की खुशी मनाते हुए गये। दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति कांग्रेस के ही कब्जे में रही है। इसके अध्यक्ष सन्तोखसिंह के श्रीमती गाँधी के साथ बड़े अच्छे संबंध थे। गृहमंत्री जैलसिंह ने भिंडराँवाले को तिहाड़ जेल में बन्द एक सिख नेता से भी मुलाकात की इजाजत दी।

इसलिए इस तथ्य के कई प्रमाण हैं कि भिंडराँवाले की रिहाई का आदेश गृहमंत्री द्वारा ही दिया गया था। उसे अब भी जैलसिंह का संरक्षण प्राप्त था। लेकिन पंजाब के एक वरिष्ठ कांग्रेसी नेता ने सतीश जेकब को बतलाया कि दरअसल स्वयं श्रीमती गाँधी ने ही उसकी रिहाई का आदेश दिया था। दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष सन्तोखसिंह के परिवार के एक सदस्य ने भी इसकी पुष्टि की। उसने मुझे बताया कि खुद सन्तोखसिंह ने श्रीमती गाँधी के पास जाकर भिंडराँवाले की रिहाई के लिए कहा था। उन्होंने कहा था कि भिंडराँवाले को आजाद नहीं किया गया तो दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति को कांग्रेस के प्रति वफादार बनाये रखना संभव नहीं होगा।

भिंडराँवाले की रिहाई उसके राजनीतिक जीवन का एक निर्णायक मोड़ साबित हुई। अब वह एक ऐसा नायक बन चुका था जिसने भारत सरकार को चुनौती देकर उसे पराजित कर डाला था। अपनी रिहाई के बाद खुद भिंडराँवाले ने कहा था कि जिस चीज को पाने के लिए मुझे वर्षों मेहनत करनी पड़ती उसे सरकार ने एक ही हफ्ते में दे डाला। जैलसिंह ने भिंडराँवाले को इसलिए रिहा करवाया कि उन्हें अब भी विश्वास था कि वे उसका इस्तेमाल अपने विरोधी,



आपरेशन ब्लू स्टार से पहले का अकाल तख्त (चित्र साभार इंडिया टुडे)



दिल्ली में एक स्मृति समारोह में बोलते हुए भिडरांवाले (चित्र साभार संदीप शं

दरबारासिंह को गिराने में कर सकते हैं। दूसरी तरफ, श्रीमती गांधी ने दिल्ली के सिखों में अपना प्रभाव बनाये रखने के लिए यह रिहाई का आदेश दिया था। इस तरह टुच्चे राजनीतिक फायदों के लिए न्याय को बलि चढ़ाकर खुद सरकार ने उस दैत्य को पैदा किया जो श्रीमती गांधी पर उनकी मृत्यु तक, एक काले साये की तरह छाया रहा।

उन्हें अपनी गलती का एहसास कुछ देर से हुआ। वे अब भी यही सोचते थे कि अपने मसूबों के लिए भिंडरांवाले का इस्तेमाल कर सकते हैं। यह तथ्य जाहिर हुआ हत्या की तीसरी घटना में, यानी उसी सन्तोखसिंह की हत्या, जिसने श्रीमती गांधी से भिंडरांवाले की रिहाई के लिए कहा था। 21 दिसम्बर 1981 को एक विरोधी सिख नेता ने उन्हें कार में गोली मार दी। जब उनकी हत्या की खबर सरकार को मिली तो फौरन श्रीमती गांधी, उनके बेटे राजीव गांधी और जैलसिंह अस्पताल पहुँचे। जैलसिंह ने जोर दिया कि सन्तोखसिंह का शव वापस उसके घर ले जाया जाये। सन्तोखसिंह भी भिंडरांवाले का ही आदमी था। भिंडरांवाले ने कई बार कहा था कि निरकारी गुरु की हत्या के मामले में उसकी अदालती फीस के पैसे सन्तोखसिंह ने ही चुकाये थे और इस मुकदमे के अभियुक्तों में से एक रणजीत सिंह को भी वे 2000 रुपये हर महीने देते थे। चौक मेहता के अपने गुरुद्वारे में जिस दिन भिंडरांवाले ने पुलिस के सामने आत्मसमर्पण किया था, उस रविवार को सन्तोखसिंह भी वहां मौजूद था। वहां उसने एक भाषण भी दिया था, जिसमें उसने कहा था . 'अगर सरकार ने भिंडरांवाले को गिरफ्तार किया तो यह सिख समुदाय के दिल की गिरफ्तारी होगी। अगर उन्हें किन्हीं झूठे आरोपों में गिरफ्तार किया गया, तो सिख समुदाय एक ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ेगा और इसका पिघलता लावा समूचे देश को डुबा देगा।'

सन्तोखसिंह की मृत्यु के समय तक भिंडरांवाले के अनुयायी दो पुलिस कर्मचारियों और दस नागरिकों की हत्या कर चुके थे, एक वरिष्ठ प्रशासक की हत्या का प्रयास किया था और पुलिस डी० आई० जी० के कार्यालय को बम से उड़ाने की कोशिश की थी। इसके अलावा बम विस्फोट की अनेक घटनाएं और भी हुई थी। रेलगाडियों के उलटने के प्रयत्न भी किये गये, जिनमें से एक सफल हुआ। एक वायुयान का भी अपहरण किया जा चुका था। इस सबके बावजूद भारत के गृहमंत्री जैलसिंह और प्रधानमंत्री के पुत्र राजीव गांधी ने सन्तोखसिंह के भोग में, यह जानते हुए भी कि वहां भिंडरांवाले मौजूद होगा, जाने का निर्णय लिया था। राजीव गांधी पहले ही नेहरू-गांधी-वंशपरम्परा के उत्तराधिकारी के रूप में चर्चित हो चुके थे। उन्हें ऐसा मौका 1980 में छोटे भाई संजय गांधी की मृत्यु के कारण मिला था। संजय का छोटा हवाईजहाज केंद्रीय दिल्ली के ऊपर कलाबाजी करते हुए ध्वस्त हो गया था।

सन्तोखसिंह के भोग में जैलसिंह की भिंडराँवाले के साथ फोटो भी खिंची, हालाँकि गृहमंत्री से मिलकर भिंडराँवाले को कोई खुशी नहीं हुई थी। अपने धार्मिक कागजों के जलाये जाने की घटना उसके दिमाग में अब भी कड़वाहट भरे थी। एक धार्मिक सभा में उसने साफ इशारा किया था कि जैलसिंह अपनी दाढ़ी में खिजाब लगाते हैं जो कि सिखों की परम्परा में एक और पाप है। भिंडराँवाले ने कहा था कि 'अगर किसी गाँव में तुम देखो कि किसी आदमी का चेहरा कालिख से पोतकर उसके गले में चप्पलों की माला लटकाकर और गधे पर उसे उल्टा बैठा-कर घुमाया जा रहा है, तो जान लो कि उसने किसी की माँ या बहन की इज्जत पर हाथ डालने की कोशिश की थी और उसी की सजा उसे दी जा रही है। लेकिन मुझे ताज्जुब है कि यहाँ कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने खुद ही अपने चेहरे पर कालिख पोत रखी है। पता नहीं किनकी बहनों के साथ उन्होंने दुष्कर्म किया है।'

यद्यपि भिंडराँवाले कांग्रेस से पूरी तरह अलग हो चुका था, लेकिन कांग्रेस उससे अलग नहीं हुई थी। अपनी खिजाब लगी दाढ़ी के बारे में भिंडराँवाले के ऐसे अपमानजनक वक्तव्यों के बावजूद जैलसिंह अब भी सोचते थे कि भिंडराँवाले उनके लिए उपयोगी हो सकता है। लेकिन तब तक भिंडराँवाले के समर्थन के लिए एक और मोहरा मैदान में उतर चुका था और वह था—अकाली दल।

6

सिखों से समझौते की कोशिश

जरनैलसिंह भिंडरांवाले को अपनी पार्टी में शामिल करने का फैसला अकाली दल का शुद्ध अवसरवाद था। दल के नेताओं को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी। लोकसभा और विधानसभा के चुनावों में हार के बाद अकाली दल ने अपनी रण-नीति की समीक्षा की। पत्रकार कुलदीप नैयर ने जो स्वयं भी पंजाबी हैं, लिखा है: 'वे (अकाली दल के नेता) यह महसूस करने लगे थे कि पंजाब में जनता पार्टी के साथ संयुक्त सरकार बनाने से अकाली दल की जो 'धर्म-निरपेक्ष' छवि बनी, उसी ने पार्टी का अहित किया है। सिखों को यह लगने लगा था कि खुद उनकी अपनी पार्टी (अकाली दल) ने ही उनके लिए कुछ नहीं किया। अकाली नेता इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपनी छवि सुधारने के लिए उन्हें सिखों को खुश करना होगा और अकाली दल की पुरानी नीति यानि धर्म और राजनीति को साथ जोड़ने की नीति पर ही निर्भर होना पड़ेगा।'[1] भिंडरांवाले से ज्यादा धर्मनिरपेक्षता-विरोधी भला और कौन हो सकता था और सिखों की नजर में अपनी धर्मनिरपेक्ष छवि खत्म करने के लिए भिंडरांवाले का समर्थन जुटाने से बेहतर कोई और उपाय नहीं था। जब अकाली दल सत्ता में था उस समय निरंकारियों के खिलाफ भिंडरांवाले के जेहाद का उन्होंने समर्थन नहीं किया था, लेकिन अब अपनी नीतियों की समीक्षा करते वक्त उन्हें लगने लगा था कि सिख समुदाय के भीतर भिंडरांवाले एक चुनौती-भरी ताकत बन चुका है। भिंडरांवाले ने सिखों के पवित्र शहर अमृतसर में तम्बाकू के व्यापार को प्रतिबंधित करने के लिए एक विशाल प्रदर्शन भी आयोजित किया था। वैसे तो गुरुओं ने सिखों के लिए सभी नशीली चीजों का इस्तेमाल वर्जित कर रखा है, लेकिन वे तम्बाकू को लेकर कुछ ज्यादा ही संवेदन-शील रहे हैं। यहाँ तक कि अफीम और शराब से भी ज्यादा। सिख किसानों के बीच अफीम की लत तो एक साधारण-सी बात है। 1978 में जब मद्यनिषेध के जोरदार प्रवक्ता तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई अमृतसर की यात्रा पर आये तो पंजाब के अकाली मुख्यमंत्री प्रकाशसिंह बादल ने घोषणा की कि मोरारजी देसाई के सम्मान में पंजाब सरकार सप्ताह में एक दिन 'ड्राई डे' लागू करेगी। मोरारजी का तीखा जवाब था, 'बिलकुल आपको ऐसा करना ही

चाहिए। पंजाब में शराब की प्रति-व्यक्ति खपत सारे देश में सबसे ज्यादा है।'

सिखों की समस्याओं के असली नुमाइंदे के रूप में उभरने और दुवारा अपनी आन्दोलनकारी राजनीति में लौटने के लिए अकाली दल को लगा कि सबसे पहले यह जरूरी है कि असन्तोष के मुद्दों को सिखों की खास माँगों की शक्ल दी जाये। उनके पास आनन्दपुर साहब प्रस्ताव पहले से मौजूद था, लेकिन उसमें तमाम तरह की लफ्फाजी थी। इसलिए उन्होंने इसी प्रस्ताव को मूल आधार बनाकर श्रीमती गाँधी के सामने अपनी 45 माँगों की सूची पेश की। यह सूची 1981 में तैयार की गयी। जब भिंडराँवाले को गिरफ्तार किया गया तो जल्दबाजी में इस सूची को दुवारा संशोधित किया गया और अक्तूबर 1981 में उन्होंने श्रीमती गाँधी के सामने जो संशोधित सूची प्रस्तुत की उसमें माँगों की संख्या घटकर 15 रह गयी थी। इस सूची में सबसे ऊपर और सबसे पहली माँग थी—सन्त जरनैलसिंह भिंडराँवाले की बिना शर्त फौरन रिहाई। भिंडराँवाले के समर्थन में अकाली दल का यह पहला कदम था। उन्हें अच्छी तरह से पता था कि भिंडराँवाले किस तरह का आदमी है, फिर भी उसे अपने खेमे में दाखिल करने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।

सरकार के खिलाफ अकाली दल द्वारा आन्दोलन छेड़ने की धमकी से श्रीमती गाँधी परेशान हो गयीं। आपातकाल के दौरान अकाली दल अपनी ताकत का एह-सास उन्हें करा चुका था। यह अकेला ऐसा साहसी विपक्षी दल था, जिसने मीसा (आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम) जैसे खतरनाक कानून का प्रतिरोध किया था— उस 'मीसा' का, जिसने पुलिस के हाथ में गिरफ्तारी और बिना मुकदमे के लोगों को बन्द रखने के असीमित अधिकार सौंप रखे थे। गुरुद्वारा सुधार आन्दोलन और फिर उसके बाद के सभी अकाली आन्दोलनों की परम्परा में ही, सिखों के जत्थे स्वर्णमन्दिर परिसर से सरकार के खिलाफ नारे लगाते हुए बाहर निकलते और पुलिस को गिरफ्तारियाँ देते। स्वर्णमन्दिर परिसर से 'राज करेगा खालसा' के नारे गूँजते और सिख किसानों के नारे 'तानाशाही नहीं चलेगी' के साथ मिल जाते। श्रीमती गाँधी को अकाली दल का यह आन्दोलन आपातकाल के खिलाफ सबसे बड़ा खतरा लगा। सरकार का डर किसी भी तानाशाह की पहली जरूरत होती है और आपातकाल के दौरान श्रीमती गाँधी भी कुछ समय के लिए तानाशाह थीं। लेकिन अकाली थे कि लगातार यह जतला रहे थे कि उन्हें किसी तरह का खौफ नहीं है। श्रीमती गाँधी की चिन्ता इस हद तक बढ़ी कि उन्हें लगा, अकाली दल का यह विरोध दूसरे विपक्षी दलों की भी हिम्मत न बढ़ा दे और इस तरह कहीं आपातकाल का कमजोर ढाँचा चरमराकर बैठ न जाये। इसी चिन्ता के कारण उन्होंने पटियाला के भूतपूर्व महाराजा परिवार के प्रभावशाली मुखिया अमरिंदर सिंह तथा एक सिख ग्रन्थी के बेटे भाई अशोकसिंह को अकालियों से

समझौते के लिए भेजा। इन दोनों दूतों ने अकाली दल को कांग्रेस के साथ मिलकर पंजाब में साझा सरकार बनाने का आमंत्रण दिया, लेकिन अकालियों ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

सन्त हरचन्द सिंह लोंगोवाल, जिन्होंने आपातकाल के विरुद्ध अकाली आन्दोलन संचालित किया था, अब अकाली दल के अध्यक्ष बन चुके थे। लोंगोवाल ही इस समय अकाली संगठन के नेता थे और श्रीमती गांधी के विरुद्ध चलाये जा रहे आन्दोलन के पीछे भी उन्हीं का दिमाग था। लगता नहीं था कि लोंगोवाल किसी आन्दोलन का नेतृत्व भी कर सकते हैं। दूसरे अकाली नेताओं की तुलना में छोटे, गोल-मटोल पेट और छितरी हुई दाढ़ी, उदार और विनम्र बोलने वाले लोंगोवाल धार्मिक काम-काज के रास्ते से राजनीति में आये थे। वे संगरूर जिले के गाँव लोंगोवाल के गुरुद्वारे के संरक्षक थे और वहीं उन्हें अपनी धर्म-परायणता के लिए प्रसिद्धि मिली थी। इसी प्रसिद्धि और अकाली दल के वामपंथी धड़े के साथ संबंधों के कारण उन्हें 1969 के विधान सभा चुनाव में अकाली दल का टिकट मिला। लेकिन आपातकाल से पहले तक वे सिर्फ 'हाथ उठाऊ' नेता ही थे। आपातकाल में जमे-जमाये अकाली नेताओं की गिरफ्तारी से जो खालीपन पैदा हुआ उसमें लोंगोवाल उभर कर आये।

एकाएक विकट नेता के रूप में उभरे लोंगोवाल द्वारा आन्दोलन छेड़ने की सम्भावना को देखकर श्रीमती गांधी ने अकाली दल की मांगों के बारे में हड़बड़ी में बातचीत शुरू कर दी। ये मांगें ज्यादातर ढुलमुल शब्दों में पेश की गयीं, बिना अच्छी तरह से सोची-विचारी गयी मांगें थीं। सितम्बर में अकाली दल ने मांगों की जो सूची पेश की थी उसमें 45 मांगें थीं। महीने-भर बाद ही उन्होंने जो सूची दी उसमें मांगों की संख्या 15 थी। ये मांगें दो वर्गों में विभाजित थीं—धार्मिक और राजनीतिक।

के कारण कहीं ऐसा न हो कि बौखलाये हुए मुसाफिर हरिमन्दिर को कोसने लग जायें। उन्हें यह भी लगा कि उनके सबसे पवित्र स्थान के नाम वाली इस गाड़ी के गैर-सिख मुसाफिर सफर के दौरान शराब पीना और सिगरेट पीना जारी रखेंगे जबकि वहाँ तम्बाकू ले जाना भी पाप है। आखिरकार 'हरिमन्दिर एक्सप्रेस' की यह माँग चुपचाप छोड़ दी गयी। हाँ, घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय यात्राओं में कृपाण साथ ले चलने की पुरानी माँग फिर से उठी।

वह धार्मिक माँग, जिसने सबसे ज्यादा दिक्कतें पैदा कीं, वह थी पूरे देश के सभी ऐतिहासिक गुरुद्वारों पर लागू होने वाले 'गुरुद्वारा अधिनियम' की। अँग्रेजों के जमाने में पारित अधिनियम के तहत शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति का अधिकार सिर्फ पंजाब के गुरुद्वारों तक सीमित था। श्रीमती गाँधी शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अधिकारों को और बढ़ाना नहीं चाहती थीं, क्योंकि उसका सीधा मतलब था अकाली दल की आमदनी में और अधिक बढ़ोत्तरी, शिरोमणि गुरुद्वारा समिति का राजस्व बारह करोड़ रुपये हो चुका था और यह सारा रुपया अकाली दल की राजनीतिक गतिविधियों के लिए उपलब्ध था।

अकालियों की राजनीतिक माँगें उनकी धार्मिक माँगों से भी ज्यादा मुश्किल थीं। तीन सबसे बड़ी बाधाएँ थीं : पंजाब की नदियों का पानी, चंडीगढ़, और पंजाब के लिए अधिक स्वायत्तता की माँग। आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के तीन साल बाद श्रीमती गाँधी ने रावी और व्यास नदियों के जल का बँटवारा पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के बीच करने का फैसला किया था। जब अकाली पार्टी सत्ता में आयी तो उसने उच्चतम न्यायालय में केन्द्र सरकार के इस फैसले के खिलाफ मुकदमा दर्ज करा दिया। यह मुकदमा उच्चतम न्यायालय में अँटका रहा और केन्द्र सरकार के फैसले पर अमल नहीं हो पाया। जब श्रीमती गाँधी दुबारा सत्ता में आयीं, तो उन्होंने पंजाब के बदकिस्मत मुख्यमंत्री दरबारासिंह से वह मुकदमा वापस ले लेने के लिए कहा। इसी समय यह घोषणा कर दी गयी कि पंजाब की सतलज नदी के पानी को हरियाणा में यमुना नदी तक पहुँचाने वाली नहर की खुदाई का काम शुरू कर दिया जायेगा। 400 करोड़ से भी अधिक रुपयों की राजस्थान नहर-परियोजना तथा हरियाणा को पर्याप्त पानी दे पाने के अपने वायदे से मुकर जाने का कोई रास्ता ही श्रीमती गाँधी के सामने नहीं बचा था। राजस्थान नहर का तो निर्माण-कार्य भी शुरू हो चुका था।

चंडीगढ़ का मुद्दा भी एक समस्या बना हुआ था, क्योंकि अकाली नेता पंजाब की दो तहसीलें अबोहर और फाजिल्का छोड़ने के लिए सहमत नहीं थे। श्रीमती गाँधी के फैसले में चंडीगढ़ पाने के एवज में इन तहसीलों को छोड़ने की बात थी। श्रीमती गाँधी इस शर्त पर अड़ गयीं कि हरियाणा को खुश करने के लिए पंजाब को

अपनी दोनों सम्पन्न तहसीलें हरियाणा को सौंप देनी चाहिए, हालांकि दोनों ही तहसीलें पंजाब से सटी हैं और वहां की बहुसंख्यक जनता पंजाबीभाषी है, हिन्दी-भाषी नहीं। अगर श्रीमती गांधी अपना यह नजरिया बदल देती तो ऑपरेशन ब्लू स्टार के एक साल पहले ही अकाली दल के साथ समझौता हो गया होता। लेकिन हरियाणा का दबाव श्रीमती गांधी पर दुहरा था। चंडीगढ़ के बारे में हरियाणा सरकार का दावा श्रीमती गांधी की अपनी पार्टी कांग्रेस (इ) की सरकार का दावा था, जबकि पंजाब की मांग एक विपक्षी दल की ओर से आ रही थी। इसके अलावा हरियाणा हिन्दू बहुमत वाला राज्य था और श्रीमती गांधी अकाली दल आन्दोलन के दौरान बड़े सधे तरीके से हिन्दू वोट अपनी तरफ करने की कोशिश में लगी हुई थीं।

स्वायत्तता की मांग भी दरअसल आनन्दपुर साहब प्रस्ताव का ही दोहराव था —यानी केन्द्र सरकार के अधिकारों को सिर्फ विदेशी मामले, सुरक्षा, मुद्रा और संचार तक सीमित कर देने की मांग। एक बार फिर अकाली दल ने इस मांग को इतने दो-टूक ढंग से उठाकर बेवकूफी की। अकाली दल के नेता कभी इस मांग को सरकार द्वारा मनवा लेने के करीब भी नहीं पहुंच सके थे और इसी को लेकर भिंडरांवाले उनका मखौल उड़ा रहा था। इस मांग के कारण भी अकाली दल के उन हिन्दू विरोधियों को ताकत मिली जो लगातार यह मानते आये थे कि आनन्द-पुर साहब प्रस्ताव और कुछ नहीं एक पृथक खालिस्तान बनाने की मांग है।

अकालियों की एक मांग, जो दूसरी सूची में हटा दी गयी थी, यह थी कि फिल्मों, टेलीविजन आदि में सिखों को भोंडे या गलत तरीके से प्रस्तुत करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाये। यह मांग उस शिकायत की ओर इशारा करती थी जो सहज ही कुछ सिखों के मन में है कि वे शेष हिन्दुस्तान के लिए हंसी और मजाक के पात्र हैं। सिखों को खास तौर से मूर्ख बताने वाले सैकड़ों लतीफे सारे भारत में हैं और यहां तक कि खुद सिख भी उन्हें कहते-सुनते पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, एक लतीफा यह है कि एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरू के मन्त्रिमंडल का एक सिख मंत्री उनके साथ हवाई यात्रा में गया। हवाई जहाज की केबिन में ठंड थी, इसलिए उन मंत्री महोदय ने नेहरू से पूछा कि अगर पायलट पंखा बन्द कर दे तो उन्हें कोई एतराज तो नहीं होगा? नेहरू जी ने जैसे आजमाने के लिए पूछा, 'कौन-सा पंखा?' सिख मन्त्री ने खिड़की के बाहर जहाज के 'प्रोपेलर' की ओर इशारा किया। किस्सा यह भी है कि दोपहर के वक्त सिख की पगड़ी के भीतर तापमान इतना बढ़ जाता है कि उसका दिमाग गड़बड़ा जाता है। दिल्ली में दोपहर बारह बजे का वक्त 'सरदार जी टाइम' कहा जाता है। भिंडरांवाले के जमाने में मुझसे अकसर पूछा जाता था कि 'भला भारत को खालिस्तान के निर्माण का स्वागत क्यों करना चाहिए?' जवाब था : 'क्योंकि भारत और पाकिस्तान

दोनों को अपने बीच एक 'डफर स्टेट' चाहिए।' वैसे तो यह घटिया लतीफा है, लेकिन सिखों के बारे में प्रचलित चुटकुलों का एक नमूना है।

श्रीमती गाँधी ने अकाली दल के नेताओं से पहली बार 16 अक्तूबर 1981 को संसद-भवन में भेंट की। वह भिडराँवाले की रिहाई का दूसरा दिन था। यानी अकाली दल की पहली माँग पूरी हो चुकी थी। अकाली सरकार के भूतपूर्व वित्त-मंत्री बलवन्तसिंह भी इस बातचीत में शरीक थे। उनके अनुसार, उस दिन प्रधानमंत्री बड़ी प्रसन्नचित थीं, लेकिन भिडराँवाले के बारे में वह जरूर बड़ी कड़ाई से बात कर रही थीं। अकाली नेताओं ने प्रधानमंत्री से कहा कि भिडराँवाले को खुद आपकी ही पार्टी ने बनाया है, हमने नहीं। बातचीत का दूसरा दौर एक महीने बाद फिर चला। इन दोनों अवसरों पर मुख्य रूप से पानी के बँटवारे का मुद्दा ही छाया रहा। बातचीत वैसे तात्कालिक तौर पर तो टूट चुकी थी, लेकिन अकाली नेता अभी आशावादी थे। बलवन्त सिंह के अनुसार प्रधानमंत्री समझदारी के मूड में लगीं। तभी दिसम्बर में श्रीमती गाँधी ने पानी को लेकर एक दूसरे फैसले की घोषणा बिना अकाली दल से बातचीत किये अचानक कर दी। यह फैसला दरअसल 1976 के निर्णय का ही सुधरा हुआ रूप था। इसके अनुसार दूसरे राज्यों की तुलना में पंजाब के हिस्से में पानी की ज्यादा मात्रा आने वाली थी। लेकिन पानी का सबसे बड़ा हिस्सा अभी भी राजस्थान को दिया जाने वाला था। यही वह समय था जब प्रधानमंत्री ने पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री दरबारा-सिंह से उच्चतम न्यायालय में अकाली सरकार द्वारा दाखिल मुकदमे को वापस लेने का आदेश दिया।

श्रीमती गाँधी ने अप्रैल 1982 में अकाली दल के साथ फिर बातचीत शुरू की। बातचीत का स्थल फिर संसद-भवन बना। लेकिन बलवन्त सिंह के अनुसार 'इस बार प्रधानमंत्री का रवैया बहुत रूखा था। वे पंजाब के पानी की क्षति-पूर्ति के लिए तरह-तरह के अस्पष्ट और धुंधले विकल्प पेश करती रहीं।' यह आखिरी मौका था जब प्रधानमंत्री ने अकालियों के साथ सीधे बातचीत की। कुलदीप नैयर ने इस बातचीत की असफलता को तमाम उम्मीदों पर पानी फिरने की घटना माना है। उन्होंने लिखा, 'उस दिन के बाद अकाली दल और सरकार के बीच मतभेदों की दरार लगातार चौड़ी होती गयी। और एक ग्रीक त्रासदी की तरह दोनों ही पक्ष लगातार उस स्थिति में घिसटते गये जिसका भविष्य किसी भयावह दुर्घटना के गर्भ में था।'[2]

श्रीमती गाँधी के रुख में आये इस बदलाव की सबसे स्पष्ट व्याख्या यही हो सकती है कि उनके लिए राजनीति पहले और राष्ट्रहित बाद में आता था। अगले ही महीने पंजाब की सरहद से लगे दोनों राज्यों—हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में विधानसभाओं के लिए चुनाव होने थे। दोनों ही राज्यों में पंजाबी-भाषी हिन्दुओं

की खासी बडी संख्या है जो कांग्रेस द्वारा सिखों की पार्टी को दी जाने वाली किसी भी रियायत से नाखुश हो सकती थी। इस जल-विवाद मे हरियाणा भी उलझा हुआ था। हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल ने श्रीमती गाँधी को आगाह किया कि जल के बँटवारे में हरियाणा का हिस्सा घटा दिये जाने के कारण उनके सामने पहले ही बहुत-सी समस्याएँ पैदा हो चुकी हैं।

दबाव बनाये रखने के लिए सन्त लोंगोवाल ने सतलज के पानी को यमुना तक ले जाने वाली नहर की खुदाई का विरोध करने की घोषणा की। उन्होंने अपने समर्थकों को यह तथ्य बतलाना जरूरी नही समझा कि जब अकाली दल सत्ता में था, तो स्वयं उसने भी इस नहर-परियोजना में निर्माण-कार्य शुरू करने की योजना बनायी थी। लेकिन मोर्चा राजनीति के माहिर लोंगोवाल इस बार हालात का सही अन्दाजा लगाने मे गलती कर बैठे। यह 'नहर रोको आन्दोलन' इसलिए असफल रहा कि एक तो पंजाब के पूर्वी सरहद पर अकाली मजबूत स्थिति में नही थे, और दूसरे, इस मुद्दे में अन्य अकाली आन्दोलनों की तरह कोई धार्मिक बात नही थी।

इस बीच भिंडरांवाले का हिंसा अभियान जारी था और अकाली दल ने उसकी बराबरी करने के लिए खुद उग्रवाद का सहारा लेने की जरूरत महसूस की। अप्रैल 1982 तक, भिंडरांवाले की गिरफ्तारी के बाद शुरू हुई हिंसा और हत्या की घटनाओं के ठीक 6 महीने बाद स्थिति इतनी बिगड चुकी थी कि संसद ने एक विशेष प्रस्ताव पारित किया जिसमें पंजाब की परिस्थिति के बारे मे 'गहरा दुख और चिन्ता' प्रकट की गयी थी। प्रस्ताव मे कहा गया था, 'सदन पुन दोहराता है कि कानून अपना धर्म निबाहते हुए अपराधियो को शीघ्र सजा दिलायेगा।' पंजाब की त्रासदी यह रही 'कि कानून ने अपना धर्म नही निभाया' और 'अपराधियो को शीघ्र सजा' नही मिली।

संसद में जिस महीने यह प्रस्ताव पारित हुआ, उसी महीने दिल्ली की सडको पर भिंडरांवाले को अपने समर्थकों के साथ खुलेआम स्वचालित हथियार चमकाते हुए घूमने की इजाजत दी गयी थी। राज्य सभा मे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सिख सदस्य हरकिशन सिंह सुरजीत ने आरोप लगाया कि दरअसल कांग्रेस ने ही भिंडरांवाले की दिल्ली-यात्रा आयोजित की है। उन्होंने सदन मे कहा, 'मैं संसद को यह बतलाना चाहता हूँ कि भिंडरांवाले को अकाली दल और कांग्रेस पार्टी दोनो से संरक्षण प्राप्त है। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि वह पिछले महीने दिल्ली मे 10 दिन तक रहा। उसे दिल्ली आने का निमंत्रण किसने दिया? उसके समारोहों और कार्यक्रमों का संयोजन किसने किया? मैं आपको स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि अगर राजनीतिक दलों ने अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए अपने लोगों को वातावरण मे जहर फैलाने की ऐसी छूट दी, तो राज्य मे साम्प्रदायिक सद्भाव

आप नहीं बनाये रख सकते।' भिंडराँवाले की यात्रा में कांग्रेस पार्टी की कोई भूमिका रही हो या नहीं, इसमें कोई शक नहीं कि कांग्रेस सरकार के गृहमंत्री जैल सिंह अगर चाहते तो भिंडराँवाले को गिरफ्तार कर सकते थे। वैसे गृहमंत्रालय यह दावा तो करता है कि जब भिंडराँवाले बम्बई गया उस समय उसकी गिरफ्तारी का वारण्ट जारी किया गया था, लेकिन पुलिस के वहाँ पहुँचने के पहले ही वह भाग गया। पंजाब से कांग्रेस की संसद सदस्य श्रीमती अमरजीत कौर का दावा है कि भिंडराँवाले को पहले से ही इसकी इत्तला दे दी गयी थी। श्रीमती कौर का कहना था, 'भिंडराँवाले ने सरकारी कार्यालयों, पुलिस और खुफिया विभाग में अपने आदमियों को बिठा रखा था।' अगर यह सच था तो गृहमंत्री को फौरन कार्रवाई करनी चाहिए थी, जो कि उन्होंने नहीं की।

सरकार को जिस बात की विशेष चिन्ता होनी चाहिए थी, वह थी हिन्दुओं और सिखों के बीच नफरत की आग भड़काने के लिए भिंडराँवाले द्वारा चलाया गया अभियान। हिंदुओं को उत्तेजित करने के लिए मन्दिरों में गायों के सिर और दूसरे अंग काटकर फेंके गये। भिंडराँवाले की रणनीति का खतरनाक पहलू यह था कि ऐसा सांप्रदायिक तनाव पैदा किया जाये कि डर के मारे हिन्दू पंजाब छोड़ कर भाग जायें। उसे उम्मीद थी कि ऐसा करने से देश के दूसरे हिस्सों में हिन्दू बदले की कार्रवाई करेंगे जिससे सिखों को महसूस होगा कि वे सिर्फ पंजाब में ही सुरक्षित रह सकते हैं। सिखों का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा पंजाब से बाहर था। भिंडराँवाले सिख समुदाय के शेष भारत के साथ सारे संपर्क कमजोर करने और पंजाब में सिखों का अनुपात बढ़ाने के लिए ज्यादा-से-ज्यादा लोगों की मदद चाहता था। हिन्दू नेताओं को इस बात का बड़ा श्रेय है कि भिंडराँवाले के जीवनकाल में पंजाब के बाहर के सिखों पर कोई बड़ा खतरा नहीं आया।

हालाँकि सरकार ने सीधे-सीधे भिंडराँवाले के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की लेकिन उसके दाहिने हाथ और उसके गुरु करतारसिंह के बेटे अमरीकसिंह को 19 जुलाई 1982 को गिरफ्तार कर लिया गया। 'इंडियन एक्सप्रेस' के अमृतसर स्थित पत्रकार संजीव गौड़ के अनुसार अमरीकसिंह की गिरफ्तारी का आदेश पंजाब के राज्यपाल ने दिया था, क्योंकि आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन के कुछ गिरफ्तार सदस्यों की रिहाई की माँग करके अमरीकसिंह ने उन्हें अपमानित किया था। अमरीकसिंह फेडरेशन का अध्यक्ष था। हालाँकि कहने के लिए यह अकाली दल का ही संगठन था, लेकिन हकीकत में वह पूरी तरह से भिंडराँवाले के हाथ में जा चुका था। अमरीक सिंह पर पहले से ही अमृतसर के निकट एक निरंकारी नेता की हत्या करने की कोशिश के अलावा भी कई अभियोग थे, लेकिन उस वक्त तक हालत यह हो चुकी थी कि भिंडराँवाले के ऐसे बड़े समर्थक को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस को सिर्फ अपराध का आरोप ही नहीं और भी बहुत-

सी चीजों की जरूरत थी। अमरीकसिंह की गिरफ्तारी से भिंडरांवाले बौखला उठा, लेकिन सरकार को कोई चुनौती देने के पहले उसने स्वर्णमन्दिर परिसर की सराय मे शरण लेना उचित समझा। गुरु नानक निवास के कमरा नं. 47 मे वह रहने लगा। गुरु नानक निवास और दूसरे कई दफ्तरो और सरायो को एक सार्वजनिक सडक मुख्य मन्दिर से अलग करती है। पजाब के मुख्यमत्री का मानना रहा कि गुरु नानक निवास स्वर्णमन्दिर परिसर का हिस्सा नही है, इस-लिए पुलिस को वहाँ प्रवेश करने मे रोका नही जा सकता। हालांकि पुलिस ने वहाँ प्रवेश इसलिए नही किया कि केन्द्र सरकार के बहुत से लोग ऐसा नही चाहते थे। भिंडरांवाले ने फिर मृत्यु तक स्वर्णमन्दिर के पडोस का यह स्थान कभी नही छोड़ा।

गुरु नानक निवास मे आ जाने के बाद भिंडरांवाले ने अमरीकसिंह की रिहाई की माँग के लिए मोर्चे का ऐलान किया। लेकिन भिंडरांवाले की बदकिस्मती कि यह मोर्चा बहुत सफल नही रहा। मोर्चे की घोषणा की ऐसी प्रतिक्रिया से यह बात साबित हो गयी की भिंडरांवाले का पजाब के गाँवो मे उतना ज्यादा असर नही था, जैसा कि अखबारो ने अब तक दिखाने की कोशिश की थी। अगर भिंडरां-वाले के इस मोर्चे को बुरी तरह से असफल कर दिया जाता तो उसकी अब तक की प्रतिष्ठा धूल मे मिल सकती थी। लेकिन सनक से भरी अकाली पार्टी ने हमेशा की तरह इस बार भी उलटा ही सोचा। उन्होंने पजाब के पूर्वी क्षेत्र मे असफल हो गये अपने मोर्चे को दुबारा छेड़ने की कोशिश की। उन्हें विश्वास था कि पूर्वी इलाको मे मोर्चा तभी सफल होगा जब यह अमृतसर मे सफल हो जायेगा, क्योकि वहाँ अकालियो की स्थिति मजबूत थी और वहाँ पर वे धार्मिक भावनाएँ भी मौजूद थी जिनकी जरूरत अकाली दल को थी। मोर्चे की सफलता को और पुख्ता करने के लिए लोंगोवाल ने सोचा कि इसमे भिंडरांवाले के मकसद को भी शामिल कर लिया जाये। इस तरह 4 अगस्त, 1982 को स्वर्णमन्दिर मे आनन्दपुर साहब प्रस्ताव को लागू करवाने के लिए सन्त लोंगोवाल ने धरमयुद्ध की घोषणा कर दी। उधर भिंडरांवाले ने घोषणा की कि अमरीकसिंह की रिहाई के लिए लगाया गया उसका मोर्चा अब अकाली मोर्चे के साथ मिल गया है।

इस नये मोर्चे को अपार सफलता मिली। एक बार फिर सैकड़ो सिख हर रोज स्वर्णमन्दिर मे जमा होकर अकाली माँगो के लिए सघर्ष करने के धार्मिक दायित्व के बारे मे प्रवचन सुनने लगे। लोंगोवाल लगभग रोज ही प्रवचन देते थे, जबकि भिंडरांवाले कभी-कभार ही बोलता था। पगडियो मे केसरिया पट्टी बाँधे सिखो के जत्थे इसके बाद स्वर्णमन्दिर से निकलकर 'राज करेगा खालसा' जैसे नारे लगाते हुए पुलिस चौकियों तक पहुँचते थे। इन जुलूसो मे अपने कन्धो से कृपाण लटकाये सिख महिलाएँ भी शामिल होती थी। इस सारे अभियान का संचालन कर रहे थे

सन्त लोंगोवाल और उन्हें 'मोर्चा डिक्टेटर' का खिताव मिला हुआ था। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की थी कि पंजाव के किसी-न-किसी इलाके से सिखों का एक जत्था हर रोज स्वर्णमन्दिर आये। दो महीने के भीतर-भीतर पंजाव की सारी जेलें ठसा-ठस भर गयीं और स्कूलों तथा दूसरी सरकारी इमारतों को जेल वनाना पड़ा। एक वार तो ऐसा हुआ कि लगभग एक हजार अकाली कैदियों ने उस पुराने किले में रहने से इनकार कर दिया, जिसे सरकार ने कामचलाऊ जेल में वदल रखा था। उन्होंने कहा कि इस किले में साँप बहुत हैं। जव दूसरे अकालियों को पता चला कि अव जेलों में जगह नहीं है तो उन्होंने वसों को ही अपनी जेल वना डाला। पुलिस को उनकी पहरेदारी भी नहीं करनी पड़ती थी, क्योंकि अकालियों का वहाँ से भाग-कर सरकार को इस मुसीवत से छुटकारा दिलाने का कोई इरादा नहीं था।

11 सितम्वर को अमृतसर के पास एक रेलवे क्रासिंग पर अकालियों को जेल ले जाने वाली वस रेलगाड़ी से टकरा गयी। इस दुर्घटना में जत्थे के 34 लोग मारे गये। भिंडराँवाले और लोंगोवाल दोनों ने आरोप लगाया कि इन 34 सिखों की हत्या पुलिस ने जानवूझ कर की है और उन मृत सिखों को शहीद घोषित कर दिया गया। सिख हर ऐतिहासिक घटना की याद में गुरुद्वारा वना देते हैं, इसलिए अव वे दुर्घटना की जगह पर गुरुद्वारा वना रहे हैं। इसका नाम उन्होंने गुरुद्वारा 'टक्कर साहव' रखा है। इस दुर्घटना के वाद दिल्ली में सिखों का एक उग्र प्रदर्शन हुआ।

10 अक्तूवर को इन 'शहीदों' की राख लेकर दिल्ली की सड़कों पर एक विशाल जुलूस निकला। उस दिन तो यह जुलूस शान्तिपूर्वक गुजर गया, लेकिन दूसरे दिन सिखों ने अपने सांसदों के सामने इस दुर्घटना का विरोध प्रकट करने के लिए संसद पर हल्ला वोला। उन्होंने वसों में आग लगायी, सड़क की वत्तियाँ फोड़ डालीं और ट्रैफिक के तमाम संकेतों को उखाड़ फेंका। कई घंटों तक पुलिस और अन्य अर्धसैनिक वल उन्हें तितर-वितर करने के लिए आँसू-गैस के गोले छोड़ते हुए जूझते रहे।

श्रीमती गाँधी परेशान हो गयीं। ऐसा लगा कि जैसे अकाली अपने मोर्चे को दिल्ली तक ले आये हों। अगर कोई चीज भारत सरकार को सवसे ज्यादा परेशान करती है तो वह है दिल्ली में होने वाली हिंसा और गड़वड़ी। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की वात नहीं कि संसद के सामने हुए दंगे के वाद ही श्रीमती गाँधी ने सभी अकाली प्रदर्शनकारियों को रिहा करने का आदेश दिया और अकालियों के साथ वातचीत फिर से शुरू करने के लिए अपना एक विशेष दूत अमृतसर भेजा।

श्रीमती गाँधी के विशेष दूत थे सरदार स्वर्णसिंह। उन्होंने श्रीमती गाँधी के मंत्रिमंडल में वर्षों काम किया था। वे एक ऐसा फार्मूला लेकर आये जिससे अकाली नेता और श्रीमती गाँधी के मंत्रिमंडल के लोग भी सन्तुष्ट थे। स्वर्ण-सिंह ने सोचा कि इस फार्मूले से स्वयं श्रीमती गाँधी भी सन्तुष्ट होंगी, लेकिन

श्रीमती गांधी ने आखिरी मौके पर इसे ठुकरा दिया। स्वर्णसिंह इससे बहुत अधिक खिन्न हुए और फिर भविष्य में उन्होंने समझौता-बातचीत से अपने आपको अलग ही रखा। अगर यह बातचीत फिर शुरू हुई तो उसकी वजह यह थी कि श्रीमती गांधी पर दबाव बनाये रखने के लिए अकाली नेताओं ने एक और कारगर तरीका अपना लिया था।

7

एशियाई खेल और उनके नतीजे

6 नवम्बर को जब स्वर्णसिंह के साथ अकालियों की बातचीत टूटी तो 'मोर्चा डिक्टेटर' लोंगोवाल ने घोषणा की कि एशियाई खेलों के दौरान अकाली दल दिल्ली में प्रदर्शन करेगा। एशियाई खेल शुरू होने में बमुश्किल 3 हफ्ते बचे थे। श्रीमती गाँधी के मंत्रिमंडल के सहयोगी और वरिष्ठ सरकारी अधिकारी घबराये, क्योंकि इस बार जो चीज दाँव पर लगी थी, वह थी राजीव गाँधी की इज्जत। राजीव गाँधी अपने छोटे भाई संजय गाँधी की मृत्यु के बाद राजनीति में आये थे और यह बात बिलकुल साफ थी कि श्रीमती गाँधी अपने खानदानी शासन का उत्तराधिकारी उन्हें ही बनाना चाहती हैं। शुरू शुरू में लगा कि राजीव गाँधी और राजनीति में कोई जोड़ नहीं बैठ रहा है। राजनीतिज्ञ और पत्रकार, दोनों कह रहे थे कि राजीव गाँधी इतने सज्जन हैं कि वे प्रभावशाली राजनीतिक नेता हो ही नहीं सकते। राजीव गाँधी को प्रशंसा उन कामों के लिए मिल रही थी, जो काम वे नहीं करते थे। अन्तरराष्ट्रीय प्रेस में उन्हें 'मिस्टर क्लीन' के रूप में ख्याति मिल चुकी थी। दिक्कत यह थी कि जो काम वे करते थे, उनके लिए उनकी कोई तारीफ नहीं होती थी। भारतीय राजनीति में अपना नाम दर्ज करने के लिए राजीव गाँधी को कोई-न-कोई कामयाबी चाहिए थी। इसलिए श्रीमती गाँधी ने तय किया कि एशियाई खेलों की व्यवस्था की पूरी जिम्मेदारी राजीव गाँधी निभायेंगे।

उस समय लगा कि राजीव गाँधी में राजनीति की बजाय प्रशासन की क्षमता ज्यादा है और एशियाई खेल उनके इसी गुण की पहली बड़ी परीक्षा थे। कोई कोर कसर नहीं छोड़ी गयी। ओलंपिक गाँव, सात बड़े स्टेडियम और पाँच सितारा होटलों की कतार खड़ी करने के लिए आसपास के राज्यों से मजदूर लाये गये। नयी दिल्ली का कायापलट होने लगा। 7 फ्लाई ओवर बने। अपनी हरियाली के लिए प्रसिद्ध इस शहर के नीम, जामुन और बरगद के पेड़ बड़ी क्रूरता से काट डाले गये, ताकि सड़कें चौड़ी हो जायें और फिर रिंग रेल की शुरुआत भी हुई।

एशियाई खेलों में भाग लेने वाले खिलाड़ियों और दर्शकों की सुख-सुविधा का तो पूरा खयाल रखा गया, लेकिन इस काम में लगे मजदूरों की सुविधा को पूरी तरह से नजरंदाज किया गया। वे झुग्गियों में रखे गये, जहाँ पानी तक की पर्याप्त

व्यवस्था नहीं थी। ठेकेदार उनकी थोड़ी-सी मजदूरी में भी कटौती करते थे और ठंड से बचाव के लिए उन्हें जरूरी कपड़े तक नहीं दिये जाते थे। आसपास के राज्यों के ये मजदूर जिनको भारत के लम्बे-चौड़े लेकिन कभी अमल में न आने वाले श्रम कानूनों की थोड़ी बहुत जानकारी थी, जब अपने हकों की माँग करने लगे तो ठेकेदारों ने दूसरा रास्ता अपनाया। वे उड़ीसा जैसे दूर-दराज राज्य के पिछड़े गाँवों में गये और वहाँ से उन्होंने ऐसे अनुभवहीन मजदूरों को लाना शुरू किया जिनके बारे में उन्हें उम्मीद थी कि उन्हें अपने अधिकारों के बारे में पता नहीं होगा। ठेकेदारों ने हरचंद कोशिश की कि राजधानी के अति-सक्रिय स्वयंसेवी सामाजिक कार्यकर्ता मजदूरों के इन शिविरों के आसपास न फटकने पायें, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को आदेश दिया कि एशियाई खेलों के काम में लगे मजदूरों के अधिकारों की रक्षा के लिए वह तीन संरक्षक नियुक्त करे। अखबारों ने भी मजदूरों की हालत को खूब उभारा। माहौल तो काफी गरमागरम हो गया, लेकिन कुछ हुआ नहीं। एशियाई खेलों के शुरू होने के ठीक पहले एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता इन्द्रमोहन ने लिखा : 'एशियाई खेलों के निर्माण-कार्य में लगे मजदूरों की हालत का अंदाजा बिना देखे नहीं हो सकता। लुभावनी और दर्शनीय कही जाने वाली बड़ी-बड़ी इमारतों के अगल-बगल ये मजदूर टप्परों में रहते हैं और उनके लिए पाखाने तक की कोई व्यवस्था नहीं है, औरतों के लिए कोई अलग जगह नहीं है, अपने गाँवों के रिवाज के विपरीत उन्हें मर्दों के बगल में सोना पड़ता है। बच्चे सारी झुग्गी में यहाँ-वहाँ पड़े रहते हैं। वहाँ से उठने वाली दुर्गंध दूर से ही महसूस हो जाती है।' इन्द्रमोहन का खयाल है कि मजदूरों की हालत के बारे में हुई इस चीख-पुकार का अपना एक महत्व था : 'इन कामगारों को संगठित करने का काम कुछ स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं और संगठनों ने अपने हाथ में लिया।···बदलाव की एक प्रक्रिया शुरू हुई। इससे सन्तोषजनक परिणाम निकलने में तो अभी कुछ साल लगेंगे, लेकिन आगे चलकर वे एक चुनौती-भरी ताकत जरूर बन जायेंगे।'

राजीव गांधी और उनकी टीम को दूसरी परेशानी वास्तुकारों से भी थी। तालीवाल और बैडमिंटन स्टेडियम के ऊपर छत इसलिए नहीं डाली जा सकी कि ठेकेदारों ने कह दिया कि डिजाइन गलत है। आखिरकार एक ब्रिटिश इंजीनियर बुलाया गया और स्टेडियम के ऊपर छत पड़ सकी। स्वीमिंग पूल की किस्मत इतनी अच्छी नहीं थी। इसके बनने के बीच में ही इसे 'इनडोर' से बदलकर 'आउटडोर' किया गया क्योंकि आर्किटेक्ट और ठेकेदार इस बात पर सहमत नहीं हो सके कि अगर उस ढाँचे के ऊपर छत डाली जाये तो वह इसे बर्दाश्त भी कर पायेगा या नहीं। एक फ्लाईओवर का एक हिस्सा तो बनने के फौरन बाद ही ढह गया। लेखा पालों के साथ भी झगड़ा हुआ। सरकार लगातार यह कह रही थी कि वह एशियाई खेलों के लिए सिर्फ सत्तर करोड़ रुपये खर्च कर रही है, लेकिन दूसरे अटकलबाज

इस अनुमानित राशि को दस गुना आँक रहे थे। 2 लाख 30 हजार रुपये तो इस भव्य समारोह के उद्घाटन में हिस्सा लेने के लिए आ रहे 34 हाथियों, उनकी खुराक और उनके कारिंदों को ले जाने वाली विशेष ट्रेन में ही खर्च होने का अनुमान था।

विपक्षी नेताओं ने खिलाड़ियों के चयन की भी आलोचना की। उनका आरोप था कि इसमें खिलाड़ियों की योग्यता को नहीं, राजनीति को आधार बनाया गया है। निश्चय ही यह राजनीति सिख व्यापारी और कांग्रेस संसद-सदस्य चरणजीत सिंह की थी जिन्होंने एशियाई खेलों में आने वाले अतिथियों के लिए पाँच सितारा होटल बनाने की खातिर नयी दिल्ली के बीचोंबीच एक बड़ी महत्वपूर्ण जगह छाँट रखी थी।

हालाँकि यह होटल तो समय पर नहीं बना, लेकिन दूसरे जरूरी और महत्वपूर्ण साधन तैयार हो गये। तमाम तरह की अड़चनों के बावजूद दिल्ली नवें एशियाई खेलों के लिए तैयार हो गयी। राजीव गाँधी ने भारतीय नौकरशाही को काम करने पर बाध्य किया और उन्होंने वह चीज हासिल कर ली जिसे किसी भी दूसरे देश के मापदंड से 'करिश्मा' कहा जा सकता है। न कुछ से शुरुआत करके वे दो साल के भीतर-भीतर अब तक के सबसे बड़े एशियाई खेल-समारोह के लिए सारी व्यवस्था जुटाने में कामयाब रहे। जब लोंगोवाल ने खेलों के दौरान प्रदर्शन की धमकी दी तो सरकार के उच्चस्तरीय खेमे में खलबली मच गयी। हिंदुओं में भी भारी असंतोष फैला कि भारत में पहली बार हो रही शानदार खेल-घटना को अस्तव्यस्त करने की धमकियाँ दी जा रही हैं। पुलिस को आदेश दिया गया कि वह दिल्ली के चारों ओर घेरा डाल दे और अकाली प्रदर्शनकारियों को एशियाई खेलों में पहुँचने से रोके। दिल्ली आने वाली अधिकांश सड़कें हरियाणा से गुजरती हैं। नतीजा यह कि एक बार फिर भजनलाल को श्रीमती गाँधी के प्रति अपनी वफादारी जताने का अच्छा मौका मिल गया। हरियाणा पुलिस की निगाह से कोई भी बचकर नहीं निकल सका। यहाँ तक कि भारतीय वायुसेना के भूतपूर्व एयर चीफ मार्शल अर्जुनसिंह को भी यह प्रमाणित करना पड़ा कि वे दिल्ली प्रदर्शन करने नहीं जा रहे हैं। बंगलादेश युद्ध में पाकिस्तानी सेना से आत्म-समर्पण करवाने वाले लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा को भी इसी तरह अपमानित होना पड़ा। उच्च न्यायालय के एक जज की इतनी बार तलाशी ली गयी कि उसे चंडीगढ़ से दिल्ली पहुँचने में चार के बजाय आठ घंटे लगे। एक सिख व्यापारी ने मुझे बताया कि उससे पगड़ी उतरवायी गयी, ताकि पुलिस पगड़ी के भीतर तलाशी ले सके। और तो और, खुद श्रीमती गाँधी के समर्थक भी नहीं छोड़े गये। कुलदीप नैयर के अनुसार, कांग्रेस पार्टी की संसद-सदस्य श्रीमती अमरजीत कौर ने पार्लियामेंट के सेंट्रल हाल में पत्रकारों और अपने सहयोगियों को रोते हुए बताया कि भजनलाल की पुलिस ने उनके पति और खुद उनके साथ

कैसा सलूक किया है।

दिल्ली की घेरेबन्दी और 1500 से अधिक संदिग्ध प्रदर्शनकारियों की गिरफ्तारी ने भिंडरांवाले की भट्टी में ईंधन का काम किया। उस दिन के बाद से वह अपने दर्शन के लिए आने वाले लोगों से सवाल किया करता था, 'तुम लोग जानना चाहते हो कि इसका क्या सबूत है कि सिख हिन्दुओं के गुलाम हैं ? पहला सबूत तो यही है कि उन्हें दिल्ली के एशियाई खेलों में जाने से रोक दिया गया।'

श्रीमती गांधी हमेशा 'डंडा और गाजर' की नीति पर यकीन रखती थीं, इसलिए उन्होंने अकालियों के साथ फिर बातचीत शुरू करने की कोशिश करके भजनलाल की पुलिस के डंडे को थोड़ा ढीला किया। उन्होंने इस बार पटियाला के राजपरिवार के राजा अमरेन्द्रसिंह को अकालियों को मनाने के लिए भेजा। श्रीमती गांधी की पहली सरकार के बनने के साथ ही भारतीय महाराजाओं के सारे विशेषाधिकार खत्म कर डाले गये थे। लेकिन बड़े घरानों के राजा — और पटियाला पंजाब का सबसे बड़ा राजघराना है—की साख बनी रही। राजा अमरेन्द्रसिंह की उम्र 42 साल थी। उन्होंने सिख रेजीमेंट में नौकरी की थी और कैप्टन के ओहदे तक पहुँचे थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद वे सेना से रिटायर हो गये और अपने परिवार की जमीन और व्यापार की देखभाल करने लगे। राजा अमरेन्द्र सिंह का राजनीति में प्रवेश श्रीमती गांधी की पार्टी के संसद-सदस्य के रूप में हुआ था। वे राजीव गांधी के पुराने स्कूली दोस्त थे। यह राजीव गांधी का ही सुझाव था कि अमरेन्द्रसिंह को समझौते के प्रयासों में शामिल किया जाना चाहिए।

अमरेन्द्र सिंह के अनुसार, अकाली नेताओं और श्रीमती गांधी के सहयोगियों के बीच 18 नवम्बर, 1982 को दिल्ली में सहमति हो गयी थी। अकाली नेता वापस हवाई जहाज से चंडीगढ़ लौट जाना चाहते थे, लेकिन उन्हें कहा गया कि थोड़ी देर और रुककर यह देख लें कि श्रीमती गांधी ने इस समझौते को स्वीकार कर लिया है या नहीं। अमरेन्द्र सिंह के अनुसार, दुर्भाग्य से समझौते की यह खबर किसी तरह भजनलाल तक पहुँच गयी। भजनलाल ने प्रधानमंत्री को समझाया कि पानी के बँटवारे और चंडीगढ़-विवाद का कोई भी फैसला अगर हरियाणा की सहमति के बिना लिया जायेगा तो इसके नतीजे खतरनाक होंगे। जल-विवाद से प्रभावित दूसरे राज्य राजस्थान के मुख्यमंत्री भी उस रात दिल्ली में थे। उन्हें भी भजनलाल का साथ देने के लिए तैयार कर लिया गया और श्रीमती गांधी ने उनकी बात मान ली। उस महीने दूसरी बार अकाली दल के नेताओं को आखिरी क्षण में नीचा देखना पड़ा।

भिंडरांवाले खूब खुश हुआ, क्योंकि वह किसी भी कीमत पर समस्या का समाधान नहीं करना चाहता था। वह अकसर कहा करता था कि 'इस ब्राह्मण औरत' या 'पंडित की बेटी' से बातचीत करने का कोई फायदा नहीं। जब उसकी बात एक

महीने में दो वार सच साबित हुई तो उसका प्रभाव बढ़ने लगा और अकाली नेताओं की साख गिरने लगी। एशियाई खेलों के दौरान हुई बातचीत की असफलता से भिंडराँवाले और अकाली नेताओं के बीच दरार पड़नी शुरू हुई। यह ऐसी दरार थी, जिसने लोंगोवाल और उनके सहयोगियों को पूरी तरह किनारे कर दिया और जिसने श्रीमती गाँधी के सामने दो ही रास्ते छोड़े—या तो स्वर्णमन्दिर में जाकर भिंडराँवाले को पकड़ लिया जाये या फिर उसके साथ समझौता किया जाये। फिर भी सरकार की तात्कालिक समस्या तो सुलझ गयी थी। भले ही 'गाजर' किसी काम न आयी हो, लेकिन 'डंडे' ने अपना कमाल दिखाया था और एशियाई खेल शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गये। राजीव गाँधी अपने पहले इम्तहान में सफल रहे।

वहुत जल्दी ही बातचीत की इस असफलता के गम्भीर परिणाम सामने आये। एशियाई खेलों के एक महीने वाद सन्त लोंगोवाल ने भूतपूर्व सिख सैनिकों की एक वैठक स्वर्णमन्दिर में वुलायी। भारतीय सेना में सिखों की संख्या कम-से-कम 10 प्रतिशत है, जिसमें बड़ी संख्या में सैनिक अधिकारी भी हैं। नौसेना, वायुसेना और अर्धसैनिक पुलिस वलों में भी सिखों की अच्छी-खासी संख्या है। लोंगोवाल द्वारा आंदोलन के आह्वान पर कर्नल से भी ऊँचे ओहदों से रिटायर हुए कोई 170 लोग जुट आये। उनमें से कई स्वर्णमन्दिर में सन्त जरनैलसिंह भिंडराँवाले के भाषण के असर में आ गये थे। ढाका के हीरो लेफ्टिनेंट जनरल अरोड़ा ने सेना के अनुशासित सैनिकों की भीड़ को भरमानेवाले इस धर्मोपदेशक के बहकावे मे आ जाने की प्रक्रिया का वर्णन किया है :

> सेना से नौकरी छोड़ने के वाद जव वे (रिटायर्ड सिख सैनिक) पंजाव लौटे तो उन्हें पता चला कि पुराने मूल्य कितने वदल गये हैं। सरकारी अफसरों और प्रशासन के द्वारा उनको कोई सम्मान न मिलने से उनमें असन्तोष पनपा। 1982 में एशियाड के दौरान पंजाव से दिल्ली की यात्रा करने वाले सभी सिखों को रोके जाने और खानातलाशी लिये जाने की घटना ने आग में घी का काम किया। उन्होंने अपने को अपमानित महसूस किया और उनमें से कुछ लोग सन्त भिंडराँवाले के प्रभाव में आ गये।

एक दूसरे भूतपूर्व सिख जनरल जसवन्त सिंह भुल्लर ने भी भूतपूर्व सिख सैनिकों के वीच लोंगोवाल की अपील की सफलता का एक महत्वपूर्ण कारण एशियाई खेलों को माना है। उसने लिखा है : 'एशियाई खेलों के दौरान सिखों के साथ हरियाणा सरकार द्वारा किये गये व्यवहार ने सिख मानस को वहुत गहरा आघात पहुँचाया है।' भुल्लर भी भिंडराँवाले के साथ हो गया था और आपरेशन ब्लू स्टार के ठीक पहले ही वह स्वर्णमन्दिर से वाहर निकला। वाद में उसने अमेरिका में एक संगठन वना लिया जो सिखों की आजादी का प्रचार करता है।

जिन वरिष्ठ सेवा-निवृत्त सैनिक अधिकारियों ने लोंगोवाल की बैठक में भाग लिया था, उनमें बंगलादेश युद्ध का एक हीरो मेजर जनरल शाहबेग सिंह भी था। उसे भारतीय सेना की नौकरी से रिटायर होने के ठीक एक दिन पहले भ्रष्टाचार के आरोप में मुअत्तल कर दिया गया था और तब से उसके मन में कड़वाहट पल रही थी। आगे चलकर वह भिंडरांवाले का सैनिक सलाहकार बना और स्वर्णमन्दिर की सुरक्षा की सारी योजना उसी ने बनायी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के विद्वान और सज्जन जनसंपर्क अधिकारी नरिन्दरजीतसिंह नन्दा भी उस सम्मेलन में थे। उन्होंने सतीश जेकब को बताया कि इतनी बड़ी संख्या में सैनिकों और सैनिक अधिकारियों के शामिल होने से लोंगोवाल आश्चर्यचकित रह गये। पत्रकारों के अनुसार इनकी संख्या पाँच हजार थी, लेकिन नन्दा का कहना है कि वे तीस हजार के करीब थे। भिंडरांवाले और शाहबेग सिंह ने सरकार के खिलाफ एक हथियारबन्द बगावत की योजना पेश की। लेकिन दूसरे भूतपूर्व अधिकारियों का कहना था कि पंजाब के खुले मैदानों में ऐसी सशस्त्र बगावत कामयाब नहीं हो सकती। नन्दा ने सुझाव दिया कि सरकार के खिलाफ सिखों को 'कलम की ताकत' से लड़ना चाहिए और एक अखबार निकालना चाहिए। बहुत-से वरिष्ठ अधिकारियों ने नन्दा के सुझाव पर अपनी सहमति दिखायी, लेकिन भिंडरांवाले ने उसे बहुत बुरी तरह से लताड़ा : 'तुम पढ़े-लिखे मूर्ख ! क्या तुम यह सोचते हो कि यह सरकार तुम्हें माँगने से कुछ देगी, जब तक कि तुम उसके हाथ से खुद ही छीन नहीं लेते ?'

इस सम्मेलन की खबर जब खुफिया सूचनाओं द्वारा सरकार तक पहुँची तो उसके कान खड़े हो गये, क्योंकि इन भूतपूर्व सैनिकों में से कइयों के बेटे अभी भी सशस्त्र सेनाओं में नौकरी कर रहे थे। परिणामस्वरूप 24 जनवरी, 1983 को अकाली दल से हड़बड़ी में फिर बातचीत शुरू की गयी। इसी दौर में राजीव गाँधी उस 'विचार मंडली' के सदस्य बने, जिसे दरअसल पंजाब को चलाना था। विडम्बना यह थी कि इस 'विचार मंडली' में एक भी सिख नहीं था। 1983 की शुरुआत में बातचीत में तीनों प्रमुख हिस्सेदार सरकारी अधिकारी थे। इनमें से दो पंजाब के बिलकुल उलटे छोर, यानी दक्षिण भारत से आये थे। एक थे श्रीमती गाँधी के मुख्य सचिव पी० सी० एलेक्जेंडर जो केरल के ईसाई थे। कैबिनेट सचिव कृष्णस्वामी राव साहेब आन्ध्र प्रदेश के हिन्दू थे। तीसरे अधिकारी थे गृह मंत्रालय के सचिव टी० एन० चतुर्वेदी, जो कि उत्तरप्रदेश के ब्राह्मण थे। सिख ब्राह्मणों पर सन्देह करते आये हैं। उन्हें वे अपने धर्म के असली बौद्धिक शत्रु मानते हैं। मार्च में टी० एन० चतुर्वेदी की जगह एम० एम० के० वली ने ले ली, जोकि कश्मीरी ब्राह्मण हैं। लोंगोवाल और भिंडरांवाले तो सार्वजनिक रूप से कहा करते थे कि वली को इसलिए लाया गया है कि श्रीमती गाँधी खुद कश्मीरी ब्राह्मण हैं।

बातचीत के इस दौर में विरोधी दलों को भी शामिल किया गया। पंजाब के कम्युनिस्ट संसद-सदस्य हरिकिशन सिंह सुरजीत ने मुझे बताया था कि इस बातचीत में काफी प्रगति हुई। उनका कहना था कि बातचीत निश्चित ही सफल हो जाती अगर सरकार ने ट्रिब्यूनल का फैसला आने तक पंजाब को उतनी ही मात्रा में पानी लेते रहने की इजाजत दे दी होती जितना वह अब तक इस्तेमाल कर रहा था। सरकार जुलाई में इस बात के लिए तैयार तो हुई, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

विरोधी दलों को साथ लेकर चलने वाली यह बातचीत फरवरी में असफल हो गयी और श्रीमती गाँधी ने दो एकपक्षीय निर्णयों की घोषणा की। वे संसद के नजदीक नयी दिल्ली के गुरुद्वारा बंगला साहब में गयीं और वहाँ उन्होंने घोषणा की कि अकाली दल की सारी धार्मिक माँगों को मान लिया गया है। अगले महीने उन्होंने केन्द्र और राज्य के सांविधानिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए एक सदस्यीय आयोग नियुक्त करने की घोषणा की। राज्यों को अधिक अधिकार निश्चित ही अकाली दल की मुख्य राजनीतिक माँग थी। इस एक सदस्यीय आयोग में थे सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व सिख जज आर० एस० सरकारिया। लेकिन श्रीमती गाँधी की इन दोनों घोषणाओं से सन्त लोंगोवाल को कोई फर्क नहीं पड़ा। अगर ये रियायतें सरकार के साथ बातचीत के बीच से निकली होतीं तो लोंगोवाल उन्हें अपने मोर्चे की जीत कहकर पेश कर सकते थे। इससे भिंडराँवाले के खिलाफ उनके हाथ और मजबूत होते, क्योंकि भिंडराँवाले तो अकाली नेताओं द्वारा किसी भी तरह की बातचीत चलाने का ही विरोधी था।

सिख संसद-सदस्य हरकिशनसिंह सुरजीत मानते हैं कि 1983 के शुरू में बातचीत के दौरान एक दूसरी सहमति भी हुई थी, लेकिन श्रीमती गाँधी ने इसे भी बेकार कर दिया। हरकिशनसिंह सुरजीत ने मुझे बताया, 'छह महीनों के भीतर तीन बार किसी-न-किसी समझौते तक बात पहुँची और हर बार प्रधानमंत्री पीछे हट गयीं। हर बार प्रधानमंत्री को हरियाणा के हिन्दुओं के हित पंजाब के सिखों की तुलना में ज्यादा वजनदार लगे।' हरकिशनसिंह सुरजीत कम्युनिस्ट होने के बावजूद शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अध्यक्ष गुरुचरण सिंह तोहड़ा और अकाली त्रिमूर्ति के भी सबसे विश्वसनीय सलाहकार थे। इस समय तोहड़ा खुद अपनी ही चाल चलने में लगे हुए थे। वे अकाली मोर्चा और भिंडराँवाले दोनों का इस्तेमाल अकाली नेतृत्व की त्रिमूर्ति में से एक—प्रकाशसिंह बादल को नीचा दिखाने के लिए करने की उम्मीद बाँधे थे। तोहड़ा की मंशा थी कि वे अकाली दल की राजनीति के अगुआ बन जायें और इस तरह मुख्यमंत्री के पद के लिए पार्टी के उम्मीदवार हो जायें।

बातचीत और समझौतों के इस तनाव का असर अकाली त्रिमूर्ति के तीसरे

नेता सन्त लोंगोवाल और जरनैलसिंह भिंडरांवाले के रिश्तों के बीच धीरे-धीरे साफ नजर आने लगा था। भिंडरांवाले सन्त लोंगोवाल के तौर-तरीकों का कट्टर विरोधी था और उसने उस अहिंसा का मखौल उड़ाया जिसकी लोंगोवाल वकालत करते थे। वह स्वर्णमन्दिर परिसर में लोंगोवाल के दफ्तर का 'गांधी निवास' कहकर मखौल उड़ाया करता था।

1983 की शुरुआत में मैं पहली बार भिंडरांवाले से मिला। वह गुरु नानक निवास के एक छोटे-से कमरे में खाट पर बैठा हुआ था। उसे चारों ओर से स्वचालित हथियारों से लैस नौजवानों ने घेर रखा था। कुछ लोगों के पास पुरानी तरह की 'ली-एनफील्ड' राइफलें थीं, जिनका इस्तेमाल आज तक भारतीय पुलिस करती है और कुछ के पास परम्परागत भाले और बर्छे थे। मेरे सवालों का उसने जिस तरह जवाब दिया था, उन्हें पहेलियाँ बुझाना ही कहा जा सकता है। मसलन, मैंने पूछा कि इस आरोप के बारे में उसका क्या कहना है कि पंजाब में जारी हिंसा की जिम्मेदारी उसी पर है? उसने जवाब दिया : 'ये सारी हत्याएँ तो सरकार खुद कर रही है। क्या सरकार ने ही बस के उन शहीदों की हत्या नहीं की थी?' जिन शहीदों की ओर वह इशारा कर रहा था, वे वही प्रदर्शनकारी थे, जो अमृतसर के निकट एक रेलवे क्रासिंग में बस और रेलगाड़ी की दुर्घटना में मारे गये थे। मैंने यह सोचकर कि शायद कुछ दार्शनिक स्तर पर बात बने, उससे पूछा कि क्या किसी अच्छे उद्देश्य के लिए हिंसा उचित मानी जा सकती है? उसने उत्तर दिया, 'हाँ, अगर सिख धर्म का प्रचार करना और सिख नौजवान लड़कों को अपने बाल और दाढ़ी मुँडाने से रोकना हिंसा में विश्वास करना हो तो।' तब मैंने सोचा कि मैं उसे एक खास सवाल की ओर ले जाऊँ। मैंने पूछा, 'आप खालिस्तान की मांग का, भारत से सिखों की आजादी का समर्थन करते हैं या नहीं?' उसका जवाब था, 'न तो मैं इसके पक्ष में हूँ और न इसके खिलाफ। अगर वे खालिस्तान हमें दे देते हैं तो हम उसे ठुकरायेंगे नहीं।'

अब तक भिंडरांवाले ने अपने इर्द-गिर्द एक अच्छा-खासा संगठन बना डाला था। इसके प्रमुख सदस्य रोज ही स्वर्णमन्दिर में देखे जाते थे। उनमें से एक था हरमिन्दरसिंह संधू। वह आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन का महामन्त्री था। भिंडरांवाले की मंडली के उन चन्द लोगों में से वह एक था जो अँग्रेजी बोल सकते थे। बातचीत के दौरान वह भिंडरांवाले के दुभाषिये के रूप में काम करता था। कानून पढ़ा हुआ होने के कारण वह अपने नेता के ऊटपटांग जवाबों को कुछ तरतीबवार ढंग से प्रस्तुत करता था। एक बार एक सिख ने जब संधू के वक्तव्य पर सन्देह प्रकट किया तो भिंडरांवाले ने उसकी ओर पलटकर कहा, 'मैं उस पर बहुत भरोसा करता हूँ। जैसी उसकी मर्जी हो, वैसी ही मेरी बात वो कहे। तुमको पता नहीं है कि उसने कितना बलिदान दिया है। उसे उलटा लटका दिया गया था, तब भी वह

एक लफ्ज नहीं बोला।' दरअसल सन्धू की वफादारी कुछ संदिग्ध थी। भिंडराँवाले के अनुसार सन्धू को कई बार गिरफ्तार किया गया और पुलिस ने उसे यातना भी दी। लेकिन हर बार उसे रिहा भी कर दिया जाता था जिसका कोई स्पष्ट कारण किसी को नहीं पता था। भिंडराँवाले के जीवन के अन्तिम दिनों में भारतीय गुप्तचर सेवा द्वारा दी गयी जानकारियों के आधार पर एक ऐसे डबल एजेंट फाल्कन की खबरें अखबारों में छपने लगी थीं जो भारतीय सीमा को पार करके पाकिस्तान जाता रहता था। यह डबल एजेंट एक पाकिस्तानी जनरल के साथ सम्पर्क कायम करके वापस लौट कर भारतीय गुप्तचर एजेंसी 'रा' (रिसर्च ऐंड एनालिसिस विंग) को सूचनाएँ देता था। इस एजेंट के बारे में ज्यादा विस्तृत जानकारी दिल्ली के पत्रकार चाँद जोशी की किताब 'भिंडराँवाले : मिथ ऐंड रियलिटी' में दी गयी है। यह माना जाता है कि दरअसल सन्धू ही वह आदमी था जिसको चाँद जोशी ने अपनी किताब में 'फाल्कन' कहा है। 'फाल्कन' की असलियत चाहे जो भी हो, लेकिन सच्चाई यह भी है कि स्वर्णमन्दिर पर सैनिक कार्रवाई के दौरान भिंडराँवाले के सबसे खास लोगों में समर्पण करने वाला एकमात्र सदस्य हरमिन्दरसिंह सन्धू ही था।

भिंडराँवाले के प्रति जिसकी वफादारी पर कभी सन्देह नहीं किया गया वह अकेला आदमी था उसका सचिव रछपालसिंह। सन्धू की तरह उसकी उम्र भी लगभग 30 साल थी। रछपालसिंह पतले होंठों का परेशान-सा दिखने वाला व्यक्ति था। वह भिंडराँवाले के धार्मिक अभियान का कार्यकर्त्ता था और उसने भिंडराँवाले के कई धार्मिक प्रवचनों को लिखने का काम किया था। इन कागजों को चान्दोकलाँ में भिंडराँवाले को गिरफ्तार करने आयी पुलिस द्वारा जला दिया गया था। स्वर्णमन्दिर में रछपालसिंह भिंडराँवाले के पत्र-व्यवहार का काम देखता था और सन्त से मिलने-जुलने वाले लोगों का रोजनामचा बनाता था।

इस समय भिंडराँवाले का राजनीतिक सलाहकार था एक भूतपूर्व पत्रकार दलबीरसिंह। कई सालों तक वह कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य रहा था, लेकिन धीरे-धीरे कट्टर सिख हो चला था। 1978 में उस दिन वह स्वर्णमन्दिर में ही था जब उसके अनुसार भिंडराँवाले ने निरंकारियों के खिलाफ जुलूस का नेतृत्व किया था। दलबीरसिंह कहा करता था कि निरंकारियों के साथ उस दिन जो झड़प हुई वह उसकी जिन्दगी का निर्णायक मोड़ था। उस दिन के बाद से वह 'सन्त जी' का सर्मापित अनुयायी बन गया। भिंडराँवाले की छवि को बढ़ाने-चढ़ाने के लिए दलबीरसिंह प्रेस के साथ अपने सम्पर्कों का इस्तेमाल करता था। अकाली दल के नेताओं से बातचीत करने में भी वह भिंडराँवाले को सलाह देता था। वह लोंगोवाल या सरकार के साथ किसी भी तरह के समझौते के बिलकुल खिलाफ था।

युवा सिख उग्रवादियों में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति था—भिंडराँवाले के गुरु करतारसिंह का बेटा अमरीक सिंह। करतारसिंह ने भिंडराँवाले को दमदमी टक-

साल का उत्तराधिकार सौंपा था। अमरीकसिंह ज्यादातर शान्त रहता था और पत्रकारों से कभी-कभार ही कुछ बोलता था। लेकिन जब कभी यह तय किया जाता था कि भिंडरांवाले का इण्टरव्यू किसे लेना चाहिए या भिंडरांवाले के दर्शनार्थियों की फिल्म किसे उतारने की अनुमति देनी चाहिए, तो यह फैसला अमरीकसिंह को ही सौंपा जाता था। आल इण्डिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन का अध्यक्ष होने के नाते बहुत सारी हत्याओं, डकैतियों और सरकारी संपत्ति पर हमलों की ज्यादातर जिम्मेदारियाँ उसी के ऊपर थी। ऐसी वारदातें पंजाब में रोज होती थी, हालांकि उस समय, 1983 की शुरुआत में, वह जेल में था।

ऐसा भी नहीं था कि स्वर्णमन्दिर में इकट्ठा सारे नौजवान भिंडरांवाले के पक्के समर्थक या सच्चे सिख थे। वहाँ बहुत-से पुलिस और सेना के भगोड़े, तस्कर और दूसरे अपराधी भी सन्त का संरक्षण पा रहे थे। हिंसक क्रांति में विश्वास रखने वाले कुछ नक्सलवादी भी थे। हरमिन्दरसिंह सन्धू ने एक बार सतीश जेकब को उस दस्ते के कुछ सदस्यों के नाम बताये थे जिसे वह हत्या का दस्ता कहता था। इन नामों में पंजाब पुलिस के चार भगोड़े अमरजीतसिंह, सेवासिंह, काबुलसिंह और गुरनामसिंह के अलावा एक फरार अपराधी सर्लविंदरसिंह और सुरिंदरसिंह सोढ़ी भी शामिल थे।

सोढ़ी उन आतंकवादियों में से एक था जिन्होंने भिंडरांवाले का साथ अपनी सच्ची आस्था के कारण दिया, इसलिए नहीं कि उन्हें कानून से बचना था। 19-20 साल का सोढ़ी भिंडरांवाले और लोंगोवाल के मोर्चों में शामिल होने से पहले तक होशियारपुर में रेडियो मैकेनिक था। वह बहुत अचूक निशानेबाज था और कई महत्वपूर्ण आतंकवादी हमलों का मुख्य जिम्मेदार वही था, हालांकि उसे ग्रंथ साहब को पढ़ते हुए फोटो खिंचाना बहुत पसन्द था। सोढ़ी को भिंडरांवाले का परिवहन मंत्री कहा जाता था, क्योंकि उसका दावा था कि वह स्कूटर से लेकर हवाई जहाज तक हर चीज चला सकता है।

गुरिंदरसिंह गिल भी एक ऐसा ही कट्टर सिख था जिसने आतंकवादी गतिविधियों में हिस्सा लिया। 25-वर्षीय गिल पहले एक कृषि निरीक्षक की सरकारी नौकरी में था, लेकिन कट्टर सिख होने के कारण उसके भीतर निरंकारियों के विरुद्ध गहरी घृणा पैदा होती चली गयी और इसी के कारण उसने अपनी सुरक्षित सरकारी नौकरी छोड़ कर निरंकारियों के खिलाफ जेहाद छेड़ने वाले भिंडरांवाले का साथ देने का फैसला किया। उसे 'दशमेश रेजिमेंट' यानी दसवें गुरु की रेजिमेंट का मुखिया बनाया गया। भिंडरांवाले के दौर के खत्म होते-होते 'दशमेश रेजिमेंट' ने कई हत्याओं की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। निरंकारियों के खिलाफ घृणा से प्रेरित होकर भिंडरांवाले का साथ देने वाला एक और व्यक्ति था, पैंतीस साल का रंजीतसिंह। वह अपने गुस्सैल मिजाज और अक्खड़ व्यवहार के लिए

कुख्यात था। एक बार तो वह भिंडराँवाले से ही अलग हो गया था। उसने बड़ी रहस्यपूर्ण परिस्थितियों में स्वर्णमन्दिर छोड़ा और 1980 में निरंकारियों के गुरु की हत्या के षड्यंत्र में दिल्ली में उसे गिरफ्तार कर लिया गया। भिंडराँवाले ने लोंगोवाल और उनके सहयोगियों पर रंजीतसिंह को स्वर्णमन्दिर से अपहृत करके दिल्ली पुलिस को सौंप देने का आरोप लगाया।

स्वर्णमन्दिर के चारों ओर की सँकरी गलियों में रहने वाला हर दूकानदार और हर परिवार इन आतंकवादियों को अच्छी तरह से जानता था। वे चाय के ढाबों और दूकानों में बातचीत करते हुए आते-जाते रहते थे। पंजाब पुलिस को भी उनके बारे में सारी जानकारियाँ रही होंगी, लेकिन उसने कभी उन्हें गिरफ्तार करने की कोशिश नहीं की। अब तक भिंडराँवाले और उसके समर्थक कानून की पहुँच से परे हो चुके थे। उन्हें गिरफ्तार करने के लिए प्रधानमंत्री की 'विचार मंडली' की इजाजत चाहिए थी और यह इजाजत उन्हें मिल नहीं रही थी।

निरंकारी इन आतंकवादियों के मुख्य लक्ष्य बने रहे। काँग्रेस पार्टी के प्रति भिंडराँवाले का रवैया बदल जाने के बाद मंत्री और सरकार के समर्थक भी आतंकवादियों के हमले का निशाना बनने लगे। खुद मुख्यमंत्री पर हमला किया गया। पंजाब के शिक्षामंत्री के घर में एक बम फेंका गया और एक दूसरा बम पंजाब विधानसभा के एक कांग्रेसी सदस्य के घर में फेंका गया। जनवरी 1983 में अमृतसर में भारत के गणतंत्र दिवस समारोह को भंग करने के लिए आतंकवादियों ने बम फेंके। गणतंत्र दिवस के अगले ही दिन भिंडराँवाले के आदमियों ने अपनी पहली बैंक डकैती डाली। यह डाका अमृतसर के सिंडीकेट बैंक की एक शाखा में पड़ा। दूसरी बैंक डकैती अप्रैल में हुई। पुलिस का अनुमान था कि इन डकैतियों से यह पता चलता है कि भिंडराँवाले को रुपयों की सख्त जरूरत है। उनका शक था कि वह हथियार खरीदना चाहता है। हालांकि पंजाब में हिंसा बहुत अधिक बढ़ चुकी थी, लेकिन अपने शिकारों को चुनने के मामले में जो तरीका आतंकवादियों ने अपना रखा था, उसने आगे चलकर पंजाब पुलिस और प्रशासन का मनोबल पूरी तरह गिरा डाला।

1983 के प्रारम्भ में होने वाली बातचीत के असफल हो जाने के कारण अपनी गिरी हुई साख को दुबारा जमाने की कोशिश में सन्त लोंगोवाल ने आन्दोलन पर एक बार फिर अपना नियंत्रण कायम करना चाहा, जोकि तेजी से उनके हाथ से निकलकर भिंडराँवाले के हाथ में जा रहा था। अप्रैल में उन्होंने 'रास्ता रोको' का आह्वान किया। सिखों की दृष्टि में यह आन्दोलन सफल रहा, पंजाब का सारा यातायात ठप्प रहा और पुलिस हताहतों की संख्या 175 तक पहुँची। हिंसात्मक घटनाओं में 21 लोग मारे गये। 'रास्ता रोको' के आह्वान पर सिखों की प्रतिक्रिया ने लोंगोवाल को एक बार फिर से ताकत दी कि वे खुलेआम भिंडराँवाले को चुनौती दे

सकें। उन्होंने मोर्चा डिक्टेटर की हैसियत से भिंडरांवाले को आदेश दिया कि वह उनकी वफादारी की शपथ ले। घुटनों तक लम्बे, नीले निहुंग लिबास में भिंडरांवाले मोर्चा समर्थकों के साथ खड़ा हुआ जो अपनी गिरफ्तारियां देने जा रहे थे और उसने 'मोर्चा डिक्टेटर' सन्त लोंगोवाल के प्रति वफादारी की शपथ ली, लेकिन उसकी यह प्रतिबद्धता बहुत दिनों तक नहीं चली।

बारह दिन बाद स्वर्णमन्दिर से बाहर निकलते हुए एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी की दिन-दहाड़े हत्या कर दी गयी। पूरा हिन्दुस्तान हिल उठा और लोंगोवाल तथा भिंडरांवाले के बीच यह तात्कालिक सन्धि छिन्न-भिन्न हो गयी।

8

दो बर्बर हत्याएँ
श्रीमती गाँधी ने आखिर कार्रवाई की

23 अप्रैल, 1983 को स्वर्ण मन्दिर में जानेवाले श्रद्धालुओं में उपमहानिरीक्षक ए० एस० अटवाल भी थे, जो अमृतसर पुलिस के प्रधान थे। अन्य भक्तों की तरह उन्होंने भी मन्दिर परिसर के बीचोंबीच वने सरोवर के चारों ओर संगमरमर वाले फर्श की परिक्रमा की। उन्होंने ईश्वर की लौकिक सत्ता के प्रतीक अकाल तखत के सामने खड़े होकर प्रार्थना की। फिर वह मुड़कर पवित्र हरिमन्दिर को जाने वाले सँकरे सेतु के सुसज्जित द्वारदर्शनी ड्योढ़ी के सामने खड़ी कतार में शामिल हो गये। फिर उन्होंने भेंट चढ़ायी और सिखों के पवित्र हलवे का प्रसाद ग्रहण किया और गली में आगे चले। मन्दिर में उन्होंने गुरुग्रन्थ साहव के सामने मत्था टेका, फिर वापस आकर ग्रन्थियों द्वारा हारमोनियम पर गायी जा रही गुरुवाणी खड़े होकर सुनने लगे। थोड़ी देर वाद पुलिस उपमहानिरीक्षक वापस मुख्य द्वार की ओर चल पड़े। उनके एक हाथ में अपने परिवार के लिए प्रसाद का दोना था। वह नक्काशी-दार घंटाघर की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे कि अचानक गोलियाँ चलनी शुरू हो गयीं और अटवाल वहीं गिरकर मर गये। उनके पुलिस अंगरक्षक जो वाहर उनका इन्तजार कर रहे थे, भाग खड़े हुए। सौ गज दूर स्थित पुलिस चौकी से कोई जवावी गोली नहीं चली। अटवाल की गोलियों से छलनी लाश सिखों के सवसे पवित्र मन्दिर के दरवाजे पर दो घंटे तक पड़ी रही, तव कहीं जाकर जिला आयुक्त मन्दिर के अधि-कारियों को इस वात के लिए राजी कर सके कि वे लाश पुलिस को सौंप दें।

पंजाव के मुख्यमंत्री दरवारासिंह ने वाद में मुझे वताया कि अटवाल को स्वर्णमन्दिर के अन्दर जाने से मना किया गया था। सरकार को यह भनक मिली थी कि अटवाल आतंकवादियों का लक्ष्य थे, क्योंकि उन्होंने ही उस व्यूह की रचना की थी, जिसमें भिंडराँवाले का एक प्रमुख सहायक मारा गया था और तीन अन्य घायल हुए थे। अमृतसर में सी० आई० डी० के प्रमुख ने वाद में सतीश जेकव को इस व्यूहरचना के वारे में वताया। अटवाल ने, जोकि एक असाधारण रूप से सक्रिय और स्वतंत्र सोच के अफसर थे, अपने एक जासूस को भिंडराँवाले के अनुया-

यियों में शामिल करवा लिया था। उसने अटवाल को बताया था कि 15 मार्च की रात भिंडरांवाले के दो बहुत ही खतरनाक हत्यारे अपना 'काम' करने बाहर जा रहे हैं। अटवाल ने एक वरिष्ठ अधीक्षक को निशानेबाजों के एक दल के साथ अमृतसर के बाहर जी० टी० रोड पर मानावाला पुल पर तैनात कर दिया था। सी० आई० डी० अधिकारी के अनुसार प्रातः 4.30 बजे एक जीप तेज रफ्तार में पुल की ओर आयी। वह पुलिस द्वारा लगायी गयी तेल के पीपों की रुकावट के सामने खड़ी हो गयी। जीप में बैठे सिखों ने पुलिस पर एक हथगोला फेंका, और पुलिस ने जवाबी गोली चलायी। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक पांडे को चोट लगी, जीप में बैठा एक सिख हरदेवसिंह मारा गया। जीप का ड्राइवर गुरसंतसिंह भी घायल हुआ, मगर हरदेवसिंह की लाश लेकर स्वर्णमंदिर तक पहुँचने में सफल हो गया। वहाँ गुरसंतसिंह ने पत्रकारों को दूसरी ही कहानी बतायी। उसके अनुसार पुल के बीचों-बीच एक लारी कुछ इस तरह खड़ी थी, जैसे वह खराब हो गयी हो। जब जीप ड्राइवर ने लारी की बगल में निकलने के लिए रफ्तार कम की तो पुलिस ने, जो पहले से ही ताक में बैठी थी, गोली चलायी। वे भागने में तो सफल हो गये, लेकिन जीप को रास्ते में छोड़ देना पड़ा। गुरसंतसिंह ने यह नहीं बताया कि वह हरदेव-सिंह की लाश को लेकर स्वर्णमन्दिर कैसे पहुँचा। 24 घंटे के बाद मन्दिर अधि-कारियों ने जिला आयुक्त को फोन पर कहा कि वे आकर मन्दिर से लाश ले जायें। भिंडरांवाले ने एक वक्तव्य जारी करके पुलिस पर अपने एक साथी की निर्मम हत्या का आरोप लगाया।

सी० आई० डी० अधिकारी के अनुसार भिंडरांवाले को अटवाल के जासूस पर सन्देह हो गया। उसने कुछ दिन ठहरकर उसे यातनाएँ देकर मार डाला। पुलिस को उसकी क्षत-विक्षत लाश भिंडरांवाले के मुख्यालय गुरु नानक निवास के बाहर मिली। सी० आई० डी० अधिकारी को सन्देह है कि पुलिस जासूस ने उस सूत्र के बारे में बताया होगा, जिससे वह अटवाल के साथ सम्पर्क स्थापित करता था। हो सकता है कि भिंडरांवाले ने इसी सम्पर्क सूत्र का इस्तेमाल करके अटवाल को मंदिर में जाने के लिए प्रेरित किया हो। इस तरह हो सकता है कि उपमहानिरीक्षक अटवाल दरअसल ऐसे मासूम भक्त नहीं थे जैसे वह उस दिन दिखायी दिये।

एक वरिष्ठ पुलिस अफसर की दिन दहाड़े हत्या से राष्ट्रव्यापी क्षोभ पैदा हुआ। विपक्षी नेताओं की माँग थी कि मन्दिर के सराय वाले हिस्से में प्रवेश करके पुलिस भिंडरांवाले और उसके समर्थकों को गिरफ्तार करे। सबसे प्रभावशाली समाचार पत्र 'टाइम्स आफ इंडिया' ने अपने सम्पादकीय में अकाली दल के नेताओं, सरकार और भिंडरांवाले की कड़ी आलोचना की। लोंगोवाल ने पूरी दुनिया के सिखों से अपील की थी कि वे मन्दिर में पुलिस के प्रवेश का विरोध करें। 'टाइम्स आफ इंडिया' ने लिखा, 'लोंगोवाल पहले से ही बहुत संकटपूर्ण हो चुकी स्थिति को और

भी बिगाड़ने पर तुले हुए हैं।' उसने लिखा कि पुलिस ने पहले भी मन्दिर में प्रवेश किया था जब श्रीमती गाँधी के पिता पंडित जवाहलाल नेहरू प्रधान मंत्री थे। अखबार ने यह बात भी बड़े तर्कपूर्ण ढंग से स्पष्ट की कि सराय क्षेत्र दीवारों से घिरे हुए असली धार्मिक स्थान हरिमन्दिर और अकाल तखत से बिलकुल अलग है। लेकिन इस अवसर पर पंजाब समस्या को सँभालने के बारे में सरकार का सबसे विचित्र रवैया यह था कि उसके सूचना-तंत्र ने सिखों को यह बात समझाने की कोशिश नहीं की। 'टाइम्स आफ इंडिया' ने अपने सम्पादकीय के अन्त में लिखा : 'इससे नयी दिल्ली और चण्डीगढ़ दोनों की सरकारों पर भीषण जिम्मेदारी आती है, क्योंकि धर्म या पूजा-स्थलों के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा की आड़ में देश के कायदे-कानूनों का खुले आम उल्लंघन करने की इजाजत नहीं दी जा सकती।'

पंजाब के मुख्यमंत्री के अनुसार उस जिम्मेदारी को उठाने के लिए वह तो तैयार थे, मगर नयी दिल्ली की केन्द्रीय सरकार नहीं। दरबारासिंह ने मुझे बताया कि, 'मैंने केन्द्रीय सरकार से बार-बार कहा कि गुरु नानक निवास मन्दिर परिसर का हिस्सा नहीं है और पुलिस को वहाँ भेजा जाना चाहिए, मगर उन्होंने मुझे निर्देश दिया कि उन्हें डर है कि कहीं इससे सिखों की भावनाएँ भड़क न उठें।' दरबारासिंह के पुराने प्रतिद्वन्द्वी जैलसिंह अब तक राष्ट्रपति बन गये थे और हालाँकि प्रत्यक्ष रूप से सरकार में उनका अब कोई दखल नहीं था, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि पंजाब के मामले में श्रीमती गाँधी उनसे सलाह-मशविरा करती थीं।

केन्द्रीय सरकार ने पुलिस उपमहानिरीक्षक अटवाल की हत्या के बाद गुरुनानक निवास में प्रवेश न करके और भिंडराँवाले को गिरफ्तार न करके एक घातक भूल की। जो राष्ट्रव्यापी विरोध इस घटना के बाद उठा था, उसके चलते भिंडराँवाले के कट्टर अनुयायियों के अलावा बहुत कम सिख इस पर आपत्ति करते। असल में बहुत सारे सिखों—विशेषकर पंजाब के बाहर रहने वाले सिखों ने—इसका स्वागत भी किया होता। राजधानी दिल्ली और अन्य भागों में रहने वाले सिखों को इस बात से तकलीफ होने लगी थी कि हिन्दू हर सिख वेशभूषा वाले व्यक्ति को भिंडराँवाले का अनुयायी मानने लगे हैं।

भिंडराँवाले को गिरफ्तार न करने का कुछ दोष तो लोंगोवाल और अकाली दल त्रिमूर्ति पर भी जाना चाहिए। यदि दुनिया-भर के सिखों से पुलिस को मन्दिर में प्रवेश करने से रोकने का अनुरोध करने के बदले उन्होंने यह घोषित किया होता कि गुरु नानक निवास मन्दिर का भाग नहीं है, तो सरकार को भिंडराँवाले की गिरफ्तारी से सिखों के भड़क उठने का डर नहीं रहता। मगर लोंगोवाल को शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष गुरुचरण सिंह तोहड़ा से कोई

समर्थन नहीं मिला। तोहड़ा के विश्वासपात्र हरकिशनसिंह सुरजीत के अनुसार तोहड़ा को आशंका थी कि अकाली त्रिमूर्ति के अन्य दो नेता एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं और वे उन्हें संगठन से निकालने की कोशिश कर रहे हैं, इसलिए उन्हें अब भी भिंडरांवाले की मदद की जरूरत है। उस समय पंजाब संकट को सुलझाने के लिए यह गुप्त बातचीत चल रही थी कि एक संयुक्त सरकार बने, जिसमें अकाली दल और कांग्रेस पार्टी शामिल हों और मुख्यमंत्री बनें प्रकाशसिंह बादल। इससे तोहड़ा की महत्वाकांक्षाओं पर कुठाराघात होता। इसलिए उन्होंने मन्दिर परिसर में अपने दफ्तर में भिंडरांवाले और लोंगोवाल की गुप्त बैठक करवायी, जिससे संयुक्त सरकार का प्रस्ताव ही समाप्त हो जाये। लोंगोवाल इस जाल में फँस गये और संयुक्त सरकार का प्रस्ताव रद्द कर दिया गया। अपना लक्ष्य पूरा करने के बाद भिंडरांवले ने लोंगोवाल को भी छोड़ दिया।

इस बैठक के बाद भिंडरांवाले के निकट के साथी अमरीकसिंह (जिसे सरकार के अनुसार गलती से जेल से छोड़ा गया था) ने ए० आई० एस० एस० एफ० की बैठक बुलायी। हालांकि अमरीक सिंह फेडरेशन का अध्यक्ष तथा भिंडरांवाले का दुभाषिया हरिमिन्दर सिंह मधू उसका महामन्त्री था, फिर भी ए० आई० एस० एस० एफ०, नाम के लिए सही, अकाली दल से सम्बद्ध संगठन था। ऐसा होते हुए भी लोंगोवाल को इस बैठक में सार्वजनिक रूप से अपमानित किया गया। पत्रकार तवलीन सिंह वहाँ थी। उनका कहना था ' 'सफाचट्ट कपड़ों में सुनहरे धागों से सजी म्यान में एक बड़ी तलवार लिये भिंडरांवाले ही इस बैठक के असली हीरो थे। लोंगोवाल भी मंच पर थे, मगर भिंडरांवाले को ही समापन भाषण करने का सम्मान दिया गया। सरकार की निन्दा की गयी, हिन्दुओं की निन्दा की गयी, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का उपहास उड़ाया गया। तवलीन सिंह के अनुसार लाउडस्पीकर पर बजाये जाने वाले एक गाने की पंक्ति थी, 'हमारे बापू (गुरु गोविन्द सिंह) के पास शस्त्र और उत्तम बाण थे, उनके बापू (गाँधी) के पास एक बूढ़े की लाठी भर थी।' लोंगोवाल को इस बैठक के तेवर भाँप कर कहना पड़ा, 'हमारी लड़ाई उसूलों की है और हमारा राज वैसा ही होगा जैसी कल्पना गुरु नानक ने की थी।' उन्होंने यह भी कहा 'सिख अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई में लग चुके हैं।'

वैसे तो लोंगोवाल वहाँ भिंडरांवाले की नीति के सामने झुके, फिर भी इससे उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। भिंडरांवाले अब अनिश्चित रूप से सिख युवकों का 'हीरो' हो चुका था और लोंगोवाल के लिए यह खतरा पैदा हो गया था कि कहीं वे उसके कैदी न बन जायें। फिर भी उन्होंने इस स्थिति को बदलने की कोई कोशिश नहीं की। तब से लोंगोवाल गुरु नानक निवास के बगल की इमारत में अपने कमरे से कभी-कभार ही बाहर निकले। वह बादल और तोहड़ा के साथ योजनाएँ बनाते रहे, लेकिन यह हिम्मत न जुटा सके कि एक कदम बढ़कर सरकार से सहयोग

करें, जबकि इससे बिगड़ती हुई परिस्थिति पर कावू किया जा सकता था। आखिर-कार भारतीय सेना ने ही लोंगोवाल को भिंडराँवाले की कैद से छुटकारा दिलाया, मगर वहाँ से निकलकर लोंगोवाल श्रीमती गाँधी की कैद में पहुँच गये।

भिंडराँवाले और लोंगोवाल के बीच कलह के कारण मन्दिर के भीतर तनाव बढ़ रहा था, क्योंकि दोनों परिसर के अन्दर ही रहते थे। इस तनाव ने शीघ्र ही हिंसा का रूप ले लिया और भिंडराँवाले को अकाल तखत की शरण लेनी पड़ी। फिलहाल मन्दिर क्षेत्र के अन्दर बढ़ते हुए तनाव को बाहर नालियों में मिलनेवाली लाशों से आँका जाता था। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के सचिव भान-सिंह ने सतीश जेकब को बताया कि अगस्त और सितम्बर 1983 में कम-से-कम पाँच लाशें बाहर गन्दे नालों में पायी गयीं। जब सतीश जेकब ने पूछा कि वे लोग कैसे मरे तो जवाब मिला : 'मुझ से मत पूछो, आप जानते हो कैसे।' एक पुलिस अफसर ने सतीश जेकब को बताया कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार उन्हें मारने से पहले यातनाएँ दी गयी थीं। हालाँकि ये लाशें हत्याओं का प्रत्यक्ष सबूत थीं, मगर पुलिस वालों ने खुद माना है कि उन्होंने जाँच करने की कोई कोशिश नहीं की।

भिंडराँवाले शेष पंजाब पर भी अपना दबदबा जमा रहा था। अटवाल की हत्या और इस पर सरकार की अकर्मण्यता से पूरे राज्य में खौफ फैल गया। परि-णाम यह हुआ कि लोग यह महसूस करने लगे कि जो सरकार अटवाल जैसे वरिष्ठ पुलिस अफसर की हत्या पर इतनी कमजोर सिद्ध हो गयी कि कुछ कर न सकी, वह हमें क्या सुरक्षा देगी। यही वह समय था जब भिंडराँवाले की 'हिटलिस्ट' की कहानियाँ फैलने लगीं। यह एक ऐसी सूची थी, जिसमें सरकारी अफसरों, पुलिस अफसरों, हिन्दुओं और ऐसे सिखों के नाम भी थे, जिनके साथ भिंडराँवाले का कोई वैर रहा हो। इस 'हिट-लिस्ट' के साथ जो कहानियाँ जुड़ीं वे अधिकतर अति-रंजित थीं। बताया जाता था कि हर-एक नाम कागज के एक टुकड़े पर लिखा जाता था, फिर उसे भिंडराँवाले के कमरे में मिट्टी के एक बरतन में रखा जाता था। जब कभी कोई भिंडराँवाले के पास आकर सिख धर्म के लक्ष्यों के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करने की बात कहता तो उसे मटके में से एक कागज निकालकर पढ़ने को कहा जाता था। जब वह कागज पर लिखा नाम-पता पढ़ लेता तब भिंडराँवाले उससे कहता कि जाओ और उसे खत्म कर दो। यह बात कपोल-कल्पना जैसी लगती है। न मैंने, न सतीश जेकब ने, न उन्होंने जिनसे हमने बात की, उस मिट्टी के घड़े को देखा। मगर हाँ, 'हिट-लिस्ट' थी जरूर। तवलीनसिंह एक ऐसी पत्रकार हैं जिन्होंने स्वयं देखा कि एक आदमी का नाम इस सूची में कैसे शामिल हुआ।

एक बार तवलीनसिंह ने भिंडराँवाले से

कि सिखों के विरुद्ध पक्षपात किया जाता है, तो भिंडराँवाले गुस्से में चिल्लाया, 'तुम देखना चाहती हो कि वे सिखों के साथ क्या करते हैं ? अभी दिखाता हूँ।' करीब 30 वर्ष का एक लम्बा सिख उसके सामने लाया गया। उसका नाम लहरसिंह था। वह परंपरागत सिख पोशाक में था मगर उसकी दाढ़ी कटी-फटी लगती थी। लहरसिंह ने बताया कि एक पुलिस अफसर बिच्छूराम ने उसकी दाढ़ी काट दी और फिर कहा कि जाकर भिंडराँवाले से कह दो। जब तवलीनसिंह ने छह महीने बाद बिच्छूराम की हत्या के बारे में पढ़ा तो उन्हें लगा कि उस दिन उन्होंने पुलिस अफसर की मौत का वारंट जारी होते देखा था।

पुलिस उप-अधीक्षक बचनसिंह की हत्या की भी बहुत चर्चा हुई। आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन के अध्यक्ष अमरीकसिंह ने कहा कि बचनसिंह ने उसे जेल में मारा-पीटा था। भिंडराँवाले ने घोषणा की कि पुलिस अफसर को इसकी कीमत अपनी जान से चुकानी पड़ेगी। बचनसिंह ने यह कीमत तो चुकायी ही, उसके पूरे परिवार को भी चुकानी पड़ी। भिंडराँवाले और उसके लोग अपने दुश्मनों को धमकी-भरे खत भी भेजते थे, जैसे पत्रकारों और सम्पादकों को, जिन्होंने उसके विरुद्ध लिखा हो। सिख इतिहासकार और स्तम्भकार खुशवन्तसिंह, पंजाब और हरियाणा के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक के सम्पादक प्रेम भाटिया को ऐसे पत्र मिले। भाटिया को इतने धमकी भरे पत्र मिले कि पुलिस को उनके चंडीगढ़ निवास के सामने तम्बू गाड़कर बैठना पड़ा। लाला जगतनारायण की हत्या के बाद कोई भी पत्रकार ऐसा जोखिम नहीं उठा सकता था। खुद भिंडराँवाले अकसर कहता था कि पन्थ के दुश्मन को मारने में कोई बुराई नहीं, और हर धर्मांध की तरह वह भी अपने हर दुश्मन को धर्म का दुश्मन मानता था।

'हिटलिस्ट' के बढ़ने के साथ-साथ पंजाब के लोगों पर भिंडराँवाले का दबदबा भी बढ़ता गया। वे अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए अदालतों या प्रशासन के बदले भिंडराँवाले के पास आने लगे। सतीश जेकब ने एक बार एक अधेड़ औरत और उसके जवान बेटे को भिंडराँवाले के सामने अपनी समस्या बयान करते हुए देखा। औरत कह रही थी कि उसके पति ने उसे छोड़ दिया है और गुजर-बसर का खर्चा भी देने से इनकार कर रहा है। उसने भिंडराँवाले से उसे खतम करने के लिए कहा।

भिंडराँवाले ने जवाब दिया, 'मैं सिर्फ उनको खतम करता हूँ जो पन्थ के दुश्मन हैं, जैसे पुलिस वाले, सरकारी अफसर और हिन्दू।'

बेटे ने इस पर पूछा, 'क्या आप मुझे ऐसा कोई हथियार दे सकेंगे जिससे मैं खुद जाकर काम कर आऊँ ?'

भिंडराँवाले ने उत्तर दिया, 'नहीं, कोई बन्दूक खुद जाकर खरीद लो।'

'मैं काम कर आऊँ तो क्या मैं यहाँ बचने के लिए आ सकता हूँ ? बेटे ने

पूछा।

'नहीं, हम सिर्फ उनको शरण देते हैं जो आन्दोलन के लिए काम करके आते हैं। अगर तुम किसी ऐसे पुलिस वाले को मारकर आओ जिसने मेरे किसी आदमी को सताया हो, या सरकारी अफसर को जो हमारे खिलाफ हो तो मैं न केवल तुम्हें शरण दूंगा, वल्कि फूलमाला भी पहनाऊँगा।'

अन्त में भिंडराँवाले ने युवक और उसकी माँ पर दया की और उसके पिता का नाम और गाँव पूछकर कहा, 'ठीक है, मैं वहाँ के थानेदार से कह दूंगा कि तुम्हारे वाप की टाँगें तोड़ दे।'

जव सतीश जेकव ने भिंडराँवाले के दुभाषिये से पूछा कि वह ऐसा कैसे कर पायेगा तो उसने जवाव दिया, 'सन्त जी के आदेश को कोई टाल नहीं सकता।'

धनी लोग भी भिंडराँवाले के पास काम करवाने आते थे, मगर उन्हें इसके लिए भेंट चढ़ानी पड़ती थी। स्वर्ण मन्दिर के एक ग्रन्थी ने सतीश जेकव को एक अमीर जमींदार के वारे में वताया जो भिंडराँवाले के पास इसलिए आया कि वह अपने किरायेदार से अपना एक गोदाम खाली करवाना चाहता था। भिंडराँवाले ने पूछा कि गोदाम को खाली करवाने से उसे कितना फायदा होगा? उसने कहा कि करीव दस लाख रुपये। भिंडराँवाले ने उसे दस हजार रुपये अपने चरणों में डालने के लिए कहा। दूसरे दिन किरायेदार को भिंडराँवाले का 'दर्शन' करने के लिए वुलाया गया और कहा गया कि गोदाम खाली कर दे और उसने कर दिया। जायदाद की खरीद-फरोख्त के मामले के एजेंट जगजीतसिंह वावा ने कहा कि भिंडराँवाले तो अपने सम्प्रदाय के लोगों को भी धमकी देकर धन वसूल करता था, वावा को भी एक वार एक पत्र मिला जिसमें 20,000 रुपये देने की माँग थी। उसने फौरन दे दिये। सिख युवक किसी कपड़ा विक्रेता के पास पहुँच जाते और कहते, 'सन्त जी को दो थान कपड़े चाहिए।' और फिर वे अपनी मर्जी का कपड़ा लेकर ही दुकान से हटते।[7]

भिंडराँवाले का कामकाज जैसे-जैसे वढ़ता गया, उसके सहयोगी भी वदलते गये। सवसे महत्वपूर्ण परिवर्तन अमरीकसिंह की वापसी थी। उसकी रिहाई के वाद जो भी भिंडराँवाले से मिलने गया, उसे पता चल गया कि अमरीकसिंह अव दूसरे नम्वर पर है। जनरल शाहवेगसिंह, जिसने मन्दिर की किलेवन्दी में अहम भूमिका निभायी, भी अव भिंडराँवाले के साथ दिखायी देने लगा था। मन्दिर के आसपास वाजार में रहने वाले कहते हैं कि वे अन्दर से गोलियों की आवाज सुनते थे और उन्हें वताया गया था कि कुछ भूतपूर्व सैनिक सिख युवकों को हथियारों का प्रशिक्षण दे रहे हैं। जून 1983 में सरकार को ये सूचनाएँ भी मिलीं कि सिखों को कश्मीर में आयोजित शिविरों में भी हथियारों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। मगर कश्मीर के मुख्यमंत्री यही दावा करते रहे कि ये शिविर तो धार्मिक सम्मेलन थे जहाँ सिख

युवक हथियार नहीं, सिर्फ अपनी धार्मिक आस्था को चमका रहे थे। सैनिक परम्परा के कारण सिख अच्छे-से-अच्छे समय में भी एक हिंसक सम्प्रदाय है। 'खून का बदला खून' या 'आँख के बदले आँख' ही पंजाब का कानून है। इसलिए हथियार सम्भालना भिंडराँवाले के युवकों के लिए स्वाभाविक ही था।

गुरुनानक निवास में 1983 के उत्तरार्ध में एक और चेहरा दिखायी देने लगा था—गुरतेजसिंह का। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा में था, जो कि अंग्रेजों के जमाने के अभिजात तंत्र आई० सी० एस० का विकल्प है। गुरतेज सिंह सिख राष्ट्रवाद का कट्टर समर्थक था, इसलिए उसने दस साल नौकरी करने के बाद उसे छोड़ दिया था। शिक्षित, सुसंस्कृत, भूतपूर्व अफसरशाह गुरतेजसिंह भिंडराँवाले को घेरे रहने वाले गँवार धर्मान्धों, भगोड़ों और अपराधियों से अलग और विपरीत दिखायी देता था। उसका पंजाब के प्रशासनतन्त्र से गहरा सम्पर्क था और वह जानता था कि सरकार कैसे चलती है। तवलीनसिंह का मानना है कि गुरतेज सिंह भिंडराँवाले का एक वैचारिक सलाहकार बन गया था।

स्वर्णमन्दिर में छात्रों की बैठकों में हिन्दू-विरोधी भाषणों, नारों और गीतों के बाद भिंडराँवाले ने इस तबके पर खास ध्यान देना शुरू किया। अपने साथियों में जोश बनाये रखने के लिए उसे दुश्मनों की जरूरत तो थी ही और हिन्दू इसके लिए अच्छे उम्मीदवार थे। जो पत्रकार और लेखक हिन्दू और सिख सम्प्रदायों के नजदीकी रिश्तों को उभार कर सम्बन्धों को बिगड़ने नहीं देना चाहते थे, उनके लेखन का नतीजा उलटा निकला। भिंडराँवाले ने अपने अनुयायियों को बताया कि 'इन विचारों से यही पता चलता है कि वे हमारी कौम और धर्म की जड़ें खोदना चाहते हैं।' इससे पहले भी गायों की लाशों के अंगों को हिन्दू मन्दिरों में रखने की घटनाएँ हुई थीं, मगर सितम्बर,1983 में हिंदुओं के खिलाफ और भी भीषण अपमान का सिलसिला शुरू हुआ। पहली घटना 28 सितम्बर को लुधियाना के एक औद्योगिक नगर जगरांव में हुई, जब भिंडराँवाले के समर्थक युवकों ने हिन्दुओं के एक दल पर, जो कि प्रातःकालीन सैर को निकले थे अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलायीं। एक सप्ताह बाद ही वह हमला हुआ, जिसने श्रीमती गांधी को कार्रवाई के लिए मजबूर किया। 5 अक्तूबर को कपूरथला जिले में कुछ सिखों ने एक बस रोकी और कुछ हिन्दुओं को अलग ले जाकर गोली मार दी। छह हिन्दू मारे गये, एक गम्भीर रूप से घायल हुआ। यह बस भारत के राष्ट्रीय राजमार्ग नम्बर एक, ग्रांड ट्रंक रोड पर अमृतसर से दिल्ली आ रही थी।

अगले दिन श्रीमती गांधी ने दरबारा सिंह सरकार को बरखास्त करके पंजाब में राष्ट्रपति शासन, यानी केन्द्रीय शासन लागू कर दिया। यह एक कठिन फैसला था, क्योंकि इसका मतलब यह था कि श्रीमती गांधी ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि उनकी पार्टी की सरकार पंजाब में शासन चला पाने में असफल रही

है। 1980 में श्रीमती गाँधी इस नारे के साथ वापस सत्ता में लौटी थीं : 'काम करने वाली सरकार को चुनें।' यह साफ था कि उनकी सरकार पंजाब में काम नहीं कर पायी।

मुख्यमंत्री दरबारा सिंह का यह सोचना उचित ही था कि उनके बारे में यह एक अन्यायपूर्ण फैसला है। राष्ट्रपति शासन लागू होने के तुरन्त बाद ही मैं उनसे मिला। वह तब तक पंजाब के मुख्यमंत्री निवास में ही रह रहे थे और अस्वस्थ थे। उनको बोलने में कुछ कठिनाई थी और आधे चेहरे पर पट्टियाँ बँधी थीं। दरबारा सिंह ने औपचारिक बातचीत करने से इनकार किया, मगर उन्होंने साफ कहा कि उनके पतन के लिए केन्द्र सरकार में जैलसिंह का गुट उत्तरदायी है। उनके एक वरिष्ठ सहायक ने यहाँ तक कहा कि राष्ट्रपति जैल सिंह अब भी रोज भिंडराँवाले से सम्पर्क बनाये हुए हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि दरबारा सिंह कार्रवाई करना चाहते थे, मगर केन्द्रीय सरकार ने ही उन्हें स्वर्णमन्दिर की सरायों में पुलिस भेजकर भिंडराँवाले के विरुद्ध कार्रवाई करने से रोका। दरबारा सिंह उन चन्द नेताओं में से थे, जिन्होंने भिंडराँवाले की कड़ी भर्त्सना करने का साहस किया था। मार्च में ही, उपमहानिरीक्षक अटवाल के फन्दे से बचकर आने वाले आतंकवादियों के स्वर्ण मन्दिर में सुरक्षित पहुँचने पर दरबारा सिंह ने पंजाब विधान सभा में बताया कि 'जिस आरोप को पहले भी कई बार दोहराया गया है, वह अब अन्तिम रूप से प्रमाणित हो गया है कि उग्रवादियों को आमतौर पर धार्मिक स्थलों में और खासतौर पर स्वर्णमन्दिर के गुरु नानक निवास में शरण दी जा रही है। यह अब स्पष्ट हो गया है कि जरनैल सिंह भिंडराँवाले इन आतंकवादियों को सक्रिय समर्थन दे रहे हैं।'

दरबारा सिंह ने, जहाँ तक केन्द्रीय सरकार ने अमुमति दी, अपनी बात निभाने का प्रयास किया। उन्होंने पुलिस को आदेश दिया कि जो भी आतंकवादी मिले, उस पर कार्रवाई करो, और इस तरह 'मुठभेड़ों' का एक सिलसिला चल पड़ा, जो कि पुलिस द्वारा जानबूझ कर मारने का ही एक दूसरा नाम है। दरबारा सिंह ने इसे हमारे सामने स्वीकार भी किया था। एक और मौके पर, जब मैं और सतीश जेकब उनसे मिले, मुख्यमंत्री ने कहा, 'मुठभेड़ें हुईं और उन्हें मारा गया।' मैंने अपने वरिष्ठ अफसरों से कहा, 'आप हत्यारों को मारो, मैं सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लूंगा।' मुश्किल यह थी कि पुलिस द्वारा की गयी हत्याओं से भिंडराँवाले के समर्थकों द्वारा प्रतिहिंसा में पुलिस वालों को मार डालने का सिलसिला शुरू हो गया, जिससे पुलिस तंत्र का मनोबल टूट गया। दूसरी समस्या, बेशक यह थी कि दरबारा सिंह की पुलिस को समस्या की असली जड़ को उखाड़ने ही नहीं दिया गया जो कि गुरुनानक निवास में थी।

9

राष्ट्रपति शासन असफल

इस घोषणा के कुछ ही घंटों के भीतर कि अब पंजाब का शासन केन्द्र सरकार चलायेगी, श्रीमती गांधी ने अपनी ताकत प्रदर्शित करने के लिए अमृतसर की सड़कों पर अर्धसैनिक पुलिस दस्तों की गश्त लगवानी शुरू कर दी। उन्होंने एक नया अध्यादेश भी लागू कर दिया, जिसके तहत पंजाब के कुछ हिस्से 'अशांत क्षेत्र' घोषित किये गये और अदालतों से पुलिस को लगभग पूरी स्वतन्त्रता मिल गयी। पुलिस जब जिसे चाहती गोली मार सकती थी और जहाँ चाहती वहाँ तलाशी ले सकती थी। श्रीमती गांधी की सरकार ने यह भी बिलकुल साफ कर दिया कि पुलिस को किसी भी पूजाघर में घुसने का पूरा अधिकार है। पंजाब प्रशासन को चलाने के लिए चार वरिष्ठ सरकारी अधिकारी भेजे गये। श्रीमती गांधी ने एक बहुत अनुभवी सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी श्री भैरवदत्त पांडे को पंजाब का राज्यपाल नियुक्त किया। अपने विशिष्ट सेवाकाल में बी० डी० पांडे ने कई वरिष्ठ पदों पर काम किया था, और कैबिनेट सचिव जैसे ऊँचे ओहदे तक पहुँचे थे। पांडे अपनी कर्मठता और ईमानदारी के लिए प्रख्यात थे। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी कोई राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं थी।

श्रीमती गांधी सारे देश को यह दिखा देना चाहती थीं कि कार्रवाई करने की उनकी इच्छा-शक्ति मरी नहीं है। इससे देश पर तो उनकी धाक जमी, लेकिन भिंडराँवाले पर नहीं। पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू होने के दो दिन बाद ही स्वर्णमन्दिर परिसर के भीतर भिंडराँवाले के अनुयायियों ने एक असिस्टेंट जेल-सुपरिटेन्डेन्ट को पीटा। एक और व्यक्ति को, जो भिंडराँवाले का खुला विरोधी था, औद्योगिक शहर जालन्धर में गोली मार दी गयी। दूसरी जगह एक और आदमी गोली से जख्मी हुआ और चौथी घटना एक हिन्दू की दूकान लूटने की थी। राष्ट्रपति शासन लागू होने के दो सप्ताह बाद कलकत्ता से कश्मीर जाने वाली एक्सप्रेस रेलगाड़ी पंजाब में पटरी से उतार दी गयी, जिसमें 19 लोग मरे और 129 घायल हुए। अगले महीने भी लगातार ऐसी वारदातें करके, जिनकी वजह से ही श्रीमती गांधी को पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा था, भिंडराँवाले उन्हें चुनौती देता रहा। 18 नवम्बर 1983 को एक और बस का अपहरण किया गया और चार हिन्दू मुसाफिरों को क्रूरतापूर्वक मार डाला गया।

इस वक्त तक श्रीमती गाँधी अपने विश्वासपात्र सहयोगी पी०एस० भिंडर को पंजाब पुलिस का प्रमुख नियुक्त कर चुकी थीं। भिंडर की पत्नी कांग्रेस की सांसद थीं। अपने सेवाकाल के लम्बे और विवादास्पद दौर में कभी भी श्रीमती गाँधी के प्रति भिंडर की वफादारी में कोई विचलन नहीं हुआ था—और वफादारी ही वह गुण था जिसको श्रीमती गाँधी सबसे ज्यादा तरजीह देती थीं। फिर भी पंजाब में जिस चीज की जरूरत थी, वह थी योग्यता और स्वतंत्र सोच की। लेकिन दिल्ली पुलिस का इन्चार्ज रहने के दौरान भिंडर ने कभी भी इन गुणों का कोई प्रमाण नहीं दिया था।

राष्ट्रपति शासन लागू होने के कुछ ही दिनों बाद मैंने चंडीगढ़ में भिंडर से मुलाकात की। सरकार को पुनः विश्वसनीयता दिलाने की श्रीमती गाँधी की कोशिशों के अनुसार ही अखबारों को तमाम ऐसी खबरें दी गयीं जिनमें पंजाब के गाँवों और भीतरी इलाकों में पुलिस द्वारा आतंकवादियों की पकड़-धकड़ के लिए छानबीन किये जाने की सूचनाएँ थीं। गिरफ्तारी की खबरें लगभग हर रोज आती थीं। भिंडर ने मुझे बताया कि भिंडराँवाले के दस मरजीवड़ों को पुलिस द्वारा गोली मार दी गयी है और 1600 लोग गिरफ्तार कर लिये गये हैं। मैंने भिंडर से पूछा कि क्या मैं जाकर पुलिस की कार्रवाई देख सकता हूँ? उन्होंने मुझे भिंडराँवाले के गाँव रोडे के आसपास के इलाकों में जाने का सुझाव दिया। लेकिन जब मैं भिंडराँवाले के गाँव पहुँचा तो वहाँ उसके भाई ने मुझे बताया कि अभी तक तो यहाँ किसी भी आदमी ने पुलिस को नहीं देखा है। आसपास के गाँवों में भी मुझे बताया गया कि जिन लोगों को गिरफ्तार किया गया है उनमें से अधिकांश 'दसनम्बरी' हैं, यानी छोटे-मोटे चोर-उचक्के या अफीम की तस्करी करने वाले। ऐसे लोगों को तो जब भी पुलिस कोई तफ्तीश शुरू करती है, पूछताछ के लिए अकसर ही पकड़ लिया जाता है। यही स्पष्ट हुआ कि भिंडर की छानबीन उतनी असरदार थी नहीं, जैसा उसने पत्रकारों को बता रखा था। पंजाब सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी ने भी यही बात मुझसे स्वीकार की। उसने कहा, 'हमें कुछ करते हुए दिखायी पड़ना चाहिए। लेकिन दिक्कत यह है कि पंजाब पुलिस का मनोबल चौपट हो चुका है। उनके इतने सारे लोग भिंडराँवाले के लोगों द्वारा मारे जा चुके हैं कि उनकी रक्षा कर पाने की हमारी क्षमता पर से ही उनका भरोसा उठ चुका है।' जब मैंने उससे अर्धसैनिक पुलिस दस्तों के बारे में पूछा, जिन्हें पंजाब इसलिए लाया गया था कि वे पंजाब पुलिस की रीढ़ बन सकें तो उसने जवाब दिया, 'भला अर्ध-सैनिक पुलिस बल अपने आप क्या कर सकते हैं? वे इस राज्य को अच्छी तरह जानते नहीं और इसके लिए उन्हें पंजाब पुलिस पर ही निर्भर रहना पड़ता है।' यह पहला मौका था जब मुझे पुलिस बल के भीतर की टकराहट का पता चला, जिसके आगे चलकर बड़े भीषण नतीजे हुए। अर्धसैनिक पुलिस को कभी यह विश्वास

नही हुआ कि पंजाब पुलिस वास्तव में आतंकवाद का गंभीरता से सफाया करना चाहती है। दरअसल बहुत-से अर्धसैनिक पुलिस अधिकारियों को यह यकीन था कि पंजाब पुलिस भिंडरांवाले के साथ है। आने वाले महीनों में इसके लगातार प्रमाण मिलने लगे कि उनका ऐसा सोचना बिलकुल ठीक था।

बाद में भिंडर ने भी मुझे बताया कि उनकी पुलिस का मनोबल भिंडरांवाले के साथियों द्वारा पुलिस सिपाहियों की लगातार हत्याओं के कारण गिर चुका है, खासतौर पर उन लोगों का जो दरबारा सिंह के 'मुठभेड़ अभियान' में शामिल थे। फिर भी उन्होंने कहा कि वह आत्मविश्वास को वापस लौटाने के लिए आवश्यक कदम उठा रहा है। ये कदम इतने प्रभावहीन थे कि राष्ट्रपति शासन के दो महीनों के भीतर खुद श्रीमती गांधी के सांसदों ने पंजाब में सरकार की घुटने टेकने वाली नीति की शिकायत करनी शुरू कर दी। संसद में एक बहस के दौरान दोनों पक्षों के सदस्यों ने भिंडरांवाले की गिरफ्तारी की मांग की। गृहमंत्री ने इसकी पुष्टि तो की कि पुलिस ने भिंडरांवाले के खिलाफ कई जुर्म कायम किये हैं, लेकिन उन्होंने उसकी गिरफ्तारी का कोई आश्वासन नही दिया।

एक बार फिर भिंडरांवाले को अपनी गिरफ्तारी की इस धमकी के जवाब में शरण लेने की ही सूझी। उसने तोहड़ा से कहा कि संसद में हुई बहस के बाद अब सरकार राजनीतिक दबावों के सामने सराय परिसर में घुस कर उनको गिरफ्तार करने के लिए विवश हो जायेगी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष तोहड़ा को यह समझाने में वह सफल हो गया कि ऐसी सूरत में उसके लिए एक ही सुरक्षित जगह बचती है और वह है, अकाल तख्त। ईश्वर की लौकिक सत्ता का प्रतीक यह देवस्थल स्वर्णमंदिर परिसर के भीतर ही स्थित है। तोहड़ा किसी सूरत में भिंडरांवाले की गिरफ्तारी नही चाहते थे, इसलिए वे इसके लिए तैयार हो गये कि भिंडरांवाले अकाल तख्त में ही अपना मुख्यालय बना ले। लेकिन स्वर्णमंदिर के मुख्य ग्रन्थी ज्ञानी किरपाल सिंह ने इस पर आपत्ति की। उन्होंने कहा कि न तो अब तक किसी सिख गुरु और न ही अन्य किसी धार्मिक नेता को इसकी इजाजत दी गयी है कि वह अकाल तख्त में रहे। मुख्य ग्रंथी ने यह भी कहा कि ऐसा करते हुए भिंडरांवाले एक नापाक काम करेगा, क्योंकि वह गुरुग्रन्थ साहब के भी ऊपर रहेगा। किसी भी सिख को गुरु ग्रन्थ साहब के ऊपर रहने की इजाजत नही है। अकाल तख्त के मुख्य कक्ष में सारे दिन ग्रंथी गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ करते हैं और रात में यह पवित्र ग्रन्थ जिसका पाठ स्वर्णमन्दिर में होता है, अकाल तख्त में एक जगह रखा जाता है, जिसके ऊपर वाले हिस्से में भिंडरांवाले रहना चाहता था। भिंडरांवाले का दबाव ऐसा था कि वह ऐसे धार्मिक सद्विचारों को अपने रास्ते में आने ही नही देना चाहता था। बहरहाल, सराय परिसर में गृहयुद्ध छेड़ कर यह मामला मुख्य ग्रन्थी के हाथ से निकाल लिया गया।

लोंगोवाल ने, जो अभी तक सराय परिसर की ही एक दूसरी इमारत में रह रहे थे, यह तय किया कि भिंडराँवाले से अपनी हिफाजत के लिए उन्हें एक निजी सेना की जरूरत आ पड़ी है। निरंकारियों के विरुद्ध चले सिख आन्दोलन के दौरान पनपे कई गुटों में से एक गुट 'वब्बर खालसा' के लोगों को उन्होंने इसके लिए बुलाया। वे अपने कारनामों में उतने ही हिंसक थे, जितने भिंडराँवाले के अनुयायी। उन्होंने अपना नामकरण 'वब्बर अकाली' के आधार पर किया था। यह आतंकवादी सिखों का एक ऐसा संगठन था, जिसने 1920 के गुरुद्वारा सुधार आन्दोलन के समय अकाली दल के अहिंसक आन्दोलन की नीतियों का विरोध किया था और जिसने अनेक पुलिस मुखबिरों और उन लोगों की हत्या की थी जिन्हें वे अंग्रेजों के 'भाड़े के टट्टू' या 'दलाल' कहा करते थे। 'वब्बर अकाली' के कई सदस्यों को ब्रिटिश सरकार ने फाँसी दी थी या लंबी कैद की सजा दी थी। इस नये वब्बर खालसा का नेता था जत्थेदार सुखदेव सिंह। उसने दावा किया कि उसके संगठन ने पैंतालीस निरंकारियों की हत्या की है। फिर भी सुखदेव सिंह हिन्दुओं की हत्या के खिलाफ था और भिंडराँवाले ने पंजाब में जो हिंसा का दौर-दौरा शुरू किया था, उसका भी वह विरोधी था। वह अकसर भिंडराँवाले को 'कायर' कहा करता था। सुखदेव सिंह लोंगोवाल की सुरक्षा करने के लिए हमेशा सराय परिसर के भीतर ही रहा, लेकिन स्वर्णमन्दिर में सैनिक कार्रवाई के वाद इंग्लैंड भागने में सफल हो गया।

उन दिनों, जब तोहड़ा भिंडराँवाले को अकाल तखत में प्रवेश दिलाने के लिए मुख्यग्रंथियों से समझौते की कोशिशों में लगे हुए थे, वब्बर खालसा ने अपने दुश्मन को खुली चुनौती देने का फैसला किया। वे गुरुनानक निवास पहुँचे, जहाँ भिंडराँवाले का अड्डा था और उन्होंने उसके साथियों से वाहर निकलने के लिए कहा। भिंडराँवाले के समर्थकों के अनुसार, वे लोग लड़ाई को टालने के लिए खुद अपनी इच्छा से ही वाहर निकले, लेकिन वब्बर खालसा के अनुसार, 'वे भाग खड़े हुए।' भिंडराँवाले अब अकाल तखत के अलावा और जा कहाँ सकता था? टोहड़ा ने यही तर्क दिया, जिसे आखिरकार स्वीकार कर लिया गया। भिंडराँवाले ने दावा किया कि उसे अकाल तखत में इसलिए शरण लेनी पड़ी कि 'मोर्चा डिक्टेटर' लोंगोवाल उसकी गिरफ्तारी के लिए सरकार से वातचीत चला रहे थे।

जिस दिन से भिंडराँवाले ने अकाल तखत में अपना मुख्यालय वनाया उसी दिन से भिंडराँवाले और लोंगोवाल के वीच खुली लड़ाई शुरू हो गयी। दुर्भाग्य से लोंगो-वाल में इतना साहस या विवेक नहीं था कि सरकार का सहयोग लें। लेकिन यह अकेले उन्हीं की गलती नहीं थी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवन्धक समिति के अध्यक्ष होने के नाते तोहड़ा ही तकनीकी तौर पर स्वर्णमंदिर परिसर के वास्तविक उत्तरदायी थे। उन्होंने लोंगोवाल को अपना समर्थन देने से इनकार कर दिया। इसका अर्थ यह था कि वे भिंडराँवाले के खिलाफ

अकाली दल का समर्थन नहीं दिला सके। तोहड़ा की आँख अभी भी पंजाब के मुख्य मंत्री पद पर लगी हुई थी, जो कि उनके लिए अकाली मोर्चे की आखिरी मंजिल थी।

तीसरी मंजिल पर स्थित कमरे तक जाने के लिए, जहाँ भिंडरांवाले ने अपना मुख्यालय बनाया था, दीवार के भीतर बनी सिर्फ एक सँकरी सीढ़ी थी। दिन-रात हथियारबन्द सिख इसकी पहरेदारी करते रहते थे। भिंडरांवाले के कमरे में अँधेरा रहता था और उसकी छत बहुत नीची थी। भिंडरांवाले एक दरी पर एक कोने में, अपनी टाँगें फैलाये बैठा रहा करता था और उसके चारों ओर उसके अनुयायी होते थे। दिन में वह उस इमारत की छत पर आ जाता था, जिसके नीचे स्वर्णमन्दिर का 'लंगर' था, जहाँ हर रोज मन्दिर आने वाले सिखों या गैर-सिखों को मुफ्त में दोपहर का भोजन दिया जाता था। भोजन देने में कोई भी भेद-भाव नहीं किया जाता था और यह गुरुओं के उसी उपदेश की परंपरा में था कि सभी इन्सान बराबर हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उनकी जाति या उनका धर्म क्या है।

भिंडरांवाले अपनी कचहरी लंगर की छत पर ही लगाया करता था। वह यहाँ अपने सशस्त्र समर्थकों से घिरा रहता था, जो आराम से टहलकदमी करते रहते थे। शायद वे लोग पेशेवर थे या फिर उन्हें इसका अंदेशा ही नहीं था कि कभी भिंडरांवाले पर कोई हमला हो सकता है, हालांकि लंगर के आसपास की कई इमारतों में से किसी भी इमारत की छत पर से किसी निशानेबाज के लिए भिंडरांवाले एक आसान निशाना हो सकता था। सुबह अपने 'दरबार' या संगत में भिंडरांवाले भारत और हिन्दुओं के खिलाफ नफरत भड़काने वाले प्रवचन दिया करता था। इस समय तक उसका घृणा का सिद्धान्त उसके समर्थकों द्वारा बाँटे गये कैसेट टेपों की वजह से पंजाब के गाँव-गाँव तक फैलने लगा था। ये टेप स्वर्णमन्दिर परिसर की दूकानों में भी खुले आम बेचे जाते थे। पुलिस ने इनकी बिक्री रुकवाने की कभी कोई कोशिश नहीं की।

भिंडरांवाले के प्रवचनों का एक टेप, जिसे खूब ज्यादा वितरित किया गया था, पुलिस के खिलाफ इस आरोप से शुरू होता था : 'पुलिस ने धारा सिंह के बेटे जगदीप सिंह को पकड़ लिया, उसकी जाँघ पर एक घाव किया और फिर उसमें नमक भर दिया।'

इसके बाद भिंडरांवाले घूम-फिरकर फिर अपनी पुरानी लीक पर आ गया यानी सिखों की गुलामी वाली बात : 'मैं आपको बताता हूँ कि अपने मुल्क में ही सिख कैसे गुलाम बना डाले गये हैं। अगर कोई हिन्दू मर जाये तो जाँच होगी, अगर सिख मरे तो कोई जाँच नहीं होगी। अगर हिन्दू मर जाये तो उसका शव उसके घर-परिवार वालों को सौंप दिया जायेगा। अगर सिख मर जाये तो उसकी लाश उसके लोगों को नहीं दी जायेगी। अगर हिन्दू मारा जाये तो इस अपराध को

माफ नहीं किया जायेगा, लेकिन अगर सिख की हत्या हो जाये, तो जाँच में अडंगे लगेंगे।'

भिंढराँवाले का इशारा उस रोष की तरफ था, जो वस के हिन्दू मुसाफिरों की हत्या पर व्यक्त किया जा रहा था।

भिंडराँवाले ने प्रवचन में वड़ी कड़वाहट के साथ 'ब्राह्मण की वेटी' कहते हुए श्रीमती गाँधी की भर्त्सना की थी। उसने प्रधानमंत्री के दोहरे रवैये का हवाला दिया था। जनता सरकार के समय जव श्रीमती गाँधी की गिफ्तारी के वाद हवाई जहाज का अपहरण किया गया था और दूसरी वार भिंडराँवाले की गिरफ्तारी के वाद जव सिखों ने हवाई ज़हाज का अपहरण किया तव श्रीमती गाँधी के रवैयों में कितना फर्क था ?

उसने कहा, 'अगर हवाई जहाज का अपहरण एक 'ब्राह्मण लड़की' के लिए किया जा सकता है तो सिखों की भावनाओं, सिखों के प्रतीकों, सिखों की दाढ़ी और हरमिन्दर साहव के लिए अपहरण क्यों नहीं किया जा सकता ?'

आश्चर्य नहीं कि इस धार्मिक प्रवचन में वार-वार दाढ़ी का जिक्र था, क्योंकि दाढ़ी भिंडराँवाले की धार्मिक आस्था का सवसे प्रिय प्रतीक थी।

भिंडराँवाले ने संगत में आये हुए तमाम लोगों से कहा कि अगर वे आनन्दपुर साहव प्रस्ताव का पूरा अमल चाहते हों तो हाथ उठायें। जव संगत में आये सारे लोगों ने अपने हाथ ऊपर उठा दिये तो भिंडराँवाले वोला, 'तुम लोगों को और कुछ कहने की जरूरत नहीं है। मैं सिर्फ तुम्हारे हाथ उठा देने से ही सन्तुष्ट हूँ।'

इसके वाद उसने सारे नौजवान सिखों को आनन्दपुर साहव जाकर, जहाँ पर दसवें गुरु ने खालसा पन्थ की स्थापना की थी, इस प्रस्ताव को लागू करवाने के लिए शपथ लेने को प्रेरित किया। ऐसा करते हुए भिंडराँवाले दरअसल सन्त लोंगोवाल के पैर के नीचे की जमीन को खोखली कर डालना चाहता था, क्योंकि सन्त लोंगोवाल सरकार के साथ किसी-न-किसी समझौते के पक्ष में थे और जाहिर है कि कोई भी वास्तविक समझौता आनन्दपुर साहव प्रस्ताव की माँगों में कुछ पीछे हटकर ही होता।

भिंडराँवाले ने संगत से अपील की कि वे अखवारों द्वारा सिख मोर्चे के खिलाफ और खासतौर से उसके अपने खिलाफ चलाये जा रहे दुष्प्रचार से गुमराह न हों। उसने कहा, 'मैं आपसे कहता हूँ कि आप लोग मेरी टकसाल को वदनाम करने की कोशिशों से सावधान रहें। वे (अखवार) पूरी सिख विरादरी को मेरे खिलाफ कर डालने पर तुले हुए हैं।'

भिंडराँवाले ने सरकार पर भी अपने खिलाफ दुष्प्रचार करने का आरोप लगाया। उसने कहा, 'सरकार मुझे कांग्रेस पार्टी का एजेंट यानी सिख विरादरी का एक गद्दार सावित करने में लगी हुई है, जिससे कि पंथ आपस में वँट जाये और

मोर्चा कमजोर पड़ जाये और जिसकी वजह से सरकार की कुर्सी महफूज बनी रहे।' 'कुर्सी' भारत में राजनीतिक शक्ति के लिए इस्तेमाल होने वाला एक आम शब्द है।

भिंडराँवाले ने अपने इस प्रवचन का अन्त यह कहते हुए किया, 'उनके दुष्प्रचार से सावधान रहो। वे हमें कुत्ते-बिल्लियों की तरह आपस में लड़ाना चाहते हैं। खबरदार !'

उसका यह वक्तव्य सिखों के बीच अपने उन शत्रुओं की ओर इशारा था जो लगातार भिंडराँवाले की साख गिराने के लिए पूरी बिरादरी को बतला रहे थे कि बुनियादी रूप से भिंडराँवाले को बनाने वाली कॉंग्रेस पार्टी ही है।

भिंडराँवाले ने राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को ठुकराकर सन्त लोंगोवाल और दूसरे अकाली राजनीतिक नेताओं से खुद को अलग दिखलाने की कोशिश की :

> मैंने अकाल तख्त में कसम ली है और आपके कहने पर मैं दुबारा यह कसम लेता हूँ कि मैं कभी अकाली दल का अध्यक्ष या शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी का अध्यक्ष या कोई मंत्री या एम० एल० ए० नहीं बनूँगा। मैं कसम लेता हूँ कि अगर मैं झूठ बोलूँ तो मैं संगत द्वारा दी जाने वाली बड़ी-से-बड़ी सजा भोगने के लिए तैयार हूँ। मैं सिर्फ सिख पन्थ के उद्देश्यों और इस धर्म की मुख्य भावनाओं के प्रसार के लिए जिम्मेदार हूँ। मेरी जिम्मेदारी यह है कि आपकी दाढ़ी सही-सलामत रहे, आपके बाल न कटने पायें और आप जिन्दगी की बुराइयों, जैसे शराब और नशीली गोलियों की तरफ न भागें।

बहुत सारे राजनीतिक व्यक्तियों के द्वारा निजी फायदों और स्वार्थों के लिए अपने अधिकारों के दुरुपयोग को लेकर ऊबे हुए भारतीयों के मन में किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए सम्मान पैदा हो जाता है, जो अपनी सारी महत्वाकांक्षाओं को त्याग दे। महात्मा गाँधी ने ऐसा किया था और ऐसा ही आपातकाल के पहले आन्दोलन छेड़ने वाले जयप्रकाश नारायण ने भी किया था।

इसके बाद भिंडराँवाले ने फिर आनन्दपुर साहब प्रस्ताव की चर्चा छेड़ी। उसने उपस्थित लोगों को याद दिलायी कि लोंगोवाल ने भी यह कसम उठायी है कि वे इस प्रस्ताव में उठाये गये सारे मुद्दों के पूरे अमल से कम पर कोई समझौता नहीं करेंगे। उसने आग्रह किया, 'अगर हमारे किसी नेता ने आनन्दपुर साहब की सभी माँगों से कम पर कोई चीज मंजूर की तो मैं उसे संगत के सामने नंगा करके रख दूंगा।'

भिंडराँवाले ने गाँव-देहात में रहने वाले सिखों से अपील की कि वे संगठित हो और आतंकवाद का समर्थन करें। उसने कहा, 'हर गाँव में आप लोगों को एक

मोटरसाइकिल, तीन खालसा नौजवान और तीन पिस्तौलें रखनी चाहिए। ये सारी चीजें किसी निर्दोष आदमी को मारने के लिए नहीं हैं। किसी भी सिख के लिए हथियार रखना और निर्दोष आदमी को मारना बहुत बड़ा पाप है । लेकिन खालसाजी, हथियार रखना और तब भी अपने हक को हासिल न करना और भी बड़ा पाप है। यह फैसला आपको करना है कि आप इन हथियारों का इस्तेमाल कैसे करेंगे ? अगर आपको अपनी गुलामी की जंजीरें तोड़ डालनी हैं तो आपको कोई-न-कोई योजना बनानी ही पड़ेगी।'

भिडराँवाले ने यह भी अपील की, 'एक बार फिर मैं आपके पैर पड़ता हूँ कि अगर आप आज तक आनन्दपुर साहब नहीं गये हैं, अगर आपने सिख धर्म के पाँचों 'ककार' धारण नहीं किये हैं, अगर आपके पास रायफल और बर्छा नहीं है तो आपने अपनी जिन्दगी को हिन्दुओं के अत्याचार सहने के लिए सौंप दिया है।'

इस संगत का समापन इस नारे के साथ हुआ, 'वाहे गुरुजी का खालसा, वाहे गुरुजी की फतेह।'

भिडराँवाले द्वारा हिंसा और आतंक के इस खुल्लमखुल्ला समर्थन का आखिरकार सन्त लोंगोवाल ने विरोध किया जोकि शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक समझे जा रहे आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। उन्होंने प्रेस के लिए एक बयान जारी किया, जिसमें उन्होंने भिडराँवाले द्वारा मोटरसाइकिल-सवारों से हथियारबन्द होने की अपील की आलोचना की थी। लेकिन दूसरे ही दिन देश की एक प्रमुख राष्ट्रीय समाचार एजेंसी ने लोंगोवाल के इस वक्तव्य का खंडन प्रसारित कर दिया। स्थिति को ठीक-ठीक जानने के लिए मैंने अमृतसर में रह रहे पत्रकार संजीव गौड़ से कहा कि वे 'मोर्चा डिक्टेटर' सन्त लोंगोवाल से जाकर पूछें कि आखिर उन्होंने कहा क्या था ? थोड़ी देर तक टालमटोल करने के बाद आखिरकार लोंगोवाल ने स्वीकार किया कि उन्होंने भिडराँवाले द्वारा सिखों का आतंकवाद के समर्थन के लिए उकसाने की आलोचना की थी। अकाली दल के खेमे में रह रहे भिडराँवाले के एक जासूस ने संजीव गौड़ के साथ हुई लोंगोवाल की इस बातचीत की सूचना भिडराँवाले तक पहुँचा दी। नतीजा यह हुआ कि जब संजीव गौड़ मन्दिर परिसर से बाहर निकल रहे थे तो उन्हें छुरा मारकर गम्भीर रूप से जख्मी कर दिया गया। उसके बाद लोंगोवाल ने कभी भिडराँवाले की सार्वजनिक आलोचना नहीं की।

अपने अधिकारों का इस्तेमाल करने में लोंगोवाल की हिचकिचाहट का एक दूसरा उदाहरण जनवरी, 1984 के भारतीय गणतंत्र दिवस के मौके पर देखने को मिला। उस दिन स्वर्णमन्दिर परिसर की ही एक इमारत के ऊपर खालिस्तान का झंडा लगाया गया था। लोंगोवाल अन्त तक हमेशा यह कहते रहे कि उन का मोर्चा कोई अलगाववादी आन्दोलन नहीं है और आनन्दपुर साहब प्रस्ताव भी कोई

अलगाववादी माँग नहीं है। लेकिन उन्होंने उस खालिस्तानी झंडे के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया।

हकीकत यह है कि जिस दिन खालिस्तान का झंडा वहाँ फहराया गया था उसी दिन अकाली दल के नेतृत्व ने एक नयी माँग पेश की। उन्होंने सरकार से कहा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 में, जिसके तहत हिन्दुओं और सिखों को एक ही समुदाय का माना गया है, संशोधन किया जाना चाहिए। संविधान की इस धारा में धर्म की स्वतंत्रता दी गयी थी। जिस जाति-पाँति की वजह से हिन्दू मन्दिरों में अछूतों को घुसने नहीं दिया जाता था, उसे दूर करने के लिए इस अनुच्छेद में कहा गया था कि सभी सार्वजनिक हिन्दू धार्मिक संस्थाओं के दरवाजे हिन्दुओं के सभी वर्गों और जातियों के लिए खुले रहने चाहिए। इस अनुच्छेद में स्पष्ट किया गया था कि हिन्दुओं में 'सिख, जैन और बौद्ध धर्मों को मानने वाले लोगों' को भी शामिल माना जायेगा। संविधान के जानकारों में इस व्याख्या के नतीजों को लेकर मतभेद है। लेकिन अकाली दल के नेताओं ने इसे एक भावनात्मक मसला बना डाला था और जाहिर है कि ऐसा रूढ़िवादी सिखों के उस डर की वजह से हुआ था जिसके कारण उन्हें लगता था कि उनके धर्म का हश्र भी बौद्ध और जैन धर्म जैसा होगा, यानी एक-न-एक दिन हिन्दू धर्म उसे पूरी तरह निगल जायेगा।

फिर भी यह माँग न तो अकालियों की मूल सूची में शामिल थी और न ही विवादास्पद आनन्दपुर साहब प्रस्ताव में इसका जिक्र है। इस स्थिति से श्रीमती गाँधी को और ताकत मिली। प्रधानमंत्री ने हमेशा यह तर्क दिया था कि दरअसल अकालियों के साथ हुए पिछले समझौते से पीछे हटने वाली वे नहीं हैं, बल्कि सिख नेता ही बार-बार अपना दिमाग बदल देते हैं। एम०जे० अकबर ने अपनी किताब 'इंडिया : दि सीज विदइन' में लिखा है कि यह नयी माँग और कुछ नहीं, दरअसल अकाली दल के नेताओं द्वारा अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए की गयी एक हताशा-भरी कार्रवाई थी, जिसके जरिये वे आन्दोलन का नियंत्रण भिंडरांवाले के हाथ से छीनकर अपने हाथ में लेना चाहते थे। अकबर का कहना है : 'नरमपंथी अकाली यही चाहते थे कि वे दिल्ली से जीत जायें जिससे वे आतंकवादियों के हाथ से नेतृत्व छीन कर 'सिखों के असली नेता' के रूप में अपनी साख फिर से जमा सकें।' उन्होंने आगे लिखा है : 'दिल्ली की कोई अधो-से-अधो सरकार भी यह देख सकती थी और रास्ता सुझा सकती थी।'

पंजाब के भूतपूर्व वित्तमंत्री और अकाली दल के सबसे उदारवादी नेताओं में से एक बलवंत सिंह उस बैठक में मौजूद थे, जिसमें इस नयी माँग को पेश करने का फैसला लिया गया। बलवंत सिंह ने कुछ अन्य लोगों के साथ इस माँग का इस आधार पर विरोध किया कि इससे श्रीमती गाँधी के हाथ और मजबूत होंगे और

उन्हें इसका एक और प्रमाण मिल जायेगा कि दरअसल अकाली खुद ही नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं। लेकिन वलवंत सिंह की वात दवा दी गयी, क्योंकि अधिकांश अकाली नेता यह महसूस करते थे कि भिंडराँवाले के हाथ से आन्दोलन का नियंत्रण छीनने के लिए ही नहीं, वल्कि यह भी सावित करने के लिए कि अकाली दल अभी भी उससे पीछे नहीं है, इस नये मुद्दे की जरूरत है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो यह कि अकाली नेता उग्रवाद को खत्म नहीं करना चाहते थे, वल्कि उस की वरावरी करना चाहते थे।

वाद में जो घटनाएँ हुईं उनसे यह तथ्य पुष्ट ही हुआ। अकाली दल के नेताओं द्वारा संविधान की प्रतियाँ जलाने की घोषणा पर सरकार ने गैर-समझदार प्रतिक्रिया दिखायी। सरकार ने धमकी दी कि ऐसा करने पर उन पर राष्ट्रद्रोह का जुर्म कायम किया जायेगा। वादल और दूसरे अकाली नेता इसके वावजूद खुशी-खुशी संविधान की प्रतियाँ जलाकर अपना विरोध प्रदर्शन करने गये और उन्हें जेल भेज दिया गया। जाहिर है जेल ही वह जगह थी जहाँ ये लोग दरअसल जाना चाहते थे। सिखों को यह जताने के लिए कि अपनी माँगों में अकाली नेता भी उतने ही उग्रवादी हैं जितना स्वर्णमन्दिर में अभी भी आजाद रहने वाला भिंडराँवाले, इससे वढ़िया दूसरा रास्ता क्या हो सकता था? उन्होंने संघर्ष का ताप झेलने का सारा भार अकेले लोंगोवाल पर छोड़ दिया।

जेल जाने के पहले अकाली नेताओं ने अपनी वुनियादी माँगों के लिए फिर से आन्दोलन चलाने का फैसला किया जिससे वे भिंडराँवाले से होड़ ले सकें। 8 फरवरी को उन्होंने पंजाव वन्द का आह्वान किया। पिछली वार 'रास्ता रोको आन्दोलन' के दौरान हुई हिंसा के अनुभवों के आधार पर सरकार ने इस वार कम नुकसान उठाने का फैसला किया और पंजाव जाने वाली सभी रेलगाड़ियों और हवाई जहाजों को रद्द कर दिया। लेकिन अपनी तलवार भाँजते हुए सिख कई जगहों पर सरकारी दफ्तरों में पहुँचे और उन्होंने उन्हें वन्द करने के लिए दवाव डाला। पंजाव पुलिस चुपचाप खड़ी देखती रही कि हिन्दू व्यापारियों की दूकानें सिख वन्द करवा रहे हैं। सिखों की इस चुनौती के सामने सरकार के चुप रहने के कारण पूरा दिन अपेक्षाकृत शान्तिपूर्वक गुजर गया। सिर्फ एक वम विस्फोट हुआ जिसमें 10 लोग घायल हुए। लेकिन आगे चलकर इस हड़ताल के खासे गम्भीर परिणाम हुए। इस हड़ताल ने हिन्दुओं को, और खास तौर पर हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल को इसी महीने शुरू होने वाली वातचीत को असफल करने का एक वहाना मुहैया कर दिया। भजनलाल चाहते थे कि अकालियों के साथ सरकार की वातचीत में फिर से गड़वड़ी हो, क्योंकि उन्हें डर था कि अकालियों के साथ सरकार के किसी समझौते का अर्थ हरियाणा के हिन्दुओं के हितों को वेच डालना माना जायेगा।

पिछली बातचीत के करीब एक साल बाद यह बातचीत 14 फरवरी को शुरू हुई। एक बार फिर श्रीमती गाँधी ने सारे विपक्षी नेताओं को बुलाया। उसी दिन हिन्दू सुरक्षा समिति नामक संगठन ने पंजाब बन्द का आह्वान किया। इसके नेता थे पवन कुमार, जिनका पहले कुछ अपराधों में शामिल होने का रिकार्ड था। पवन कुमार को राजनीति में लाने का श्रेय इन्दिरा कांग्रेस के एक सिख संसद-सदस्य को जाता है। हरियाणा के मुख्यमंत्री के साथ भी पवन कुमार का नजदीकी रिश्ता था। इस हड़ताल में 14 व्यक्ति मारे गये और इसके बारे में 'टाइम्स आफ इंडिया' ने लिखा कि '1947 के विभाजन के बाद पंजाब में होने वाला यह गुटों की आपसी लड़ाइयों और दंगों का सबसे बुरा दौर था।' दूसरे दिन अकाली दल के नेताओं ने बातचीत का यह कहते हुए बहिष्कार कर दिया कि वे तभी इसमें दुबारा शामिल होंगे जब पंजाब में शान्ति लौट आयेगी। उनको अच्छी तरह से पता था कि अगर उन्होंने इस हिंसापूर्ण हड़ताल के बाद भी बातचीत जारी रखी तो भिंडरांवाले उनकी साख को गिराने के लिए एक अच्छा बहाना पा जायेगा। इस हड़ताल के बाद भिंडरांवाले ने कहना शुरू कर दिया था कि सिखों की गुलामी का यह एक और सबूत है।

इस पंजाब-बन्द के बाद हरियाणा में पहला संगीन सिख-विरोधी दंगा भड़का। इस दंगे को भड़काने में फरीदाबाद के औद्योगिक शहर में भजनलाल के उस भाषण की भूमिका थी जिसमें उन्होंने कहा था कि हिन्दुओं की सहनशीलता अब आखिरी हद तक पहुँच चुकी है और उनकी जवाबी कार्रवाई का वक्त आ पहुँचा है। सतीश जेकब ने देखा कि पानीपत में हिन्दुओं की भीड़ गुरुद्वारे को जला रही थी और पुलिस चुपचाप देख रही थी। उन्होंने यह भी देखा कि बसों से सिख मुसाफिर पकड़-पकड़ कर बाहर खींचे जा रहे थे और उनकी जबरन हजामत करवायी जा रही थी। सिखों की दुकानें लूटी जा रही थीं। 8 सिखों को काट डाला गया। हालत इतनी खराब हो गयी कि पुलिस को ग्रांड ट्रंक रोड का सारा यातायात रोक देना पड़ा।

बहुत-से राष्ट्रीय समाचारपत्रों को लगा कि यह वही हिन्दू प्रतिक्रिया है जिसकी बहुत दिनों से आशंका थी। सरकार-समर्थक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का सम्पादकीय था: 'सब्र का प्याला छलक गया है।' सम्पादकीय में कहा गया, 'पंजाब और हरियाणा में इस अभूतपूर्व पैमाने पर हिंसा के भड़क उठने से इस चीज का पता चलता है कि अकाली संकट कितने दर्दनाक दौर में प्रवेश कर चुका है। आन्दोलन के नतीजे अब किसी एक राज्य और किसी एक समुदाय के दायरे तक सीमित नहीं रह गये हैं।' चंडीगढ़ से प्रकाशित होने वाले 'ट्रिब्यून' ने लिखा, 'इस बात में सच्चाई है कि हरियाणा में हुई हिंसा पंजाब में उग्रवादियों द्वारा किये गये हिंसात्मक कारनामों की जवाबी कार्रवाई है।' लेकिन यह जवाबी

हिंसा जिस तरह अचानक शुरू हुई थी उसी तरह अचानक खत्म भी हो गयी और उस दिन के वाद से इस जवावी हिंसा का कोई संकेत दिखायी नहीं पड़ा। इससे पता चलता है कि यह उतनी स्वतः स्फूर्त नहीं थी जितनी कि पहले दिखायी पड़ी थी। भजनलाल ने अपनी ताकत दिखला दी थी और फिर इसके वाद हरियाणा को कभी नजरन्दाज नहीं किया गया।

आखिर श्रीमती गाँधी ने पंजाव समस्या, जिसकी वजह से उनकी सरकार की प्रतिष्ठा को गम्भीर क्षति पहुँच रही थी, के समाधान की कीमत पर हरियाणा के मुख्यमंत्री को यह सव क्यों करने दिया? इस बारे में कई तरह की वातें कही जाती रही हैं। सवसे ज्यादा तीखा नजरिया यह है कि श्रीमती गाँधी ने इस-लिए हस्तक्षेप नहीं किया कि वह खुद हिन्दू वोट वटोरने के फेर में थीं। दूसरा यह कि श्रीमती गाँधी पंजाव समस्या का फौजी समाधान निकालने का फैसला कर चुकी थीं, इसलिए उनका खयाल था कि हालत को इस हद तक बिगड़ने दिया जाये जिससे वे सैनिक कार्रवाई को न्यायसंगत करार दें। निश्चित ही यह सच है कि जिस समय हिन्दुओं द्वारा यह जवावी हिंसा हुई, उस समय स्वर्णमन्दिर में पुलिस या सेना के घुसने की चर्चा फिर से होने लगी थी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवन्धक समिति के अध्यक्ष तोहड़ा ने कहा कि उन्हें खवर मिली है कि कई कमांडो, जिन्हें मन्दिर में घुसने का प्रशिक्षण दिया जा चुका है, अमृतसर पहुँच चुके हैं। लोंगोवाल ने मन्दिर में घुसने की किसी भी कोशिश के खिलाफ सरकार को चेता-वनी दी। पंजाव समझौते में पूरी तरह से शामिल राजीव गाँधी ने मुझे एक इंटरव्यू में वतलाया था कि पंजाव के बारे में सरकार की नीतियों से वे सहमत नहीं हैं। उन्होंने संकेत दिया कि वे मन्दिर में पुलिस को भेजने के पक्ष में हैं।

सार्वजनिक रूप से सरकार अव भी कह रही थी कि वह स्वर्णमन्दिर में पुलिस नहीं भेजगी, लेकिन अमृतसर के अर्धसैनिक पुलिस दस्ते के अधिकारियों ने सतीश जेकव को वतलाया कि इस उद्देश्य के लिए कुछ कमांडो को ट्रेनिंग दी जा रही है। उन्होंने वताया कि हिमालय की तराई में, चकराता स्थित विशेष सीमान्त वल के कैम्प में स्वर्णमन्दिर परिसर का एक वहुत वड़ा मॉडल तैयार किया गया है। सरकार सैनिक कार्रवाई के लिए तैयारियाँ शुरू कर चुकी थी, लेकिन इसका यह मतलव नहीं कि वातचीत और समझौतों को पूरी तरह से छोड़ दिया गया था। सच यह है कि इस सारी घटना के खौफनाक अन्त के पहले तक सरकार वातचीत चलाती रही।

सैनिक कार्रवाई करने के लिए सरकार के मजवूर हो जाने का एक कारण यह था कि पंजाव में पुलिस-तंत्र छिन्न-भिन्न हो चुका था। राष्ट्रपति शासन और पी०एस०भिंडर द्वारा पुलिस को वार-वार प्रोत्साहित करने की तमाम कोशिशों के वावजूद आतंकवादियों पर कोई असर नहीं पड़ा। फरवरी के पूरे महीने लगभग

हर रोज, हिंसात्मक घटनाएँ घट रही थीं। हिन्दू मन्दिरों पर हमले हो रहे थे, सरकारी दफ्तरों को निशाना बनाया जा रहा था, जालन्धर के दूरदर्शन केन्द्र पर बम फेंका गया, बैंकों में डकैतियाँ डाली गयीं, पुलिस पर गोलियाँ चलायी गयीं, और हिन्दुओं पर भी आतंकवादियों की कारंवाई की एक घटना, जिसका जिक्र सरकार द्वारा पंजाब के बारे में जारी श्वेतपत्र में नहीं है, यह जतलाती है कि उस समय पंजाब प्रशासन और पुलिस का मनोबल कितना टूट चुका था। जिस दिन हिन्दू सुरक्षा समिति के आह्वान पर पंजाब में हड़ताल हुई, कुछ नौजवान सिखों ने स्वर्णमन्दिर के प्रवेशद्वार के पास ही एक छोटी-सी पुलिस चौकी पर हमला किया। 6 पुलिस वालों को उनके हथियारों के साथ, जिनमें एक स्टेनगन और एक 'वॉकी-टॉकी' भी था, घसीटकर मन्दिर के अन्दर ले जाया गया। अगले दिन अमृतसर के कई बड़े महत्त्वपूर्ण पुलिस अधिकारियों को अकाल तख्त में भिंडरांवाले के कमरे तक जाना पड़ा और उनसे उन सिपाहियों और उनके हथियारों को छोड़ने के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। भिंडरांवाले उनमें से एक सिपाही की लाश सौंपने के लिए तैयार हो गया, जिसे मार डाला गया था। बाद में उसने उन लोगों को भी रिहा किया जो जिन्दा बच गये थे, लेकिन उसने स्टेनगन और 'वॉकी-टॉकी' अपने पास ही रख लिये।

पंजाब पुलिस और अर्धसैनिक सी० आर०पी० के बीच बढ़ते झगड़ों से भी श्रीमती गांधी की परेशानियाँ बढ़ती जा रही थीं। सी०आर०पी० स्वर्णमन्दिर जाने वाले हर वाहन और हर व्यक्ति की तलाशी लेना चाहती थी, लेकिन उनकी टुकड़ी को 200 गज के भीतर रहने की इजाजत नहीं दी गयी। ऐसी ढीली-ढाली सुरक्षा-व्यवस्था का मतलब था अपने ही इलाके में अपने दुश्मन के अड्डे को पूरी आजादी के साथ काम करने देना। श्रीमती गांधी की 'विचार-मण्डली' इस भय से ग्रस्त थी कि स्वर्णमन्दिर में किसी भी तरह का हस्तक्षेप करने से गाँव में रहने वाले जाट सिख किसान उत्तेजित हो उठेंगे। इसीलिए वे बार-बार पी० एम० भिंडर के सुझावों को सुनते रहते थे कि जाट सिख किसान अपने मन्दिर की रक्षा करने के लिए भारी संख्या में अमृतसर की ओर कूच कर देंगे।

आखिरकार सी० आर० पी० के सब्र की दीवार तब टूट गयी, जब गुरदासपुर जिले में उनके गश्ती दल पर एक बम फेंका गया। दूसरे दिन स्वर्णमन्दिर के सामने तब एक झड़प हुई जब इस अर्धसैनिक पुलिस दस्ते ने कुछ नौजवान सिखों की तलाशी लेने की कोशिश की और उधर से भिंडरांवाले के लोगों ने उन पर गोली चलायी। सी० आर० पी० ने मन्दिर के आसपास की इमारतों की छतों पर मोर्चा सम्भाल लिया और जवाबी गोलियाँ चलायीं। चारों ओर दहशत फैल गयी। लोंगोवाल ने पी० एस० भिंडर को फोन किया और उनसे गोलीबारी रुकवाने के लिए कहा। भिंडर ने जवाब दिया कि सी०आर०पी० को हटा पाने में वह असमर्थ

हैं। गृहमंत्री ने, जिनके अधीन सी०आर० पी० भी आती थी, मामला लोंगोवाल के सिर टाल दिया कि वे मन्दिर के भीतर अपना नियन्त्रण कायम करके हालत को सम्भालें। भिंडराँवाले के युवा बंदूकचियों पर दरअसल लोंगोवाल का कोई असर था ही नहीं। यह गोलीबारी तब जाकर रुकी, जब राष्ट्रपति भवन से सी० आर० पी० को यह टेलीफोन आया कि वहाँ से हट जायें। वैसे राष्ट्रपति ही सांविधानिक रूप से राष्ट्र के सर्वोच्च प्रशासक हैं, इसलिए उनके किसी कर्मचारी को इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था।

सप्ताह के अन्त तक सी०आर०पी० और स्थानीय पुलिस के टूटने के कगार पर पहुँच चुके सम्बन्ध सुधारने के लिए केन्द्रीय गृहसचिव को अमृतसर भेजा गया। समझौता तो हुआ, लेकिन बहुत दिनों तक टिका नहीं। गृहसचिव चतुर्वेदी भी श्रीमती गाँधी की 'विचार-मंडली' के सदस्य थे इसलिए उन्होंने भी अमृतसर की इस यात्रा का फायदा उठाकर लोंगोवाल से मिलना चाहा। लोंगोवाल ने यह कहते हुए मिलने से इनकार कर दिया कि 'चतुर्वेदी पंजाब में सी० आर०.पी० तैनात करने के लिए और निर्दोष सिखों की हत्या के लिए जिम्मेदार हैं। उनके हाथ सिखों के खून से रंगे हुए हैं। मैं उन्हें देखना भी नहीं चाहता।' अब तक पुलिस सीधे-सीधे साम्प्रदायिक आधारों पर बँट चुकी थी। सिख सी०आर० पी० को दुश्मन समझ रहे थे और हिन्दू पंजाब पुलिस को। दो हफ्ते बाद इन दोनों बलों के बीच फिर विवाद हुआ। अमृतसर के एक हिन्दू मन्दिर में बम फेंका गया और सी० आर०पी ने एक संदिग्ध सिख को गिरफ्तार कर लिया, लेकिन पंजाब पुलिस द्वारा उस सिख को ले जाने से रोका गया। स्थानीय पुलिस से सीधे टकराव को रोकने के लिए सी० आर०पी० के अधिकारियों ने मजबूर होकर अपने सिपाहियों को पीछे हटा लिया। इस बार फिर सरकारी स्तर पर दोनों के बीच दरार पाटने की कोशिश की गयी। 'बड़ा खाना' का आयोजन किया गया। लेकिन इस सबके बावजूद सी० आर०पी० के दिमाग से पंजाब पुलिस के बारे में शक दूर नहीं हुआ।

सी०आर०पी० स्थानीय पुलिस बल की तुलना में बहुत ज्यादा अनुशासित होती है। देश के सभी हिस्सों से लोग इसमें भर्ती किये जाते हैं, और जहाँ कहीं भी कानून और व्यवस्था की हालत खराब होती है, इसे भेजा जाता है। सी०आर०पी० के अधिकारी स्थानीय पुलिस के ऐसे विरोध के आदी होते हैं, लेकिन पंजाब की जो हालत थी उसे देखकर तो वे भी भौंचक्के रह गये। सी०आर० पी० के एक वरिष्ठ अधिकारी ने सतीश जेकब से कहा कि मैंने 'साम्प्रदायिक विवादों के दौरान स्थानीय पुलिस को कई जगहों पर पक्षपात करते हुए देखा है, लेकिन जितना नंगा और खुला पक्षपात पंजाब पुलिस कर रही है, वैसा कभी नहीं देखा।'

पंजाब में राष्ट्रपति शासन के असफल हो जाने का एक कारण यह भी था कि इसका असली संचालन दिल्ली से किया जा रहा था। श्रीमती गाँधी के सलाहकारों

ने पंजाब के योग्य राज्यपाल बी० डी० पांडे को अपनी सरकार कभी खुद नहीं चलाने दी। राज्यपाल के वरिष्ठ अधिकारी के साथ एक बातचीत में सतीश जेकब ने एक बार कहा, 'ऐसा लगता है कि चंडीगढ़ में बैठे हुए आप लोगों को पता ही नहीं है कि अमृतसर में क्या हो रहा है।' अधिकारी ने जवाब दिया, 'हम जानते हैं कि क्या हो रहा है। हर कोई जानता है कि एक प्रशासक के रूप में राज्यपाल पांडे की बहुत अच्छी भूमिका रही है, लेकिन असलियत यह है कि पंजाब शासन चंडीगढ़ से नहीं, दिल्ली से चल रहा है।' 'दिल्ली से' से अधिकारी का आशय श्रीमती गाँधी की विचार-मंडली से ही था, जिसमें पंजाब के अनुभवों की जानकारी रखने वाला कोई भी विचारक नहीं था। इस अधिकारी ने उन स्थानीय प्रशासकों और पुलिस अधिकारियों का उदाहरण दिया, जिनके बारे में यह बात जग जाहिर थी कि वे भिंडरांवाले की जेब में हैं। राज्यपाल उनका तबादला करना चाहते थे, लेकिन 'दिल्ली' ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया।

राज्यपाल पांडे के सब्र का इम्तहान दिल्ली और चंडीगढ़ के बीच हॉट-लाइन की गड़बड़ी ने भी लिया। उनके सोने वाले कमरे तक बढ़ायी गयी टेलीफोन लाइन आधी रात में अपने आप ही घंटी बजा देती थी, लेकिन जब राज्यपाल रिसीवर उठाते थे तो उधर से कोई जवाब नहीं मिलता था।

चंडीगढ़ के राज भवन में अनिश्चय की हालत श्रीमती गाँधी द्वारा भिंडरांवाले के साथ खुद सम्पर्क बनाये रखने के कारण और भी ज्यादा बढ़ती गयी। श्रीमती गाँधी के इस सम्पर्क के माध्यम थे पंजाब कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष रघुनंदन लाल भाटिया। उस समय वे भिंडरांवाले के काफी करीब आ गये थे, जब 1980 के आम चुनाव में अमृतसर चुनाव-क्षेत्र से उनकी उम्मीदवारी का सक्रिय समर्थन भिंडरांवाले ने किया था। भाटिया के एक कर्मचारी ने सतीश जेकब को बतलाया था कि 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' के एक महीने पहले तक भिंडरांवाले के साथ भाटिया सम्पर्क बनाये हुए थे, यानी उस अवधि के बाद भी, जब श्रीमती गाँधी ने भिंडरांवाले को किसी भी तरह से प्रभावित करने की उम्मीद छोड़ दी थी। आखिरी दिनों में यह सम्पर्क भिंडरांवाले के दाहिने हाथ अमरीक सिंह के माध्यम से बनाया जाता था। इसी कर्मचारी ने बतलाया कि हर रोज यहाँ से एक कार अमरीक सिंह को लाने के लिए स्वर्णमन्दिर भेजी जाती थी। यह तथ्य पंजाब के अधिकारियों की जानकारी में था, इसलिए उनकी नजर में भिंडरांवाले की हैसियत काफी ऊँची उठ गयी थी और यही वजह थी कि उसके साथ किसी भी तरह से उलझने में प्रशासन हिचकिचा रहा था।

10

बातचीत के अन्तिम क्षण

राष्ट्रपति शासन के असफल हो जाने पर विरोधी दलों और अखवारों के व्यंग्य-वाणों की प्रतिक्रिया में श्रीमती गाँधी ने और भी भीषण ताकत अपने हाथों में लेने की सोची। पूरे पंजाब को 'अशान्त क्षेत्र' घोषित कर दिया गया, जिससे पुलिस के पास गिफ्तारी के और भी ज्यादा अधिकार आ गये। राष्ट्रीय सुरक्षा कानून में भी संशोधन कर डाला गया, जिसके तहत पुलिस किसी व्यक्ति को एक साल तक अदालत में पेश किये विना गिरफ्तार रख सकती थी। लेकिन समस्या ताकत और अधिकारों के वढ़ाने-घटाने की थी ही नहीं, मुख्य समस्या थी पुलिस द्वारा अपने अधिकारों को इस्तेमाल करने में हिचकिचाहट की। और सरकार के भीतर उस राजनीतिक संकल्प की कमी की भी, जिसके द्वारा वह पुलिस या प्रशासन को इन अधिकारों को इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहन और हौसला दे पाती।

एक वार फिर वही हुआ। यानी इन नये अधिकारों के वावजूद भिंडराँवाले पर कोई असर नहीं पड़ा। इन नये अधिकारों के एलान के ठीक पहले ही एक प्रमुख सिख नेता एच० एस० मनचन्दा को दिनदहाड़े दिल्ली के वीचोंवीच ट्रैफिक लाइट पर कार रुकते ही गोली मार दी गयी। मनचन्दा कांग्रेस-समर्थक दिल्ली गुरुद्वारा प्रवन्धक समिति के अध्यक्ष और अकाली मोर्चे के आलोचक थे। जिस दिन पंजाव की पुलिस और प्रशासन को ये नये अधिकार दिये गये, एक महत्वपूर्ण राजनीतिक नेता हरवंस लाल खन्ना की अमृतसर में हत्या करके हिन्दुओं को 'सवक सिखाया गया।' खन्ना भारतीय जनता पार्टी (भू० पू० जनसंघ) के प्रमुख नेता थे। इसके दूसरे दिन पंजावी भाषा-साहित्य के प्रोफेसर और इंका संसद सदस्य प्रो० वी० एन० तिवारी की हत्या करके इन्दिरा समर्थकों को 'कड़ी' चेतावनी दी गयी। तिवारी को चंडीगढ़ में उनके घर में गोली मारी गयी। 22 अप्रैल को वायु-सेना के एक अधिकारी को उसके घर में मार डाला गया। यह पहली घटना थी कि सुरक्षा सेना के किसी कार्यरत अधिकारी की हत्या की गयी हो।

30 अप्रैल को भिंडराँवाले की हिट-लिस्ट के महत्वपूर्ण निशाने, पंजाव पुलिस के भूतपूर्व डी० एस० पी० वचन सिंह को अमृतसर में गोली मार दी गयी। वे

उस समय रिक्शे पर बैठकर कहीं जा रहे थे कि दो नौजवान आये और उन्होंने उनके अंगरक्षक पर गोली दागी। फिर उन्होंने उससे स्टेनगन छीनकर बचन सिंह को मारा। बचन सिंह की हत्या करने के बाद आतंकवादियों ने पीछे-पीछे दूसरे रिक्शे में आ रही उनकी पत्नी और बेटी को भी गोली मारी। उनकी अस्पताल में मृत्यु हो गयी। भिंडरांवाले ने एक बार पंजाब पुलिस को खुली चुनौती दी थी कि वह बचन सिंह को बचाकर दिखाये। भिंडरांवाले का कहना था कि उसका दाहिना हाथ अमरीक सिंह को जब जेल में बन्द था तो बचन सिंह ने उसको बड़ी यातनाएँ दी थीं। बचन सिंह को बचाने में पुलिस नाकामयाब रही। बचन सिंह की हत्या पुलिस के मनोबल पर एक और कुठाराघात था। इसके बाद हुआ एक और आतंकवादी हमला; जिसने समूचे हिन्दुस्तान को दिखा दिया कि विशेषाधिकारों के मुहैया कर लेने से भी सरकार और पुलिस कुछ नहीं कर सकती—भिंडरांवाले हर कानून से परे है।

12 मई को पंजाब केसरी प्रकाशन समूह के मालिक और सम्पादक लाला जगतनारायण के बेटे रमेश चन्द्र को जालंधर में गोली मारी गयी। वे उस समय अपनी कार से जा रहे थे। तीन साल पहले लाला जगतनारायण की हत्या के आरोप में ही भिंडरांवाले को गिरफ्तार किया गया था और उसने अपनी इस गिरफ्तारी का बदला चुकाने के लिए रमेश चंद्र की हत्या की शपथ ली थी। अपनी मृत्यु से एक दिन ही पहले रमेश चंद्र ने लिखा था : 'कोई नहीं जानता कि अब किसकी बारी है। पूरा पंजाब एक कसाईघर बन गया है।' रमेश चंद्र जैसे महत्वपूर्ण व्यक्ति को बचा पाने में सरकार की असफलता से सारा देश श्रीमती गांधी की क्षमताओं पर सन्देह करने लगा। लगने लगा कि पंजाब पर काबू पाना श्रीमती गांधी के बूते के बाहर की बात है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने अपने सम्पादकीय में टिप्पणी की कि भिंडरांवाले कितनी आजादी के साथ अपने शिकारों का चुन-चुन कर सफाया कर रहा है। सम्पादकीय के अनुसार : 'रमेश चंद्र ने अपने सम्पादकीय लेखों, दूरदर्शन या आकाशवाणी के माध्यम से या सार्वजनिक समाजों में हर जगह पंजाब के आदमी के क्षोभ को व्यक्त किया था। इस पागलपन से भरे आतंक की भयानक धुंध में उनकी आवाज एक समझदार आवाज थी। इसीलिए उन्हें खत्म करना आतंकवादियों को जरूरी लगा, जिन्होंने अब अच्छी तरह से ठान लिया था कि जो भी पन्थ (सिख सम्प्रदाय) का विरोध करेगा, उसे जिन्दा नहीं रहने दिया जायेगा।'

ये निहायत बर्बर हत्याएँ थीं। मार्च और अप्रैल के बीच भिंडरांवाले के आतंकवादियों के हमलों से [illegible]0 व्यक्ति मारे गये और 107 व्यक्ति घायल हुए।

अप्रैल के आखिर में एक वरिष्ठ अधिकारी ने पत्रकारों के सामने यह स्वीकार

किया कि तमाम विशेषाधिकारों के बावजूद पुलिस भिंडरांवाले के थोड़े से ही 'कट्टर अनुयायियों' को पकड़ पाने में सफल हो सकी है। इन 'कट्टर अनुयायियों' की संख्या के बारे में सरकारी अनुमान 400 से 500 के बीच था। उस अधिकारी ने बताया कि इसमें से सिर्फ एक चौथाई आतंकवादी छात्र हैं और बाकी नक्सलवादी, तस्कर और दूसरे अपराधी हैं। अधिकारी ने यह भी स्वीकार किया कि सरकार की प्रतिष्ठा अब दाँव पर लग चुकी है, लेकिन सरकार पंजाब समस्या को बलपूर्वक हल करने के दबावों के सामने नहीं झुकेगी।

कुछ दिनों तक भिंडरांवाले को सन्देह था कि सरकार इन दबावों का मुकाबला करना भी चाहती है या नहीं। उसे यकीन था कि स्वर्णमन्दिर में घुसने में श्रीमती गाँधी की जो हिचकिचाहट है उसे किसी-न-किसी दिन दबाव डालकर बदल डाला जायेगा। इसीलिए उसने तय किया कि ऐसी सूरत में स्वर्णमन्दिर की किलेबन्दी करके ऐसी कोशिश को मुश्किल बना दिया जाये। भिंडरांवाले ने सोचा कि कोई भी सैनिक विकल्प वास्तव में सैनिक विकल्प ही रहे और ऐसी अभेद्य किलेबन्दी कर ली जाये कि पंजाब पुलिस अकाल तखत स्थित उसके मुख्यालय में प्रवेश ही न कर सके।

यह खबर मिलने पर कि भिंडरांवाले और उसके आदमी स्वर्णमन्दिर की किलेबन्दी कर रहे हैं, मैं और सतीश जेकब इसका पता लगाने के लिए 10 मार्च को स्वर्णमन्दिर गये। हम जैसे ही मुख्य फाटक की ओर बढ़े, हमने घंटाघर के दोनों ओर रेत की बोरियों का अंबार देखा। इसके बायीं ओर पानी की ऊँची टंकी है। हमने देखा कि टंकी के ऊपर नौजवान सिख स्वचालित राइफलों से लैस पोजीशन लिये हुए मौजूद हैं। टंकी के ऊपर नीचे की इमारतों, स्वर्णमन्दिर परिसर के चारों ओर की गलियों और मुख्य प्रवेश द्वार के सामने के खुले मैदान पर पूरी नजर रखी जा सकती थी।

हम सबसे पहले स्वर्णमन्दिर के बाहर जनसम्पर्क अधिकारी नरिन्दरजीतसिंह नन्दा के दफ्तर में गये। दफ्तर के बगल की ही दूकान में भिंडरांवाले के भाषणों के टेप बेचे जा रहे थे। नन्दा का सहायक कर्मचारी बहुत चिंतित लगा।

'जब तक भिंडरांवाले के आदमी जाँच न कर लें तब तक आप लोग कैमरा लेकर अन्दर मत जाओ।' उसने कहा।

'लेकिन मैं तो अब तक यही सोचता था कि हमें यहाँ की फिल्म उतारने के लिए आपसे ही इजाजत लेनी चाहिए, उनसे नहीं।' मैंने जवाब दिया।

'जो भी कह लो, लेकिन हालत यही है। जब तक तुम उन लोगों से पूछ नहीं लेते, मैं कुछ नहीं कहूँगा। मन्दिर के भीतर बड़ी अजीबो-गरीब घटनाएं आजकल घट रही हैं। जो यहाँ हो रहा है, आप लोग उसका आधा भी नहीं जानते।'

इसके बाद नन्दा के सहायक ने अकाल तखत में भिंडरांवाले के कमरे में टेली-

फोन करके हम लोगों से बातचीत करने किसी को भेजने के लिए कहा। कुछ ही मिनटों बाद एक नौजवान सिख वहाँ आया और हमें भिंडराँवाले के पास ले जाने के लिए तैयार हो गया।

जब हम सीढ़ियों से उतरकर पवित्र सरोवर के चारों ओर की परिक्रमा पर गये तो देखा स्वर्णमन्दिर परिसर के भीतर की इमारतों में भी किलेबन्दी की जा रही है। लंगर की छत पर भी, जहाँ भिंडराँवाले संगत का आयोजन करता था, रेत की बोरियाँ जमायी जा रही थीं। अकालतख्त के दोनों ओर की इमारतों, जहाँ भिंडराँवाले के मुख्यालय थे, की नाकेबन्दी की तैयारियाँ चल रही थीं। भिंडराँवाले के हथियारबन्द अनुयायियों के सरोवर के चारों ओर गिद्धों की तरह मँडराते रहने के बावजूद मन्दिर की धार्मिक जिन्दगी लगातार अपनी रौ में चल रही थी। कच्छे-जाँघिये पहने बच्चे, बूढ़े सिख सरोवर का जल अपने शरीर पर डाल रहे थे और प्रार्थनाएँ कर रहे थे। परिसर के चारों कोनों से पवित्र गुरबाणी गूँज रही थी। भिंडराँवाले और उसकी सशस्त्र किलेबन्दी भी स्वर्णमन्दिर की गरिमापूर्ण शान्ति को भंग नहीं कर पायी थी—वह शान्ति जिसका हिन्दू भी सम्मान करते हैं, जिनके मंदिर शोरशराबे और व्यावसायिक माहौल से भरे रहते हैं।

जैसी कि परम्परा है, अपने सिर को सफेद रूमाल से ढँक कर और अपने सिगरेट-सिगार जनसम्पर्क कार्यालय में जमा कराकर, (स्वर्णमन्दिर में तम्बाकू ले जाना पाप माना जाता है) हम सरोवर के चारों ओर परिक्रमा करने लगे। फिर अकाल तख्त पहुँचे। हम सरोवर और स्वर्णमंदिर तक जाने वाले सेतुपथ के सामने खुलनेवाले हाल में घुसे। गुरबाणी का पाठ करते सिखों की बगल से होकर गुजरे और पिछवाड़े की ओर आ गये, जहाँ खासा अँधेरा था। हमारे मार्गदर्शक ने सँकरी सीढ़ी पर तैनात नौजवान सिखों से हमें जाने देने के लिए कहा और हम सीढ़ियाँ चढ़कर भिंडराँवाले के कमरे में पहुँचे। हमेशा की तरह वह अपनी टाँगें सामने फैलाये कुछ युवा सिखों के साथ बातचीत कर रहा था। इन सिखों में आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन का अध्यक्ष अमरीक सिंह, भिंडराँवाले का दुभाषिया हरमिंदर सिंह सन्धू और उसका सचिव रछपाल सिंह शामिल थे। विदेशी पत्रकारों की अपने प्रति दिलचस्पी देखकर भिंडराँवाले को अब खुशी होने लगी थी, इसलिए जब उसे बताया गया कि ये बी० बी० सी० वाले लोग हैं, तो वह मुसकराया और हमें बगल में बैठ जाने के लिए कहा।

मैंने भिंडराँवाले से कहा कि हम लोग कल होने वाली उसकी संगत की फिल्म बनाना चाहते हैं और उसका इण्टरव्यू लेना चाहते हैं। उसे मेरा विचार बहुत पसन्द आया, लेकिन जब उसे मैंने बताया कि इण्टरव्यू लगभग दस मिनट का होगा तो वह चौंका, 'दस मिनट, इसे तो कम-से-कम दो घंटे का होना चाहिए।

इंगलैंड में वहुत सिख हैं जो मुझे दो घंटे तक देखना चाहेंगे।' उसे यह समझा पाने में मुझे कुछ मुश्किल हुई कि टेलीविजन और समाचार वुलेटिन की अपनी सीमाएँ होती हैं। आखिरकार वह तव तैयार हुआ जव मैंने सुझाया कि इंगलैंड के सिख अगर दस मिनट तक ही उसे देख लें तो वेहतर है, वजाय इसके कि वे उसे देख ही न पायें।

अगले दिन हमें भिंडराँवाले का एक आदमी लंगर भवन की छत पर ले गया। वहाँ पर भिंडराँवाले के पैरों के पास वैठे हुए लगभग 3000 सिखों का समागम चल रहा था। उसके हथियारवन्द अंगरक्षक मुंडेर पर इधर-उधर मटरगश्ती कर रहे थे। भिंडराँवाले के वगल में एक वुजुर्ग सिख वैठा हुआ था—लम्वी सफेद दाढ़ी और करीने से वाँधी गयी पगड़ी। चेहरा पतला और प्रतिभावान। मैंने समझा कि या तो वह कोई महन्त है या फिर कोई विद्वान। लेकिन वह फौजी था। यह वूढ़ा सिख कोई और नहीं, मेजर-जनरल शाहवेग सिंह था, जिसने स्वर्णमन्दिर की किले-वन्दी की योजना वनायी थी और तीन महीने वाद यहाँ सेना के प्रवेश करने पर उसके प्रतिरोध का संचालन भी किया था।

1971 में वंगलादेश के मुक्ति युद्ध से पहले चलाये गये अभियान के दौरान शाहवेग सिंह ने मुक्तिवाहिनी के सदस्यों को प्रशिक्षण दिया था और उनका नेतृत्व किया था। भारत की यह एक वहुत गोपनीय कार्रवाई थी, क्योंकि भारत आज तक यह स्वीकार नहीं करता कि उसने मुक्तिवाहिनी को कभी कोई प्रशिक्षण दिया था या पूर्वी वंगाल के दलदली इलाके में पाकिस्तानी सेनाओं को 9 महीने तक लगातार गोरिला लड़ाई से परेशान कर रखा था। लेकिन ढाका में पाकिस्तानी सेनाओं से आत्मसमर्पण करवा लेने वाले भारतीय लेफ्टिनेंट-जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा अव यह स्वीकार करते हैं कि शाहवेग सिंह ने मुक्तिवाहिनी की कार्रवाईयों में साहसिक और महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अरोड़ा के अनुसार, शाहवेग सिंह रूढ़िवादी सिख नहीं था। वंगलादेश युद्ध के दौरान जव कभी जरूरत पड़ी, वह अपनी दाढ़ी और वाल कटाने के लिए हमेशा तैयार रहता था। लेफ्टिनेंट-जनरल अरोड़ा ने वताया : 'जव मैंने उसे जाना, उस वक्त वह धार्मिक सिख नहीं था। जहाँ तक मेरा खयाल है वह अपनी दाढ़ी काटता-छाँटता था और अपने वाल भी काट लेता था। लेकिन पगड़ी वह हमेशा पहनता था। दरअसल मेरा खयाल है कि उसने अपनी फौजी सेवा के दौरान अपना वह हर कर्तव्य निभाया, जिसकी जरूरत सैनिक सेवा को थी। छापामार कार्रवाइयों को लेकर उसके मन में गहरा आकर्षण था। उन दिनों जव मुक्तिवाहिनी की गतिविधियाँ चल रही थीं, उसने अपना हुलिया भी विलकुल उसी तरह का वना रखा था। वह किसी नियमित सिपाही की वजाय एक घाघ लड़ाका दिखायी देता था।' लेकिन वंगलादेश की लड़ाई के इस हीरो का फौजी जीवन वड़ी अपमानजनक परिस्थितियों में समाप्त हुआ।

बंगलादेश युद्ध के बाद मेजर-जनरल शाहबेग सिंह को एरिया कमान्डर का पद दिया गया जो कि एक प्रशासनिक पद है। उसके इस पद पर काम करने के दौरान सेना ने उस पर तीन आरोप लगाये। पहला आरोप यह था कि उसने देहरादून की सैनिक बस्ती में अपना एक मकान बनवाया और वह यह बता पाने में नाकामयाब रहा कि इसके लिए धन उसे कहाँ से मिला। दूसरा आरोप यह था कि उसने अपने पद का दुरुपयोग सेना द्वारा बेचे जा रहे एक ट्रक को खरीदने में किया। तीसरा आरोप था कि उसने एक बार भेंट में एक चाँदी की थाली ली थी।

जिस दिन मेजर-जनरल शाहबेग सिंह को सेना की नौकरी से रिटायर होना था, उसके ठीक एक दिन पहले बिना किसी कोर्टमार्शल के उसे नौकरी से मुअत्तल कर दिया गया। नतीजतन वह पेंशन पाने का हकदार नहीं रह गया। बर्खास्तगी के इस फैसले ने शाहबेग सिंह के दिमाग पर गहरा असर डाला और वह सरकार का कट्टर शत्रु बन गया। उसने साधारण नागरिक न्यायालयों में अपने आप को निर्दोष साबित करने के लिए दो मुकदमे लड़े और उनमें वह जीता भी, लेकिन इससे उसके प्रति सरकार के रवैये में कोई अन्तर नहीं आया। अपनी इस बदकिस्मती के दुख से उबरने और मानसिक शान्ति के लिए वह धर्म की शरण में आया। उसके बेटे परबपाल सिंह का कहना है कि जीवन के आखिरी दो-तीन सालों को छोड़ दिया जाये तो उसका पिता कभी धार्मिक व्यक्ति नहीं रहा। धार्मिक वह तब हुआ जब वह भिंडरांवाले के प्रभाव में आया। शाहबेगसिंह से भिंडरांवाले की पहली मुलाकात तब हुई थी जब 1982 में अकाली मोर्चा शुरू किया गया था।

सरकार को पहले से पता था कि शाहबेगसिंह स्वर्णमन्दिर के भीतर रहकर उसकी किलेबन्दी का पूरा निर्देशन कर रहा है और भिंडरांवाले के आतंकवादियों को प्रशिक्षण देने में लगा है, लेकिन खुद शाहबेगसिंह ने अन्त तक इससे इनकार किया। स्वर्णमन्दिर पर सैनिक कार्रवाई के 10 दिन पहले अकाल विश्राम गृह के कमरा न० 8 से अपने बेटे को भेजे गये एक पत्र में उसने लिखा था :

> मैं कुशल से हूँ। अखबारों ने बिलकुल गलत और सीधे-सीधे साम्प्रदायिक खबरों के जरिये मुझे नीचे गिराने की कोशिश की है। मैं सच कह रहा हूँ कि किसी की हत्या या दशमेश रेजिमेंट के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे ऐसे किसी रेजिमेंट (दशमेश यानी दसवें गुरु की सेना का नाम भिंडरांवाले के कुछ अनुयायियों ने अपनाया था और हत्याओं की जिम्मेदारी का दावा यही सगठन करता था) का पता भी नहीं है। मुझे लगता है कि ऐसा सरकार इसलिए कर रही है कि जिससे वह अपने उस अन्याय को हमेशा के लिए गहराई

तक दफन कर दे जो उसने एक वड़े सेनानायक के साथ किया है, जिसने महत्व-पूर्ण और विलक्षण सेवाएँ सेना को समर्पित की थीं। सरकारी उच्चाधिकारी अपनी इसी शर्म को छुपाने के लिए अखवारी हमलों की आड़ ले रहे हैं। खैर जो भी हो, मेरे वारे में जितना ही वेईमान रवैया वे अपनायेंगे, मेरी विरादरी मुझे उतना ही ज्यादा प्यार और इज्जत देगी।

उसके इस पत्र से जरा भी यह नहीं पता चलता था कि यह पत्र उस व्यक्ति द्वारा लिखा गया है जो कुछ ही दिनों वाद भारतीय सेना के खिलाफ एक साहसिक (भले ही मूर्खतापूर्ण) लड़ाई का नेतृत्व करने जा रहा था। उस सेना के खिलाफ, जिसकी ताकत का अन्दाजा उसे खुद अच्छी तरह से था। उसे यह भी जरूर पता रहा होगा कि इस लड़ाई का अन्त उसकी मृत्यु में ही होगा।

26 मई को भी वह अपने घरेलू मामलों को लेकर चिन्तित था। उसने अपने वेटे को पत्र में लिखा, 'तुम्हारी अम्मा से मुझे पता चला है कि तुम्हारा वेटा कवीर भी तुम्हारे साथ रह रहा है। ऐसी हालत में तुम्हें थोड़ी-वहुत आर्थिक मदद की जरूरत है। इसलिए कृपया मुझे अपने वैंक-एकाउंट नम्वर वगैरह के वारे में लिख कर भेजो, जिससे मैं अपने वैंक को यह निर्देश दे दूँ कि वह हर महीने पाँच सौ रुपये तुम्हारे एकाउंट में जमा करता जाये।' शाहवेगसिंह अपने पोते के स्वास्थ्य के वारे में भी चिन्तित था। उसने लिखा, 'मुझे उम्मीद है कि दिल्ली के तुम्हारे छोटे-से कमरे में कवीर अच्छी तरह से होगा। आजकल के गर्म मौसम में उसकी वहुत देखभाल की जरूरत है, जव तक कि वारिश न शुरू हो जाये।' शाहवेगसिंह की वीवी की तवीयत भी उसे परेशानी में डालती थी। शाहवेगसिंह के पुत्र के अनुसार उसकी अम्मा उस समय अपने पति के साथ स्वर्ण मन्दिर में ही थी, लेकिन सैनिक कार्रवाई शुरू होने के पहले वहाँ से चली आयी थी। अपने पत्र में शाहवेगसिंह ने लिखा था, 'तुम्हारी अम्मा दो दिन पहले यहाँ पहुँची। उसकी दवाइयाँ चल रही हैं। लेकिन वह ठीक-ठाक है।'

भिंडरांवाले भी लगातार सरकार पर यह आरोप लगाता था कि वह उसे वदनाम कर रही है। मार्च की उस सुवह उसने मुझसे वतलाया कि खुद सरकार ही हिंसा करवा रही है, मैं नहीं। वह अपने दुखड़े दोहराता रहा कि सिख दरअसल हिन्दुओं के गुलाम वन चुके हैं। उन्हें तो एशियाई खेलों को देखने तक की इजाजत नहीं दी गयी। जव मैंने उससे सिखों को आजादी दिये जाने के वारे में सवाल पूछा तो उसने अपना वही 'रटा-रटाया' जवाव दिया : 'न तो मैं इसके पक्ष में हूँ, न मैं इसके खिलाफ। लेकिन अगर आजादी दी जाती है, तो मैं उसे ठुकराऊँगा नहीं।' इसके वावजूद कि उसके आदमी मन्दिर की किलेवन्दी करने में लगे हुए थे, भिंडरांवाले भविष्य को लेकर खास चिन्तित नहीं दिखायी देता था। इन दिनों

उसे जितना महत्व दिया जा रहा था, उसके मजे लेने में वह लगा हुआ था।

भिंडराँवाले का इंटरव्यू लेने के दौरान मुझसे भी लगभग एक पाप हो गया था। मैं भिंडराँवाले के पास फर्श पर बड़ी कठिनाई से बैठा हुआ था। जब मैंने अपनी जकड़न दूर करने के लिए टाँगें सीधी की तो मेरा पैर दसवें गुरु के प्रतीक-चिन्ह धातु के बाण के साथ टकरा गया। इस बाण को भिंडराँवाले जहाँ कहीं भी जाता था, अपने साथ ही रखता था। जनरल शाहबेगसिंह ने मुझे जोर से कोंचा और गुस्से से कहा, 'अपने पैर को ठीक से सँभालो, अगर इस बाण से तुम्हारा पैर छू गया तो सन्त जी नाराज हो जायेंगे।'

उस दिन सतीश जैकब और मैंने भिंडराँवाले की कार्रवाई का एक खौफनाक पहलू देखा। एक छोटा-सा लड़का, जिसकी उम्र पन्द्रह वर्ष की भी नहीं रही होगी, भिंडराँवाले के सामने पेश किया गया। उसे घसीट कर लाने वाला आदमी था निहंगों के कपड़े पहने हुए एक छहफुटा सिख। निहंग ने बताया कि इस लड़के को 'एक काम' सौंपा गया था, पर यह भाग गया। इस घटना पर बड़े गुस्से के साथ बहस शुरू हुई। भिंडराँवाले ने लोगों को शान्त किया और निहंग से कहा, 'इसे ले जाओ और जो करना हो करो।' सिख ने ऐसा ही किया। वह उस लड़के को एक कोने में ले गया और हमने अपनी आँखों से देखा कि बरछे के डंडे से उसकी क्रूरतापूर्ण पिटाई हो रही थी।

इन संगतों का उपयोग भिंडराँवाले तमाम तरह के मामलात सुनने के लिए किया करता था। वहाँ पर आये मामलों पर उसका जो फैसला होता था, उससे पता चलता था कि वह पंजाब पुलिस और प्रशासन में कितनी गहराई तक घुस चुका है। पंजाब का एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी सिमरनजीत सिंह मान खुले-आम यह स्वीकार करता था कि वह भिंडराँवाले का समर्थक है। अधिकारियों के पास इसके सबूत भी थे कि जब सिमरनजीत सिंह मान फरीदकोट जिले में नियुक्त था तब वह आतंकवादियों को सरहद के पार से हथियारों की तस्करी करने में मदद देता था। लेकिन इन अधिकारियों ने किया सिर्फ यह कि मान का तबादला बम्बई कर दिया। उससे पूछताछ और उसे अनुशासन में लाने की कोई कोशिश नहीं की गयी। वह तो श्रीमती गाँधी की हत्या के बाद उन अधिकारियों की आँखें खुलीं और सिमरनजीत सिंह का असली महत्व उनकी समझ में आया और तब जाकर उन्होंने उसे गिरफ्तार किया। जिस समय मान को गिरफ्तार किया गया, वह भारतीय सरहद पार करके नेपाल भाग जाने के फेर में था।

अमृतसर का डिप्टी-कमिश्नर गुरुदेव सिंह भी, जिसके अधीन पूरे क्षेत्र की प्रशासनिक जिम्मेदारी थी, भिंडराँवाले का समर्थक था। गुरुदेव सिंह ने हमेशा सेंट्रल रिजर्व पुलिस द्वारा स्वर्णमन्दिर परिसर के चारों ओर कड़ी सुरक्षा-व्यवस्था का —

विरोध किया। वह पत्रकारों के सामने सी० आर० पी० की खुली आलोचना करता था। सी० आर० पी० के एक अधिकारी के अनुसार इस डिप्टी-कमिश्नर ने एक बार उन्हें आदेश दिया कि वे उस ट्रक को छोड़ दें, जिसकी तलाशी लेते हुए पता चला था कि इसमें स्वर्णमन्दिर के भीतर ले जाने के लिए हथियार रखे हुए हैं। वे हथियार सराय परिसर में चल रही मरम्मत के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले सामान के नीचे दबाये हुए थे और ड्राइवर ने पुलिस को बताया था कि वह 'कार-सेवा' कर रहा है। जब डिप्टी-कमिश्नर से इस आदेश के बारे में पूछताछ की गयी तो उसने कहा कि कार सेवा के दौरान किसी ट्रक को रोकना उसकी धार्मिक भावना के खिलाफ है। पढ़े-लिखे विद्वान, बुद्धिजीवियों की दुनिया भी भिंडराँवाले को सीस नवाने लगी थी। अमृतसर के मैडिकल कॉलिज के दो प्रोफेसरों को एक छात्र की समस्या पर बात करने स्वर्णमन्दिर बुलाया गया, इस छात्र को परीक्षा पास करने में बड़ी दिक्कतें आ रही थीं। भिंडराँवाले ने बड़े विनम्र ढंग से प्रोफेसरों से कहा कि यह छात्र उसका अनुयायी है और अगर इम्तहान में इसके रिजल्ट अच्छे आयें तो बेहतर होगा। अगली बार वह छात्र दोनों विषयों में अच्छी तरह से पास हो गया।

टेलीफोन एक्सचेंज भी भिंडराँवाले के झोले में था। जब सेना ने पंजाब की सुरक्षा व्यवस्था को पूरी तरह से अपने हाथ में ले लिया तो एक दिन एक जनरल को यह जानकर बहुत ताज्जुब हुआ कि भिंडराँवाले के टेलीफोनों को सबसे पहली वरीयता दी जाती है। न भिंडराँवाले का टेलीफोन और न ही आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन के मुख्यालय का टेलीफोन कभी काटा गया। टेलीफोनों के जरिये जितनी खुफिया सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती थीं, उन्हें पाने की कोशिश पुलिस ने कभी नहीं की। एक बार सतीश जेकब ने भिंडराँवाले को टेलीफोन पर फिरोज-पुर गुरुद्वारे में छिपे अपने अनुयायियों के साथ बातचीत करते हुए सुना था। पुलिस ने उस गुरुद्वारे को चारों तरफ से घेर रखा था और वह भीतर छुपे सिखों से आत्मसमर्पण करने के लिए कह रही थी। उन्होंने भिंडराँवाले की सलाह लेने के लिए फोन किया था। भिंडराँवाले ने जवाब दिया कि वे अड़े रहें।

अब आतंक का दायरा देहातों तक फैल गया था। ऐसा इसलिए हुआ था कि बहुत-से नौजवानों ने भिंडराँवाले के निर्देश के अनुसार मोटर-साइकिलें खरीद ली थीं और सिखों के तथाकथित दुश्मनों पर हमले शुरू कर दिये थे। उदाहरण के लिए, 26 अप्रैल को नौजवान सिख मोटर-साइकिल-सवारों ने अमृतसर जिले के गाँव भीकीविंड में एक हिन्दू कमीशन एजेंट को और फरीदकोट जिले के एक गांव समबमाई में एक हिन्दू दुकानदार को गोली का निशाना बनाया। सतीश जेकब भीकीविंड गाँव के दौरे पर गये और उन्होंने पाया कि हिन्दुओं की सारी दुकानों में ताला लगा है। दुकानदार और उनके परिवार पड़ोसी राज्य

हरियाणा भाग गये थे। पंजाब की जनसंख्या को सिखों के अनुकूल बदल डालने की भिंडरांवाले की योजना धीरे-धीरे कामयाब होती जा रही थी।

अप्रैल 1984 आते-आते दिखायी देने लगा कि जैसे भिंडरांवाले पंजाब को हिन्दुओं से खाली करवा डालेगा। ऐसा नहीं कि फुटकर व्यापारियों, सूद उगाही करने वाले महाजनों और दूकानदारों ने ही गाँव छोड़कर भागना शुरू कर दिया हो, बल्कि शहरों में रहने वाले बड़े हिन्दू व्यापारियों का भी आत्मविश्वास टूटने लगा था। अमृतसर के एक बैंक-मैनेजर ने मुझे बताया कि पंजाब के उद्योग पर बहुत बुरा असर पड़ा है, क्योंकि हिंसा के डर से देश के दूसरे हिस्सों के व्यापारी जालंधर और अमृतसर जैसी जगहों में व्यापार के लिए आना ही नहीं चाहते। उसने बताया कि बहुत सारे कारखाने तो 'एडवांस' के दम पर चलते हैं, लेकिन हालत यह है कि अब कोई भी व्यापारी एडवांस देने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि उसे डर है कि उसे माल नहीं मिलेगा। मैनेजर ने यह भी कहा कि बैंकों पर पड़ने वाले छापों के कारण भी व्यापारियों का विश्वास खत्म हो रहा है। नतीजा कुल मिलाकर यह है कि बहुत-से हिन्दू उद्योगपति अपने कारखाने हरियाणा ले जाना चाहते हैं और हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल उनका स्वागत करने के लिए कुछ जरूरत से ज्यादा ही उत्साहित हैं। डर के मारे बहुत-से हिन्दुओं ने सिखों का हुलिया अपना लिया था। अमृतसर के एक भूतपूर्व अध्यापक ने सतीश जेकब को बतलाया कि जब वह बाहर टहलने के लिए निकलता है तो पगड़ी जरूर बाँध लेता है। पेट्रोल स्टेशनों में काम करने वाले हिन्दू कर्मचारियों ने भी डर के मारे दाढ़ी बढ़ाकर पगड़ी लपेटनी शुरू कर दी थी। इन पेट्रोल स्टेशनों पर अकसर भिंडरांवाले के आतंकवादी हमला करते थे। यही हाल बस में अकसर सफर करने वाले हिन्दू मुसाफिरों का भी था। अप्रैल के बीतते-बीतते भिंडरांवाले के इस आतंककारी साम्राज्य ने अकाली दल के नेताओं को मजबूर कर दिया कि वे दुबारा श्रीमती गांधी की मुट्ठी में चले जायें। काफी अन्त में जाकर सिख राजनीतिक नेताओं को यह एहसास हो पाया कि सरकार के खिलाफ भिंडरांवाले को मोहरा बनाकर उन्होंने कितना भयानक खतरा मोल लिया है—लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

जब स्वर्णमन्दिर के भीतर और सरायों में आपसी लड़ाई फिर छिड़ी, तो आखिरकार सन्त लोंगोवाल ने माना कि अब भिंडरांवाले के अस्तित्व को मिटा देना होगा। इस बार लड़ाई भिंडरांवाले के एक विश्वासपात्र हत्यारे सुरिंदर सिंह सोढी, की हत्या से छिड़ी; 14 अप्रैल को उसे तब गोली मारी गयी, जब वह मन्दिर के बाहर एक ढाबे में चाय पी रहा था। सोढी जैसे कुख्यात हत्यारे भी मन्दिर के भीतर और बाहर चारों ओर इसलिए खुलेआम घूम रहे थे कि सी० आर० पी० को यह आदेश दिया गया था कि वह स्वर्णमन्दिर परिसर से दो सौ गज दूर रहे। अपनी अचूक निशानेबाजी के लिए मशहूर सोढी के बारे में कहा जाता था कि

वही दिल्ली गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष मनचन्दा की हत्या के लिए जिम्मेदार है। इसके अलावा हिन्दू राजनीतिक नेता खन्ना और पंजावी के प्रोफेसर और राज्यसभा के कांग्रेस-सदस्य वी० एन० तिवारी की हत्या का उत्तरादायित्व भी उसी पर जाता है। भिंडरांवाले के समर्थकों ने जो किस्सा वताया उसके अनुसार सोढी को गोली सुरिंदर सिंह उर्फ चिन्दा नाम के सिख और उसकी प्रेमिका वलजीत कौर ने मारी। सोढी की हत्या के वाद वलजीत कौर दौड़ती हुई मन्दिर में घुसी और अकाल तखत की सीढ़ियों से ऊपर पहुँची। वहाँ उसने भिंडरांवाले को समझाने की कोशिश की कि सोढी की नीयत उस पर खराव थी और वह ऐसी हरकतें कर रहा था; यह माना जाता था कि भिंडरांवाले स्त्री की इज्जत-आवरू के मामले में वहुत कड़ा रुख अपनाता था। फिर भी 'पूछताछ' के वाद वलजीत कौर ने यह स्वीकार, किया कि सोढी को मारने के लिए लोंगोवाल के एक निकटस्थ सहयोगी ने उसे और चिन्दा को रुपये दिये थे। वलजीत कौर ने अपने वयान से सिर्फ अपने प्रेमी चिन्दा को ही इस मामले में नहीं फँसा दिया वल्कि अकाली दल के सचिव गुरुचरण सिंह और भिंडरांवाले के एक अनुयायी मालिक सिंह भाटिया का नाम भी इसमें लपेट लिया। उस हत्या के वाद सवेरे भाटिया भिंडरांवाले के दरवार में हाजिर हुआ। उसने स्वीकार किया कि सोढी के हत्यारे चिन्दा के भागने के लिए उसने एक जीप का इन्तजाम किया था। भाटिया ने क्षमादान के लिए प्रार्थना की। भिंडरांवाले ने उसे माफ कर दिया और उससे कहा कि वह जाकर स्वर्ण-मन्दिर में चढ़ावा चढ़ाये, पूजा करे। इतने वड़े तनाव से छुटकारा पाकर भाटिया नीचे मन्दिर के प्रवेशद्वार तक पहुँचा, मन्दिर में प्रार्थना की और प्रसाद ग्रहण किया। इस वात से विलकुल वेखवर कि उसके खिलाफ कौन-सी योजना वनायी जा रही है, वह लंगर की छत पर दुवारा लौटकर आया और भिंडरांवाले से भी प्रसाद लेने का अनुरोध किया। भिंडरांवाले अभी भी क्षमादान देने की मानसिकता में दिखायी दे रहा था, उसने भाटिया से प्रसाद लिया और भाटिया संगत से चला गया। भिंडरांवाले के कुछ नौजवान अनुयायी उसका इन्तजार सीढ़ियों पर कर रहे थे। जैसे ही भाटिया उनकी वगल से गुजरा उन्होंने उस पर तलवारों से वार किये। भाटिया अपनी सुरक्षा के लिए लोंगोवाल के कब्जे वाली सरायों की ओर भागा। उसके दोनों कंधों से खून के धारे वह रहे थे और उसकी पगड़ी गिर गयी थी। वह भागता हुआ गुरु रामदास सराय के दरवाजे तक पहुँचा था कि गोली चलने की आवाज हुई। वह आदमी, जिसे भिंडरांवाले ने कुछ देर पहले क्षमा कर दिया था, जमीन पर लुढ़क कर गिरा और मर गया। तीन पत्रकारों ने इस 'क्षमा' और 'मृत्यु दंड' की घटना को देखा था। भाटिया को मारने के फौरन वाद भिंडरांवाले के इन नौजवान अनुयायियों ने सराय और स्वर्णमन्दिर परिसर के वीच की सड़क पर स्थित चाय के ढावे के मालिक को भी गोली मार दी। इसके

बाद उन्होंने मन्दिर की दीवार पर एक नोटिस चिपका दिया, जिसमें लिखा हुआ था : 'हमने चौबीस घंटों के भीतर हत्यारों और उनके दो साथियों का सफाया कर दिया।' मन्दिर के परिसर में किसी भी हिंसात्मक वारदात की जानकारी से लगातार इनकार करने वाले सन्त लोंगोवाल अपने दफ्तर की खिड़की से इस नोटिस को देख सकते थे।

अगली शाम ग्रांड ट्रंक रोड पर पुलिस को चिन्दा की लाश मिली। पास ही उन्हें खून से लिथड़ी बोरी भी मिली। बोरी के भीतर बुरी तरह से क्षत-विक्षत एक औरत की लाश थी। पुलिस के अनुसार यह लाश बलजीत कौर की थी। उसके स्तन काट डाले गये थे और उसे यातनाएँ दी गयी थीं।

अकाली दल के सचिव गुरचरण सिंह ही अकेले संदिग्ध व्यक्ति थे, जो बच निकले। उन्होंने लोंगोवाल के दफ्तर के पास ही एक कमरे के भीतर अपने-आप को बन्द कर लिया और अकाली दल अध्यक्ष ने दरवाजे के बाहर पचास हथियार-बंद सिखों का पहरा बिठा दिया। भिंडरांवाले लगातार बदला लेने की धमकियाँ देता रहा। उसने सतीश जेकब को बतलाया था . 'सोढ़ी मेरा सबसे नजदीकी साथी था। वह बचपन से मेरे साथ था। जब तक उसकी मौत का बदला नहीं चुका लिया जायेगा, मैं चैन से नहीं बैठूंगा। मुझे पक्का यकीन है कि गुरचरण सिंह ही असली मुजरिम है। मैं उसे कभी माफ नहीं करूँगा।'

सतीश जेकब गुरचरण सिंह के कमरे के दरवाजे पर तैनात पहरेदारों को पार करके कमरे तक पहुँचने में कामयाब हो गये। उन्होंने गुरचरण सिंह से बातचीत की। गुरचरणसिंह ने सोढ़ी की हत्या में अपना हाथ होने से साफ इनकार किया। उन्होंने कहा . 'यह सारा-का-सारा आरोप मनगढ़न्त है। इसका असली मक्सद है सन्त हरचन्द सिंह लोंगोवाल और अकाली दल की साख को गिराना। आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन ने मेरे खिलाफ भिंडरांवाले के दिमाग में जहर भर डाला है, क्योंकि अकाली दल की युवा शाखा को बनाने के लिए मैं जिम्मेदार रहा हूँ और ए० आई० एस० एस० एफ० इसे अपना प्रतिद्वंद्वी संगठन मानता है।'

इस डर से कि कहीं भिंडरांवाले उनके दफ्तर में घुसपैठ करने की कोशिश न करे, लोंगोवाल ने सहायता की माँग की जिसकी वजह से दो सिख नेताओं ने अपने अनुयायियों को उनकी रक्षा के लिए भेजा। माहौल को शान्त और ठंडा करने के उद्देश्य से उन्होंने गुरचरण सिंह से इस्तीफा देने के लिए भी कहा, जबकि अकाली दल की एक विशेष समिति गुरचरण सिंह को दोषमुक्त ठहरा चुकी थी। इस तरह मोर्चा-डिक्टेटर लोंगोवाल ने अपने अधिकारों का फिर समर्पण किया।

अपने अधिकार और अपनी सत्ता को पुनर्स्थापित करने के आखिरी प्रयत्न के रूप में लोंगोवाल ने वरिष्ठ सिख नेताओं की बैठक बुलायी जिसमें मोर्चा के सर्वमान्य नेता होने की उनकी बात पुष्ट हो सके। लेकिन घटनाएँ अब मोर्चा डिक्टेटर

से बहुत दूर जा चुकी थीं। इस बैठक में शामिल 140 में से 60 लोगों ने बैठक का बहिष्कार किया और भिंडरांवाले के कमरे में जाकर वहाँ उसके प्रति अपनी वफा-दारी की शपथ उठायी। भिंडरांवाले बड़ा खुश हुआ, लेकिन तब भी वह यही कहता रहा कि राजनीति से मेरा कोई लेना-देना नहीं है, मैं तो सिर्फ एक धर्मप्रचारक हूँ।' उसने राजनीतिक नेताओं से कहा : 'आप लोगों को मुझसे किसी ओहदे के लिए टिकट नहीं मिलेगा।' इस बैठक के एक दिन पहले सन्त लोंगोवाल ने श्रीमती गाँधी से टेलीफोन पर लम्बी बातचीत की थी जिसमें उन्होंने स्वीकार कर लिया था कि स्थिति पर अब उनका कोई नियंत्रण नहीं रह गया है। उन्होंने श्रीमती गाँधी से विनती की कि वे अकाली माँगों के बारे में कुछ रियायतें दें जिसे वे अपनी सफलता कह कर मोर्चे को स्थगित कर दें और भिंडरांवाले को अलग-थलग करने की कोशिश करें। लोंगोवाल का दुर्भाग्य कि टेलीफोन की इस बातचीत की खबर अखबारों में छप गयी। भिंडरांवाले ने इस घटना को हाथों-हाथ लिया और इसे एक और नये सबूत के रूप में पेश करने लगा कि लोंगोवाल सिख हितों को सरकार के हाथों बेच रहे हैं।

मंदिर के ग्रंथी भी धीरे-धीरे सतर्क होने लगे थे। वे मंदिर और अपनी रोजी-रोटी की लगाम किसी भी तरह से भिंडरांवाले के हाथों में नहीं सौंपना चाहते थे। भिंडरांवाले के नौजवान अनुयायियों ने उनकी पकी हुई दाढ़ी की इज्जत की अच्छी-खासी छँटाई कर दी थी। अप्रैल के अन्त में लोंगोवाल इन ग्रंथियों को इस बात के लिए राजी कर पाने में सफल हुए कि स्वर्णमन्दिर के भीतर हिंसा के खिलाफ एक हुक्मनामा जारी किया जाये। उन्होंने आदेश दिया कि मन्दिर परिसर के भीतर या इसके आसपास न तो कोई गोली चलाये और न ही कोई हत्या करे। उन्होंने सिखों से एकजुट होकर मोर्चे को सफल बनाने की भी अपील की। बाद में लोंगो-वाल ने भी एक वक्तव्य जारी किया कि पाँच मुख्य ग्रंथियों द्वारा निकाले गये हुक्मनामे की हुक्म-उदूली कोई भी सिख नहीं कर सकता। बहुत-से लोग, जिनमें श्रीमती गाँधी के सलाहकार भी शामिल थे, यह मानने लगे कि आखिरकार लोंगो-वाल और मुख्य ग्रंथी स्वर्णमन्दिर परिसर से भिंडरांवाले को बाहर निकालने के लिए हिम्मत बटोरने की कोशिश कर रहे हैं। भिंडरांवाले के लिए निश्चित ही हुक्मनामे की उदूली करना मुश्किल होता, क्योंकि हुक्मनामा सिख सम्प्रदाय के हर सदस्य के लिए मानना जरूरी है। लेकिन भिंडरांवाले के पास इस नयी समस्या का अपना जवाब था।

भिंडरांवाले ने एक धमकी-भरा वक्तव्य जारी किया कि अगर ग्रंथियों ने उसके खिलाफ कोई हुक्मनामा जारी किया तो उन्हें अपने पदों से इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर दिया जायेगा। उसने इसका एक गम्भीर संकेत एक ही हफ्ते में अपने तीन विरोधियों की हत्या द्वारा दिया। इनमें से एक ज्ञानी प्रताप सिंह

अकाल तख्त के भूतपूर्व प्रमुख ग्रंथी थे, जो कि सिखों की धार्मिक और लौकिक सत्ता की सर्वोच्च गद्दी है। 80-वर्षीय ज्ञानी प्रताप सिंह ने मन्दिर में हथियार जमा करने के लिए भिंडरांवाले की खुली आलोचना की थी और कहा था कि अकाल तख्त में भिंडरांवाले की मौजूदगी एक अपवित्र चीज है। इसके बाद भिंडरांवाले के खिलाफ कोई हुक्मनामा कभी जारी नहीं किया गया। जब स्वर्ण-मन्दिर पर सैनिक कार्रवाई के बाद प्रमुख ग्रंथी से पूछा कि उन्होंने हुक्मनामा क्यों नहीं जारी किया तो उनका जवाब था कि, इस मामले में मुझसे किसी ने कोई शिकायत ही नहीं की थी।'

दरअसल सभी मुख्य ग्रंथी भिंडरांवाले के विरोधी नहीं थे। स्वर्णमन्दिर के मुख्य ग्रंथी ज्ञानी साहिब सिंह ने मन्दिर परिसर में भिंडरांवाले के छह नौजवान अनुयायियों के विवाह की अध्यक्षता करना स्वीकार किया था। इन नौजवान सिखों में सबसे महत्वपूर्ण था ए० आई० एस० एस० एफ० का महामंत्री और भिंडरां-वाले का दुभाषिया हरमिन्दरसिंह सन्धू। इस अवसर पर तमाम लोगों को व्यापक निमंत्रण पत्र भेजे गये थे। हरमिन्दर सिंह सन्धू ने इसकी भी व्यवस्था की थी कि अन्तरराष्ट्रीय प्रेस जगत को भी इस घटना की सूचना मिले।

और फिर हुआ यह कि स्वर्णमन्दिर में भारतीय सेना के प्रवेश के करीब एक महीने पहले भिंडरांवाले के छह नौजवान सिख अनुयायियों ने, जो भारत सरकार को खुली चुनौती दे रहे थे, जिन्होंने देश के सबसे सम्पन्न राज्य के विकास को बिलकुल ठप्प कर डाला था, जो हत्याओं, बैंक डकैतियों, धमकियों से धन वसूलने, अलगाववाद का प्रचार करने और पुलिस की डायरी में दर्ज होने वाले हर अपराध के लिए जिम्मेदार थे—गुरुग्रंथ साहब के सामने बैठ स्वर्णमन्दिर के प्रमुख ग्रंथी की चार बार परिक्रमा की। हर नौजवान सिख आतंकवादी के पीछे-पीछे उसकी दुल्हन चल रही थी। सन्धू की पत्नी बम्बई के एक धनी ट्रांस-पोर्ट कांट्रेक्टर की लड़की थी। इन छह सिख आतंकवादियों के विवाह-संस्कार की फिल्म संसार-भर के टेलीविजनों के लिए खींची जा रही थी। दूल्हे अपने कन्धों पर कारतूसों की पट्टी टाँगे हुए थे और समारोह में मौजूद एक हजार से भी अधिक लोगों ने स्वचालित हथियार थाम रखे थे। मैं भिंडरांवाले के ग्यारह साल के बेटे के पास खड़ा हुआ था। उसके पास भी एक रिवाल्वर था और उसने भी कारतूस की पेटी पहन रखी थी।

जिन महत्वपूर्ण सिख नेताओं ने इस अवसर पर प्रवचन दिया, उनमें भिंडरां-वाले भी था। इस मर्तबा उसने राजनीतिक बातें नहीं उठायीं और अपने युवा अनु-यायियों को विवाह के बारे में सिख धर्म की सीख बतलाता रहा। प्रवचन देने के बाद वह लंगर की छत पर चला गया, जहाँ मैंने देखा कि वह रुपये गिनने में लगा हुआ है। जब मैंने उससे पूछा कि क्या ये रुपये विवाह के दौरान इकट्ठा हुए

हैं, तो वह सिर्फ मुस्करा दिया।

पर श्रीमती गाँधी मुस्करा नहीं रही थीं। उनकी पार्टी की साख दाँव पर लगी थी और इसका संकेत उन्हें मई में हुए उप-चुनावों में मिल चुका था जहाँ उनकी पार्टी को भारी पराजय का सामना करना पड़ा था। सबसे गम्भीर धक्का लगा था उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ के निकट महिलावाद चुनाव-क्षेत्र से, जहाँ उनकी पार्टी ने चुनाव जीतने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया था, लेकिन इसके बावजूद श्रीमती गाँधी की बहू मेनका गाँधी की पार्टी 'संजय मंच' ने वह सीट जीत ली थी। अपने पति संजय गाँधी की मृत्यु के बाद मेनका गाँधी का अपनी सास से झगड़ा हो गया था और वह श्रीमती गाँधी के पोते (अपने बेटे) को लेकर श्रीमती गाँधी का घर छोड़कर चली आयी थी। यह झगड़ा उत्तराधिकार को लेकर था। संजय की मृत्यु के बाद मेनका ने सोचा कि अब अगली पीढ़ी की राजनीतिक सदस्यता उसे ही मिलनी चाहिए। लेकिन प्रधानमंत्री ने इसके लिए अपने बड़े बेटे राजीव का चुनाव किया। श्रीमती गाँधी के घर से निकलने के बाद मेनका गाँधी ने एक बड़ा हलका, लेकिन आश्चर्यजनक ढंग से सफल अभियान अपने पति के परिवार के खिलाफ छेड़ा। इस अभियान में मेनका ने अपने आपको एक अपमानित विधवा तथा श्रीमती गाँधी को एक क्रूर सास के रूप में पेश किया। अपने को चर्चा में बनाये रखने के लिए मेनका ने घोषणा की कि वह आगामी आम चुनावों में अमेठी चुनाव-क्षेत्र से चुनाव लड़ेंगी। अमेठी संजय गाँधी का चुनाव-क्षेत्र था और अब राजीव गाँधी वहाँ से उम्मीदवार हो रहे थे। अमेठी भी लखनऊ के करीब था और श्रीमती गाँधी का प्रधानमंत्री का कार्यकाल आठ महीने बाद समाप्त होने जा रहा था। इसलिए मलिहाबाद की पराजय राजीव गाँधी के भविष्य के लिए एक गंभीर चेतावनी थी। राजीव गाँधी का राजनीतिक जीवन वैसे भी अपनी जमीन तलाशने में खासा सुस्त और धीमा दिखायी पड़ रहा था और आम धारणा थी कि अमेठी में अपनी हार बचाना उनके लिए मुश्किल पड़ेगा। यह लगातार स्पष्ट होता जा रहा था कि अपनी सरकार की साख को दुबारा बनाने और अपने तथा अपने बेटे राजीव गाँधी के राजनीतिक भविष्य को बचाये रखने के लिए श्रीमती गाँधी को अगले आम चुनावों से पहले ही पंजाब समस्या को सुलझाना पड़ेगा।

श्रीमती गाँधी को इसका एहसास हो गया था, फिर भी वे पंजाब समस्या के हल के लिए सेना का विकल्प अपनाने से हिचक रही थीं। जब संविधान की प्रतियाँ जलाने के आरोप में अकाली दल नेतृत्व की त्रिमूर्ति में से दो 'मूर्तियाँ' जेल में थीं, तो श्रीमती गाँधी के सलाहकारों के दल ने उनसे बातचीत की और श्रीमती गाँधी को पता था कि वे जो चीज अब माँग रहे हैं वह है चंडीगढ़। अकाली दल नेतृत्व के दो प्रतिद्वन्द्वी दावेदार प्रकाशसिंह बादल और गुरचरण सिंह तोहड़ा

इस बात पर अड़े हुए थे कि अगर उन्हें मोर्चे की लगाम भिंडरांवाले के हाथ से छीननी है तो कम-से-कम यह एक उपलब्धि उन्हें हासिल होनी ही चाहिए।

श्रीमती गांधी इस बात पर अड़ी हुई थी कि पंजाब को चंडीगढ़ तभी दिया जायेगा जब अकाली दो तहसीलें, फाजिल्का और अबोहर, इसके बदले में हरियाणा को देने के लिए राजी हो जायें। यह उनकी मूल व्यवस्था की शर्त थी, जिन्हें कभी अमल में नहीं लाया गया। श्रीमती गांधी अब इस बात के लिए भी तैयार हो गयी थीं कि सिर्फ अबोहर ही हरियाणा को बदले में दिया जाये, लेकिन यह फैसला एक आयोग के माध्यम से हो, ताकि हरियाणा के हिन्दुओं को यह संदेह न हो कि उनके हितों का बलिदान कर दिया गया है। श्रीमती गांधी ने वायदा किया कि आयोग की सिफारिशों की गारंटी पहले ही दे दी जायेगी। लेकिन अकाली नेताओं के लिए यह पर्याप्त सन्तोषजनक नहीं था। उन्हें अपने समर्थकों को समझाने और मोर्चे की जीत का दावा करने के लिए यह जरूरी लगता था कि इस समझौते की घोषणा किसी आयोग के द्वारा नहीं, खुद सरकार के द्वारा हो। फिर भी, अन्त में गरमपंथी अकाली नेता समझे जाने वाले तोहड़ा ने मान लिया कि अगर यह बात पहले से ही अच्छी तरह स्पष्ट कर दी जाये कि चंडीगढ़ पंजाब को ही मिलेगा और बदले में सिर्फ अबोहर तहसील ही हरियाणा को दी जायेगी तो वे आयोग के लिए भी तैयार हैं। वे यह मान गये कि समझौतों की भारतीय परम्परा के अनुसार दोनों ही पक्षों को अपना चेहरा बचाना है।

बातचीत के इस आखिरी दौर में श्रीमती गांधी के पक्ष से विदेशमंत्री नरसिंह राव तीन प्रशासकों के साथ शामिल हुए। ये तीनों प्रशासक कैबिनेट सचिव कृष्ण-स्वामी राव साहब, प्रधानमंत्री के मुख्य सचिव पी० सी० अलेक्जेंडर और गृह सचिव एम० एम० के० वली 'पंजाब विचार मंडली' के सदस्य भी थे। पटियाला के महाराजा अमरिंदर सिंह फरवरी में ही इस दृश्य से हट गये थे, क्योंकि उन्हें अब इस पर विश्वास नहीं था कि कोई समझौता संभव है। जिस तरीके से बात-चीत चलायी जा रही थी, अमरिंदर सिंह उसके कटु आलोचक हो गये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि श्रीमती गांधी की 'विचार मंडली' चंडीगढ़ और नदियों के पानी के बँटवारे की माँगों के प्रति जरूरत से ज्यादा नौकरशाही रवैया अपना रही है और अकाली नेताओं पर पड़ने वाले राजनीतिक दबावों को समझने की कोशिश नहीं कर रही है। मंत्री पद के दायित्व की परम्परा का उल्लंघन करने की श्रीमती गांधी की यह खास आदत ही थी जिसके चलते बातचीत करने वाले दल का नेतृत्व गृह-मंत्री पी० सी० सेठी की बजाय विदेशमंत्री नरसिंह राव को सौंपा गया। निश्चित ही संसद में सेठी द्वारा पंजाब समस्या से निबटने के ढंग से यह प्रमाण मिल गया था कि वे इस काम के लिए बहुत उपयुक्त व्यक्ति नहीं हैं, लेकिन श्रीमती गांधी ने स्वर्णमन्दिर में सैनिक कार्रवाई के बाद तक उन्हें 'नाम के वास्ते' गृहमंत्री बनाये

रखा। महत्त्व इस बात का नहीं था कि मंत्रीमंडल की बैठकों में गृह-मंत्री के पद पर कौन आदमी बैठा है, बल्कि यह था कि श्रीमती गांधी को सलाह कौन देता है, और सलाह लेने के मामले में श्रीमती गांधी राजनीतिज्ञों पर नहीं, प्रशासकों-नौकरशाहों पर निर्भर रहती थीं। वैसे तो मंत्रिमंडल का प्रतिनिधित्व नरसिंह राव कर रहे थे, लेकिन जिस विशेषता के लिए वे जाने जाते थे वह थी श्रीमती गांधी के प्रति उनकी वफादारी, एक राजनीतिज्ञ की स्वतन्त्र हैसियत के कारण नहीं।

इस सहमति के मुद्दे तक पहुंच जाने के बाद 11 मई को सरकार ने घोषणा की कि अकाली दल के नेताओं पर संविधान की प्रतियां जलाने के कारण लगाये गये देशद्रोह के आरोप को वापस लिया जा रहा है, और इसके बाद वे नेता रिहा कर दिये गये। चार दिन बाद बादल और तोहड़ा स्वर्णमंदिर परिसर में अकाली 'त्रिमूर्ति' के तीसरे नेता सन्त हरचन्द सिंह लोंगोवाल से मिले। पंजाब समस्या की किसी भी व्यवस्था या सहमति के लिए भिंडरांवाले ही असली व्यक्ति बन चुका था। सरकार ने संकेत कर दिया था कि इसके पहले कि इस समझौते की घोषणा की जाये, भिंडरांवाले को इसके लिए सहमत होना चाहिए और तोहड़ा ही एक अकेले ऐसे नेता थे, जो भिंडरांवाले को इसके लिए राजी कर सकते थे। इसके पहले होने वाली बातचीतों के हर दौर में उन्होंने भिंडरांवाले की 'रणनीति' को ही अपना समर्थन दिया था—यानी आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के सम्पूर्ण अमल से कम किसी भी चीज पर समझौता नहीं होना चाहिए। तोहड़ा इस सुलहनामे को आगे बढ़ाने के लिए खासतौर पर चिंतित थे। बातचीत के इस अन्तिम दौर में दोनों पक्षों ने पंजाब के संचालन के लिए अकाली दल और इन्दिरा कांग्रेस की मिली-जुली सरकार बनाने की सम्भावना पर भी बातचीत की थी। तोहड़ा को उम्मीद थी कि पंजाब के मुख्यमंत्री के पद के लिए भिंडरांवाले उन्हीं का समर्थन करेगा। इस तरह अपनी जिन्दगी-भर का सपना उन्हें पूरा होता दिखायी दे रहा था, बशर्ते वे भिंडरांवाले को इस समझौते के लिए राजी कर लें।

स्वर्णमन्दिर परिसर में अकाली त्रिमूर्ति की बैठक में तोहड़ा को भिंडरांवाले से बातचीत करने के लिए एक स्वीकारनामा दिया गया और अगले दिन तोहड़ा समझौते पर भिंडरांवाले से बात करने अकाल तख्त गये। तोहड़ा ने उसको समझाया कि चंडीगढ़ को हासिल करना सिख-आन्दोलन की एक बड़ी जीत है और जो दूसरे मुद्दे बाकी बचे हैं उन्हें भी सरकार द्वारा गठित किया जाने वाला आयोग सिखों के पक्ष में ही सुलझाने की सिफारिश करेगा। लेकिन तोहड़ा अपने ही पटाखे की आवाज से डर गये। भिंडरांवाले यह मानने को तैयार ही नहीं होता था कि इस समझौते से मोर्चे की मांगें पूरी हुई हैं। उसने तोहड़ा के खेल को अच्छी तरह देख लिया था और उसने तोहड़ा से कहा कि वह पंजाब का मुख्यमंत्री बनने की उम्मीद

में आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के साथ गद्दारी कर रहे हैं। तब शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष तोहड़ा ने भिंडरांवाले को अकाल तख्त से बाहर निकाल फेंकने की धमकी दी। तोहड़ा ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने भिंडरांवाले को पवित्र अकाल तख्त में प्रवेश करने की इजाजत देने के लिए मुख्य ग्रन्थियों को राजी किया था। उन्होंने भिंडरांवाले के खिलाफ कोई हुक्मनामा जारी करने से रोकने के लिए भी ग्रन्थियों पर अपने प्रभाव का इस्तेमाल किया था। लेकिन तोहड़ा की धमकियों का भी कोई असर नहीं हुआ। भिंडरांवाले अब अच्छी तरह से समझ गया था कि स्वर्णमन्दिर के ग्रन्थी अपने संरक्षक तोहड़ा की बजाय उसी से डरे हुए हैं और इसीलिए पंजाब का यह समझौता पूरी तरह से असफल हो गया।

अगले दिन तोहड़ा पंजाब के राज्यपाल के पास यह बताने के लिए पहुँचे कि वे भिंडरांवाले को राजी कर पाने में नाकामयाब रहे हैं और अब उन्हें इसकी कोई उम्मीद नहीं है कि भिंडरांवाले कभी पंजाब के बारे में किसी समझौते या सहमति-पूर्ण व्यवस्था के लिए राजी होगा। एक सप्ताह बाद लोंगोवाल ने घोषणा की कि राज्य में खाद्यान्न की आवाजाही को रोकने के लिए फिर से मोर्चा लगाया जायेगा। इस घोषणा ने वह बहाना मुहैया कर दिया जिसके आधार पर स्वर्ण-मन्दिर के चारों ओर अपनी सुरक्षा व्यवस्था को और कड़ा करने की सरकार की इच्छा पूरी हो गयी और जो आगे चलकर स्वर्ण मन्दिर पर सैनिक कार्रवाई की पूर्व-पीठिका बना। बहुत-से सिख नेताओं का मानना है कि मोर्चे की घोषणा के पीछे लोंगोवाल के अपने तर्क थे। उनकी राय में अब लोंगोवाल को यह एहसास हो गया था कि भिंडरांवाले का जवाब सिर्फ सेना ही है। संसद के एक वरिष्ठ सांसद ने भी सतीश जेकब को बतलाया था कि भिंडरांवाले द्वारा समझौते को ठुकरा देने के बाद लोंगोवाल सरकार के साथ 'सहयोग' करने लगे थे। निश्चित ही यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण संयोग है कि जिस दिन राज्य में खाद्यान्न की गतिविधियों को रोकने के लिए लोंगोवाल ने मोर्चे की घोषणा की, उसी दिन पहली बार केन्द्रीय सुरक्षा पुलिस बल ने स्वर्णमन्दिर के चारों ओर की इमारतों में अपना मोर्चा बाँध लिया।

दुर्भाग्य से जो सबसे बेहतरीन रणनीतिक जगहें हो सकती थीं उन पर भिंडरां-वाले के आदमी पहले से ही कब्जा जमा चुके थे। सरकार को भी यह पता था कि वे लोग दो महीने पहले से स्वर्णमन्दिर के आसपास की इमारतों में रणनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण जगहों पर मोर्चा लगा चुके हैं। पुलिस महानिरीक्षक पी० एस० भिंडर ने केन्द्रीय रिजर्व बल समेत सभी पुलिस अफसरों के नाम एक सर्कुलर जारी किया, जिसमें कहा था कि उन्हें सूचना मिली है कि मन्दिर के आसपास के घरों की किलेबन्दी की जा रही है। भिंडर ने आदेश दिया कि वे लोग सिर्फ निगाह रखने और उसकी रिपोर्टिंग करने के अलावा और कोई कार्रवाई न करें। भिंडर ने कहा कि ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जिससे स्थानीय बाशिंदों का अमन

भिंडराँवाले की इस किलेबन्दी के लगातार विस्तार की वहुत वड़ी कीमत आगे चलकर भारतीय सेना को चुकानी पड़ी। स्वर्णमन्दिर में सैनिक कार्रवाई को स्पष्ट करने के उद्देश्य से पंजाव-आन्दोलन पर जारी श्वेतपत्र में कहा गया है कि, 'नागरिक आवादी वाले क्षेत्र में 10 मकानों का चुनाव आतंकवादियों द्वारा किया गया था। स्वर्णमन्दिर परिसर की वाहरी परिधि से इनकी दूरी 500 मीटर से लेकर 800 मीटर तक थी और हर विन्दु पर लगभग 10 आतंकवादी मोर्चे पर तैनात थे। निगहवानी और पूर्व-सूचना देने की ये जगहें दरअसल हलकी मशीनगनों, दूसरे स्वचालित हथियारों और भारी गोला-वारूद का शस्त्रागार भी थीं। इन चौकियों को सम्पर्क के वे उपकरण भी मुहैया किये गये थे, जिनके माध्यम से वे हमेशा अपने मुख्यालय के साथ सम्पर्क वनाये रख सकते थे।'

भिंडराँवाले के अपने गाँव के सवसे निकट के कस्वे मोगा में अर्धसैनिक दस्ते सीमा सुरक्षा वल को यह आदेश दे दिया गया था कि वह गुरुद्वारों की घेरावन्दी कर ले और उसे तव तक जारी रखे जव तक उन गुरुद्वारों में शरण लेने वाले आतंकवादी आत्मसमर्पण न कर दें। इन घेरेवन्दियों के शुरू होने के पाँच दिन वाद प्रमुख सिख ग्रन्थियों ने धमकी दी कि अगर घेरावन्दी नहीं हटायी गयी तो वे मोगा तक मार्च करेंगे। गृहमंत्री ने इन ग्रन्थियों को जवाव दिया कि अगर वे घेरावन्दी सचमुच हटाना चाहते हैं तो वे स्वयं इन गुरुद्वारों को आतंकवादियों से खाली करवायें। लेकिन तभी अचानक सरकार ने खुद पटरी वदल ली और घेरावन्दी हटा ली। पंजाव पुलिस के प्रधान पी० एस० भिंडर ने अगले दिन मोगा पहुँचने वाले पत्रकारों को वतलाया कि 16 आतंकवादियों ने आत्मसमर्पण कर दिया था, इसीलिए घेरावन्दी हटा ली गयी। वहरहाल मोगा में किसी आतंकवादी के आत्मसमर्पण करने का कोई सवूत मुझे नहीं मिला। ऐसे सन्देह कि दरअसल यह सरकार का विना शर्त घुटने टेकना था, और भी पुख्ता हुए जव गृहमंत्री ने संसद में कई सवालों के गोलमोल और अस्पष्ट जवाव दिये।

लेफ्टिनेंट-जनरल सुन्दरजी, जिन्होंने आगे चलकर सैनिक कार्रवाई का संचालन किया, का मानना था कि उन्होंने भी भिंडराँवाले और उसके साथियों को पस्त कर डालने के लिए स्वर्णमन्दिर की घेरेवन्दी की वात सोची थी, लेकिन उन्होंने यह इरादा इसलिए छोड़ दिया कि उन्हें इससे पंजाव के गाँवों में वगावत की आशंका थी। यह सवक मोगा की कार्रवाई में मिला था। भिंडराँवाले द्वारा समझौते को ठुकरा देने और सेना द्वारा घेरावन्दी न किये जाने के कारण श्रीमती गाँधी के पास अकाल तखत पर हमला करने के सिवा कोई दूसरा विकल्प नहीं था।

11

...और श्रीमती गाँधी ने 'हाँ' कह दिया

2 जून को श्रीमती गाँधी ने आखिरकार हरी झंडी दिखाने का फैसला कर ही लिया। स्वर्णमन्दिर मे सेना भेजने के राजनीतिक जोखिम बहुत ज्यादा थे। श्रीमती गाँधी जानती थी कि इससे उनका परिवार भी खतरे में पड़ सकता है। प्रधान-मंत्री के सुरक्षा अधिकारियो ने राजीव गाँधी से पहले ही कह दिया था कि वह अपने पुत्र और पुत्री को बोर्डिंग स्कूलो से हटा लें। राहुल दून स्कूल मे पढ़ता था, जोकि भारत का ईटन माना जाता है, और जहाँ खुद राजीव गाँधी ने भी शिक्षा प्राप्त की थी। सलाहकारो ने कहा था कि उनकी सुरक्षा का आश्वासन तभी दिया जा सकता है जब वे प्रधानमंत्री के दिल्ली निवास मे ही रहें।

2 जून को श्रीमती गाँधी के कार्यक्रमो मे भारत-भर से आये हुए पार्टी के जिला-नेताओं के एक सम्मेलन में भाषण देना भी शामिल था। यह सम्मेलन राजीव गाँधी द्वारा कांग्रेस पार्टी को एक राजनीतिक संगठन के रूप मे पुनर्जीवित करने के अभियान का एक हिस्सा था। उन्होने स्वयं इस बात को स्वीकार किया था कि वर्षों तक पार्टी पर उनकी माँ के प्रभुत्व के दौरान पार्टी की जड़े सूख गयी थी। कांग्रेस पार्टी एक ऐसी अवसरवादी जमात से अधिक कुछ नही रह गयी थी, जिसमे शामिल होने के लिए लोग सिर्फ चुनाव के ही वक्त लपकते थे। श्रीमती गाँधी राजीव गाँधी की इस कोशिश मे सहायता देने के लिए बहुत उत्सुक थी, क्योंकि पार्टी का पुनर्गठन उनका पहला राजनीतिक काम होता। फिर भी वह सम्मेलन मे दो घंटे देर से पहुँची। यह सम्मेलन संचार माध्यमो के लिए खुला नही था, फिर भी तीन पत्रकार अन्दर पहुँचने मे सफल हो गये। इनमे से एक, आनन्द सहाय के अनुसार, 'जब श्रीमती गाँधी मंच पर आयी तो लगता था कि जैसे वह लँगडा कर चल रही हैं। उनके कन्धे झुके हुए थे। वह अस्तव्यस्त दिख रही थी। चेहरा लटका हुआ था। बोलते हुए गला रुँध रहा था। मुझे बडा आश्चर्य हुआ और मैंने सोचा कि शायद उनके परिवार का कोई सदस्य गुजर गया है।' मगर जब आनन्द सहाय वापस अपने कार्यालय पहुँचे तो उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि आमतौर पर चुस्त रहने वाली श्रीमती गाँधी की परेशानी और अस्तव्यस्त स्थिति का मतलब यह है कि 'शायद कोई बड़ी कार्रवाई करने का फैसला किया गया है।'

उन्होंने एक वरिष्ठ अधिकारी से मिलने के लिए टेलीफोन किया। अधिकारी ने जवाब दिया, 'मैं जानता हूँ कि आपका मतलब क्या है और आप किस बात की चर्चा करना चाहते हैं। आप घोषणा का इन्तजार क्यों नहीं करते?' घोषणा किये जाने की जानकारी पाने वाले वे अकेले पत्रकार थे।

उस रात आठ बजने से थोड़ा पहले सरकार द्वारा नियंत्रित आकाशवाणी और दूरदर्शन ने अपने कार्यक्रम बीच में रोकते हुए घोषणा की कि 8.30 बजे प्रधानमंत्री का एक विशेष भाषण प्रसारित किया जायेगा। साढ़े आठ बज गये, मगर प्रसारण-सेवाएँ खामोश ही रहीं। दो मिनट बाद प्रधानमंत्री के प्रसारण में देर होने के लिए क्षमायाचना की गयी। आखिरकार श्रीमती गाँधी का भाषण पौन घंटे बाद आरम्भ हुआ। उन्होंने अन्तिम क्षणों तक अपने लिखित भाषण में कई परिवर्तन किये थे। प्रधानमंत्री ने अकाली दल के नेताओं से मोर्चे का अगला चरण वापस लेने का अनुरोध किया, जिसमें वे अगले दिन से ही पंजाब में खाद्यान्न की आवाजाही को रोकने वाले थे। उन्होंने कहा, 'इस आखिरी वक्त भी, मैं अकाली नेताओं से अनुरोध करती हूँ कि वे अपना प्रस्तावित आन्दोलन वापस लेकर उस शान्तिपूर्ण समझौते की रूपरेखा स्वीकार करें जो हमने पेश की है।' उन्होंने समझौते की रूप-रेखा भी प्रस्तुत की कि चंडीगढ़ के बारे में फैसला करने के लिए आयोग गठित किया जायेगा। श्रीमती गाँधी ने कहा, 'सरकार का सुझाव है कि चंडीगढ़, फाजिल्का और अबोहर का समूचा सीमा-विवाद एक आयोग को सौंपा जाये, जिसका फैसला दोनों राज्यों को मान्य होगा। दुर्भाग्य से अकाली दल ने चंडीगढ़ के बदले कुछ क्षेत्रों को हरियाणा को सौंपने या फिर सारा मामला एक आयोग को सौंपने का सुझाव स्वीकार नहीं किया है।' श्रीमती गाँधी ने राष्ट्र को यह नहीं बताया कि सरकार ने आयोग को इस प्रकार प्रभावित करने का भी फैसला किया है कि वह अकालियों के पक्ष में फैसला सुनाये। उन्होंने यह जरूर कहा कि मुख्य समस्या समझौते की शर्तों की नहीं है, बल्कि यह है कि अकाली त्रिमूर्ति—लोंगोवाल, बादल और तोहड़ा—ने मोर्चे का नियंत्रण भिंडरांवाले के हाथों में सौंप दिया है। उन्होंने कहा, 'जो वास्तविकता अब उभर कर आयी है, वह अकाली दल की माँगों पर सरकार द्वारा प्रस्तुत समझौते की शर्तों के पर्याप्त या अपर्याप्त होने की नहीं है, बल्कि यह है कि आन्दोलन अब चन्द ऐसे लोगों के हाथों में है, जिनके मन में देश की एकता और अखंडता के प्रति जरा भी सम्मान या साम्प्रदायिक शान्ति और समन्वय या पंजाब की आर्थिक प्रगति को बनाये रखने की रत्ती-भर भी चिन्ता नहीं है।'

प्रधानमंत्री ने बातचीत को फिर शुरू करने की पेशकश की, मगर इसके साथ ही उन्होंने यह चेतावनी भी दी, कि 'जहाँ सरकार प्रत्येक अनिर्णीत समस्या को बातचीत द्वारा हल करने के लिए वचनबद्ध है, वहीं यह स्पष्ट होना चाहिए कि

कोई भी सरकार समस्याओं के हल के लिए हिंसा और आतंकवाद को स्वीकृति नही दे सकती। जो लोग इस प्रकार की राष्ट्रविरोधी और समाजविरोधी कार्रवाइयो मे लगे है उन्हे इस बारे में किसी गलतफहमी में नही रहना चाहिए।'

श्रीमती गाँधी का अपना राजनीतिक सकट बिलकुल साफ था। ठोस कदम उठाने की उनकी क्षमता पर से भारत की जनता का विश्वास उठता जा रहा था। अपने भाषण मे भी उन्होंने इस बात को दरअसल स्वीकार ही किया। उन्होने कहा, 'पजाब हमारे दिमाग में सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। सारा देश बहुत गहराई से चिन्तित है। इस मामले पर बार-बार विचार-विमर्श होता रहा है, फिर भी जानबूझ कर ऐसी धारणा बनायी जा रही है कि मामला निपटाया ही नही जा रहा है।' प्रधानमत्री ने अपना भाषण एक संवेदना भरे अनुरोध से समाप्त किया, 'आइये, घावों को भरने के लिए हम हाथों मे हाथ दें। जिन्होंने जानें गँवायी हैं, उनके प्रति सबसे अच्छी श्रद्धाजलि यही होगी कि जिस पंजाब से वे प्यार करते थे, जिसके लिए वे काम करते रहे, वहाँ सामान्य स्थितियाँ पैदा हो जायें। पंजाबियों के सभी वर्गों से मेरा अनुरोध है कि खून न बहाओ, घृणा भगाओ। लेकिन प्रधानमंत्री ने यह फैसला कर डाला था कि अगर जरूरत पड़ी तो वह खून भी बहायेंगी।

इस प्रसारण के तुरन्त पश्चात आकाशवाणी ने घोषणा की कि पंजाब मे 'नागरिक अधिकारियो की मदद के लिए' सेना को बुलाया गया है। यह शब्दावली ब्रितानी सैनिक मैनुअल की है, जो अब भी भारतीय सेना की अधिकतर गतिविधियो पर लागू होता है। भारत मे आजादी के बाद कई बार सेना को नागरिक अधिकारियो की सहायता के लिए बुलाया गया है, मगर अब से पहले कभी किसी राज्य सरकार ने सुरक्षा का पूरा जिम्मा सेना के हवाले नही किया था। आकाशवाणी ने यह भी घोषित किया कि पश्चिमी कमान के चीफ ऑफ द स्टाफ लेफ्टिनेंट-जनरल रजीत सिंह दयाल को पंजाब के राज्यपाल का सलाहकार (सुरक्षा) नियुक्त किया गया है और पुलिस जो प्रायः सरकार के लिए ही काम करती है, अब सेना की देखरेख मे काम करेगी। इसका असली मतलब मुझे अगले दिन पता चला जब मैं स्वर्ण मन्दिर गया।

मैंने देखा कि स्वर्णमन्दिर परिसर को बिहार रेजिमेंट के सिपाहियो ने घेर रखा था, जो रातोरात वहाँ आ पहुँचे थे। कर्फ्यू मे ढील दी गयी थी और हिन्दू खुशी-खुशी जवानों (सिपाहियो) से गपशप कर रहे थे। वे सेना को देखकर प्रसन्न थे। उन्हें विश्वास था कि दुःस्वप्न अब समाप्त हो गया है। एक दूकानदार ने मुझसे कहा, 'अब कम-से-कम हम उन सिखो से बदला ले सकेंगे।' जब मैंने पूछा कि उसके विचार मे सेना अब क्या करेगी, तो वह बोला, 'वे निश्चित रूप से अब अन्दर जायेंगे, नही जायेंगे क्या?' हिन्दू दूकानदार की बात सही निकली।

भारत के राष्ट्रपति जैल सिंह, जो अपने पद के कारण भारतीय सेना के प्रधान

सेनापति भी हैं, को इस बात की जानकारी नहीं दी गयी कि सेना स्वर्णमन्दिर में उस व्यक्ति को गिरफ्तार करने या मारने जा रही है, जिसे उन्होंने एक नामालूम प्रचारक से उठा कर नेता बनाया था और जो अब भारत की एकता के लिए खतरा पैदा कर रहा था। राष्ट्रपति उत्तरपूर्व की अपनी यात्रा बीच में ही रोक कर वापस आये, क्योंकि वे पंजाब के देहातों में बढ़ती हुई हत्याओं से चिंतित थे, और 30 मई को श्रीमती गाँधी ने बलुआ पत्थरों के बने विशाल राष्ट्रपति भवन में उनसे मुलाकात की। मगर जैलसिंह के अधिकारियों के अनुसार, उन्होंने स्वर्णमन्दिर में सेना भेजने की सम्भावना का कोई संकेत नहीं दिया। उन्होंने पौने दो घंटे तक अकालियों के साथ समझौते के नये फार्मूले पर बातचीत की।

श्रीमती गाँधी के भाषण के एक दिन पहले अर्धसैनिक दस्तों और भिंडराँवाले के समर्थकों के बीच गोलीबारी शुरू हो गयी थी, जो दिन में 12 बजकर 40 मिनट से शाम सात बजे तक चलती रही। केन्द्रीय आरक्षी पुलिस के एक अनुभवी अधिकारी ने मुझे बताया कि 'मैंने पहले कभी इतनी तेज गोलीबारी का सामना नहीं किया।' अगले दिन मैंने स्वर्णमन्दिर और सराय परिसर में गोलियों के निशाने देखे। लंगर भवन पर भी गोलियों के निशान थे, जहाँ गोलियों के चलने के समय भिंडराँवाले प्रातःकालीन दरबार कर रहा था। लोंगोवाल के कार्यालय की खिड़की के नीचे भी निशान थे। स्वर्णमन्दिर प्रांगण के बीच में स्थित सरोवर के चारों ओर बना संगमरमर का फर्श कई स्थानों पर छिल गया था और क्रुद्ध सिखों ने मुझे स्वर्णमन्दिर में भी लाल गोलों से घेरे गये गोलियों के सूराख दिखाये। मगर इनमें से कई सूराख इतने बड़े थे कि वे गोलियों से नहीं बन सकते थे। वे भिंडराँवाले के दौर से भी बहुत पहले के मामूली टूटफूट के निशान लगते थे हालाँकि उन्हें भी तत्परतापूर्वक लाल रंग से घेरा गया था।

केन्द्रीय रिजर्व पुलिस के साथ यह गोलीबारी की घटना सेना द्वारा मन्दिर-प्रांगण में प्रवेश से चार दिन पहले हुई थी। सैनिक विशेषज्ञों के अनुसार ऐसा जान-बूझ कर भिंडराँवाले की गोलियाँ बाहर निकलवाने के लिए किया गया था, जिससे उसकी सही स्थिति और उसके हथियारों के बारे में अनुमान लगाया जा सके। अगर ऐसा था तो यह प्रयास बहुत सफल नहीं रहा। जब सेना आखिरकार अन्दर गयी तो स्वयं जनरलों के अनुसार वे हैरान रह गये, और उन्हें इतने बड़े पैमाने पर मोर्चा लेना पड़ा जितने की उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। मेरा विचार है कि केन्द्रीय आरक्षी पुलिस का गोलीचालन भिंडराँवाले को डराकर समर्पण के लिए मजबूर करने की एक कोशिश थी और यह कोशिश चार दिन बाद सेना के प्रवेश करने के वक्त तक जारी रखी गयी।

मैं भिंडराँवाले से गोलीकांड के अगले दिन मिला। वह अकाल तखत में था और उस दिन लंगर भवन में गया ही नहीं था, हालांकि उसने मुझे बताया कि मैं

प्रात.कालीन संगत फिर शुरू करूँगा। जब मैंने उससे गोलीकांड के वारे मे पूछा तो उसने उत्तर दिया, 'गोलीवारी का मतलब यह है कि सरकार स्वर्ण मन्दिर का अपमान करना चाहती है और सिखो के चेहरो या उनकी जीवन-पद्धति को वर्दाश्त नही करना चाहती।' उसने दावा किया कि अगर सेना ने मन्दिर में प्रवेश करने की कोशिश की तो हम उन्हे 'करारा जवाव' देंगे। और करारा जवाव उसने सेना को दिया भी। लेकिन अव भिंडरांवाले पहले की तरह संयत नही था। आमतौर पर वह तसवीर खिंचवाने का बड़ा शौकीन था। लेकिन इस बार दूरदर्शन की एक टीम ने जव उससे कमरे में रोशनी की व्यवस्था हो जाने तक इन्तजार करने का अनुरोध किया तो वह हड़बड़ाया हुआ लगा। उसने गुस्से से कहा, 'जल्दी करो। मेरे पास और भी ज्यादा जरूरी काम हैं।'

अगले दिन भिंडरांवाले ने अपना संतुलन वापस प्राप्त कर लिया था। सेना द्वारा मन्दिर को घेरने के बाद उससे मिलने वाले पत्रकारो में से एक थे सुभाष किरपेकर। उसने किरपेकर से कहा, 'सेना उसी तरह इस जगह के चारो ओर पड़ी रहेगी, जैसे पिछले दो साल से केन्द्रीय आरक्षी पुलिस और सीमा सुरक्षा बल पड़े थे।' उसने इस बात को कुछ स्पष्ट करते हुए कहा, 'उनके मन्दिर मे प्रवेश के सही वक्त और नतीजों के बारे मे अभी से कुछ कहना कठिन है। उनके व्यवहार और इरादों के बारे मे कुछ दिन मे पता चलेगा।' किरपेकर ने भिंडरांवाले से पूछा, 'क्या सेना सख्या मे आप पर भारी नही पड़ेगी? खासतौर पर तब जबकि उनके पास ज्यादा शक्तिशाली हथियार हैं?' तो सन्त ने एक योग्य प्रचारक की तरह एक कहावत सुनायी, 'भेड़ें शेरों से हमेशा तादाद मे ज्यादा होती हैं। लेकिन एक शेर हजार भेड़ों को मार सकता है। जब शेर सोता है तो पक्षी चहचहाते रहते हैं और शेर जागता है तो पक्षी उड़ कर भाग जाते हैं। सन्नाटा छा जाता है।' अन्त तक वह इस बात पर डटा रहा कि जिन हत्याओ की वजह से सेना स्वर्णमन्दिर के दरवाजे तक आ गयी है, उनके लिए वह जिम्मेदार नही है। जब किरेपकर ने पूछा कि हिंसा को रोकने के लिए क्या किया जाना चाहिए तो उसका जवाब था, 'यह बात उनसे पूछो, जो इसके जिम्मेदार हैं।' जब यह पूछा गया कि क्या वह मौत से डरता है तो उत्तर मिला, 'सिख मौत से नही डरता और जो मौत से डरता है, वह सिख नहीं है।'

मेजर-जनरल शाहबेग सिंह, जिसने स्वर्णमन्दिर की सुरक्षा की योजना बनायी थी, उसी कमरे मे था। भारतीय सेना मे कई वर्षो के अनुभव के कारण इस अपमानित जनरल को इस बात का एहसास जरूर था कि सेना क्या करने जा रही है। जब किरपेकर ने उससे पूछा कि सैनिक कार्रवाई कब शुरू हो सकती है तो उसने कहा, 'हो सकता है, आज रात को।'

मेजर-जनरल शाहबेग सिंह को आखिरी दम तक लड़ना था, मगर उसी सुबह

स्वर्णमन्दिर से करीब 200 सिख युवक उस समय भाग गये जब अधिकारियों ने स्वर्णमन्दिर के संस्थापक गुरु अर्जुनदेव का बलिदान दिवस मनाने के लिए कर्फ्यू हटाया। अकाल तखत के पीछे रहने वाले ज्ञानी बख्शीशसिंह ने उन्हें जाते देखा था। गुरु पर्व मनाने के लिए उसने लोगों को शर्बत पिलाने के लिए प्याऊ लगायी थी। उसका कहना है कि वे युवक बागवाली गली के रास्ते भागे, जो सराय के पीछे से निकलती है। इसी सराय में भिंडराँवाले अकाल तखत में जाने से पहले रहा करता था। ज्ञानी के अनुसार, आसपास की गलियों में रहने वाली महिलाएँ इन युवकों को घरों के अन्दर ले गयीं, जिससे वे परम्परागत सिख वेश-भूषा को बदल कर बुशर्ट और जीन या पैंट आदि में बाहर आयें। इन औरतों ने सिख कपड़ों को जला दिया जिससे पुलिस या सेना इन्हें खोज न सके। ये युवक ज्ञानी बख्शीश सिंह के स्टाल के सामने रुके, जहाँ उसने उन्हें केसरिया रंग का शर्बत दिया, क्योंकि उसे आमतौर पर इस्तेमाल किया जाने वाला लाल रंग नहीं मिला था। युवकों ने ज्ञानी से हँसी-मजाक करते हुए कहा, 'ज्ञानी जी, आपने तो हमें शहीदों का रंग पिला दिया है।' ज्ञानी ने कहा कि बहुत-से युवकों के पास नोटों की गड्डियाँ थीं।

जब युवकों के भागने की खबर सैनिक जनरलों तक पहुँची तो वे आगबबूला हो गये। उन्होंने फौरन कर्फ्यू लागू करने का आदेश देकर वरिष्ठ स्थानीय प्रशासक जिला कमिश्नर को बदलवा दिया, जो पिछले कई महीनों से सरकार से कहीं अधिक भिंडराँवाले का वफादार दिखायी देता था। ये भागे हुए युवक ज्यादातर अपराधी या वामपंथी उग्रवादी थे, जिन्हें आमतौर पर नक्सलवादी कहते हैं। जो लोग मन्दिर में ही रहे और अन्त तक लड़ते रहे, उनमें से अधिकतर थे आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन के सदस्य या भिंडराँवाले के अपने 'दमदमी टकसाल' के अनुयायी। कुछ सिख, जो उस समय सरायों में ही थे, कहते हैं कि भिंडराँवाले ने अपराधियों और नक्सलियों को जानबूझ कर बाहर भेजा जिससे वे देहातों में संघर्ष जारी रख सकें। क्योंकि सेना का एक मकसद पंजाब के गाँवों में सक्रिय आतंकवादियों को भी पकड़ना था, इसलिए उन 200 सिख युवकों को भाग जाने देना एक गम्भीर भूल थी। सरकारी आँकड़ों के अनुसार भिंडराँवाले के आतंकवादियों ने पहले ही, अकाली मोर्चा शुरू होने के 22 महीनों में 165 हिन्दुओं और निरंकारियों को मारा था। वे 39 सिखों को भी मार चुके थे, क्योंकि उन्होंने भिंडराँवाले का विरोध किया था। इस हिंसा में, जिसमें कुल मिलाकर 410 लोग मारे गये, तथाकथित पुलिस-सिख मुठभेड़ों, दंगों और एक रेलवे क्रॉसिंग पर मरे मोर्चे के 34 समर्थक भी थे। घायलों की संख्या 1180 हो गयी थी।

ऑपरेशन ब्लू स्टार का नेतृत्व 9वें डिवीजन के कमान्डर मेजर-जनरल कुलदीप सिंह ब्रार ने किया। भिंडराँवाले इस सुन्दर, पके बालों वाले प्रतिष्ठित योद्धा से ज्यादा और किससे नाराज हो सकता था: वह भिंडराँवाले के इलाके

और उसी की जात का सिख था और उसने भिंडरांवाले की दृष्टि में सबसे घोर पाप किया था—यानी अपनी दाढ़ी-बाल कटवा लिये थे। 30 मई को ब्रार को अपनी डिवीजन के साथ मेरठ से अमृतसर आने का आदेश दिया गया था। मेरठ में ही अँग्रेजो के समय सैनिक बगावत हुई थी। अगले दिन, केन्द्रीय आरक्षी पुलिस और भिंडरांवाले के समर्थको के बीच गोलीबारी से पहले, ब्रार को अमृत सरोवर की परिक्रमा करते देखा गया। उन्होंने देखा होगा कि गुरु अर्जुन का शहीदी दिवस मनाने के लिए आ रहे लोगों के कारण पूरा मन्दिर-प्रागण लोगो से भरा था। सिख इस समारोह पर विशेष रूप से उत्सुक थे, क्योंकि यह चन्द्रमास की पंचमी थी, जो अमृत सरोवर मे नहाने के लिए पवित्र दिन माना जाता है। जनरल ब्रार ने यह भी महसूस किया होगा कि दोनो परिसरों—स्वर्णमन्दिर और सराय—में बडी संख्या में यात्रियों के कारण भिंडरांवाले को, निर्दोष व्यक्तियो को मारे या क्षति पहुँचाये बिना, बाहर निकालना बहुत कठिन होगा। लेकिन कारंवाई चालू रही।

भारतीय सेना के दो नामी अवकाश-प्राप्त जनरलो ने गुरु अर्जुन के शहीदी दिवस पर सैनिक कारंवाई शुरू करने की आलोचना की है। ढाका सैनिक कारंवाई के हीरो लेफ्टिनेंट-जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा ने बस इतना कहा है कि यह 'गलत वक्त था' जब कि लेफ्टिनेंट-जनरल हरबख्श सिंह, जो 20 वर्ष तक सिख रेजिमेंट के कर्नल-इन-चीफ रहे हैं, का कहना है कि यही फैसला कुछ सिख सिपाहियों द्वारा बगावत करने के लिए एक प्रेरक तत्व बना। एक सार्वजनिक वक्तव्य में उन्होंने कहा कि 'घोर धार्मिक उत्पीड़न के सामने महान बलिदान का एक प्रतीक होने के कारण गुरु अर्जुन का बलिदान-दिवस सिख सैनिको के लिए विशेष महत्व रखता है।'

सिखो के ऐसे पवित्र दिवस पर, निर्दोष यात्रियो को नुकसान पहुँचाने का जोखिम लेकर भी सैनिक कारंवाई करने के बारे मे सरकार की दलील यह थी कि भिंडरांवाले पंजाब के गाँवो मे हिन्दुओं को मारने का एक बाकायदा अभियान चालू करने वाला था। गृह मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी ने सतीश जैकब को बताया कि खुफिया विभाग ने भिंडरांवाले और शाहबेगसिंह द्वारा अपने अनुयायियो को भेजे गये सन्देशों को सुन लिया था, जिनमे उन्होंने 5 जून से सामूहिक हत्याओं का सिलसिला जारी करने का आदेश दिया था। उन्होने यह भी कहा कि भिंडरांवाले ने सभी पंजाबी सासदों और विधायकों की हत्या की योजना बनायी थी। हालांकि सरकार ने कभी हिन्दुओं की इस सम्भावित सामूहिक हत्या के आरोप के बारे मे ठोस सबूत प्रस्तुत नही किये, फिर भी यह सच है कि हत्याओ का सिलसिला खतरनाक ढंग से बढ़ता जा रहा था। श्रीमती गांधी के प्रसारण के पहले 24 घंटो मे 23 व्यक्ति मारे गये थे।

3 जून की रात दोबारा कर्फ्यू लागू होने के बाद सेना ने पहली बार गोलीबारी शुरू की। मैं जिस होटल में ठहरा था, वहाँ से गोलियों की आवाज तो सुन रहा था, लेकिन मन्दिर के चारों ओर मकानों के कारण कुछ देख पाना मुमकिन नहीं था। दूसरे होटल में ठहरे पत्रकारों का कहना था कि मन्दिर-प्रांगण में तेज रोशनी थी। मैंने समझा कि लड़ाई शुरू हो गयी है, मगर मेरा अन्दाज सही नहीं था। अगले दिन गोलियाँ चलनी बन्द हो गयीं। यानी यह सारी कार्रवाई विपक्ष को कमजोर करने की एक कोशिश भर थी। मेजर-जनरल ब्रार और उनके वरिष्ठ अधिकारी अब भी यह उम्मीद लगाये बैठे थे कि वे भिंडरांवाले को उसकी किलेबन्दी से बाहर खदेड़ने में सफल होंगे।

भिंडरांवाले के पुराने संरक्षक गुरचरण सिंह तोहड़ा भी यही सोचते थे कि उसे हथियार डालने पर बाध्य किया जा सकता है। जब गोलियाँ चलनी बन्द हुईं तो वह सराय परिसर से निकलकर लंगर भवन—जहाँ भिंडरांवाले को प्रातःकालीन सभा में होना चाहिए था—और गुरुद्वारा मंजी साहब—जहाँ डरे हुए यात्री छोटे-छोटे गुटों में बैठे थे— से होते हुए स्वर्णमन्दिर क्षेत्र में पहुँचे। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष तोहड़ा परिक्रमा से होते हुए अकाल तखत तक आये। इसकी खिड़कियाँ और तोरण ईंटों और रेत की बोरियों से बन्द कर दिये गये थे। युवा सिखों ने धर्मस्थल के भीतर और सभी इमारतों में मोर्चे सम्भाल रखे थे। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अध्यक्ष को भिंडरांवाले के पास ले जाया गया। उन्होंने उसे समझाने का प्रयास किया कि मुकाबला व्यर्थ है, क्योंकि सेना ने निश्चय कर लिया है कि यदि वह समर्पण नहीं करता तो या तो उसे गिरफ्तार कर लिया जायेगा या वह मारा जायेगा। लेकिन भिंडरांवाले ने गुस्से में तोहड़ा को यह कहते हुए चले जाने के लिए कहा कि वे तो श्रीमती गांधी के एजेंट हैं। तोहड़ा अब भिंडरांवाले की नजर में अकाली त्रिमूर्ति के अन्य दो सदस्यों से बेहतर नहीं रह गये थे। दो दूसरे सदस्य थे—मोर्चा-डिक्टेटर लोंगोवाल, जो अभी मन्दिर में ही थे और अकाली विधायक दल के नेता प्रकाशसिंह बादल, जो अमृतसर से मीलों दूर अपने फार्म पर थे।

तोहड़ा की इस अन्तिम कोशिश से लगता है कि अब वे और लोंगोवाल सरकार के साथ सहयोग करने लगे थे। उन्होंने सेना से सम्पर्क बनाया होगा, वरना तोहड़ा को समर्पण के लिए समझौता कराने का अधिकार नहीं मिल सकता था। तोहड़ा को यह भी मालूम रहा होगा कि सराय के कुछ सुरक्षित क्षेत्र से अकाल तखत तक आने के दौरान सेना गोलियाँ नहीं चलायेगी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति का यह अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति नहीं था कि निर्णायक लड़ाई के दौरान अकाल तखत में फँसने का जोखिम उठाता।

भिंडरांवाले को अब तक मालूम हो गया होगा कि खेल खत्म हो चुका है, फिर

भी उसने दुखद अन्त तक लड़ने की क्यों ठानी ? उसे या तो मरना था या फिर कलंक मे जीना था। अगर उसने आत्मसमर्पण किया होता तो वह एक कायर डींगबाज के रूप मे नंगा हो जाता। उसने अपनी नाक बचाने का कोई इज्जत-दार रास्ता ही नही छोड़ा था। वैसे भिंडरांवाले के कुछ धार्मिक उद्देश्य जरूर थे। अपनी खामियों के बावजूद वह उत्साही आदमी था, जो धर्म की बलिदानी परम्परा मे विश्वास करता था—बलिदान की वही परम्परा जिसका समारोह आत्मसमर्पण के इस आखिरी मौके के दिन ही, गुरु अर्जुन की शहादत के रूप मे मनाया जा रहा था। भिंडरांवाले को स्वर्णमन्दिर की रक्षा के सम्मानित उद्देश्य के लिए बलिदान का अवसर मिल रहा था। यह बलिदान उसकी स्मृति को जो गरिमा प्रदान करता उसकी कल्पना उसने जरूर की होगी। उसने जान लिया होगा कि अगर उसने समर्पण किया तो दुनिया उसे भूल जायेगी और अगर वह स्वर्णमन्दिर की रक्षा मे जान दे देगा तो उसे सिख इतिहास के पन्नों में सदा के लिए याद किया जाता रहेगा। अब तक भिंडरांवाले भारत का कट्टर दुश्मन बन गया था। पत्रकार सुभाष किरपेकर के साथ अपनी अन्तिम भेंटवार्ता मे उससे पूछा गया, 'क्या आपकी मान्यता है कि सिख भारत में नही रह सकते ?' उसने उत्तर दिया, 'जी हाँ, वे न तो भारत में रह सकते हैं, न भारत के साथ रह सकते हैं। यदि उनसे बराबरी का व्यवहार किया जाये तो शायद यह सम्भव हो, मगर मैं यह साफ कह दूँ कि मेरे विचार मे यह सम्भव ही नही है।' भिंडरांवाले को अच्छी तरह पता था कि सिख स्वर्णमन्दिर मे कितनी गहरी आस्था रखते हैं। वह जानता था कि स्वर्णमन्दिर पर हमले से भारत की एकता में कितने तनाव पैदा होंगे। वह यह जानता था, क्योंकि शाहबेग सिंह ने उससे कहा कि वह तब तक मोर्चा सम्भाल सकते है जब तक कि सेना अकाल तखत या सम्भवतः स्वर्णमन्दिर तक को भारी नुकसान पहुँचाने पर मजबूर न हो जाये। इस तरह भिंडरांवाले के सामने मरने के लिए एक बहुत उपयुक्त मकसद था। लेकिन जिंदा रहने के लिए कोई मकसद नही बचा था। यही कारण है कि उसने आत्मसमर्पण करने से इनकार किया।

लोंगोवाल और तोहड़ा ने कार्रवाई आरम्भ होने के पहले आत्मसमर्पण क्यों नही किया ? वे निश्चय ही शहीदों की मिट्टी से नही बने थे। उन्होने यह बात उसी समय दिखा दी, जब सेना ने सराय परिसर मे प्रवेश किया। इन दो राजनीतिको ने पहले इसीलिए आत्मसमर्पण नही किया कि सेना ने उन्हें मौका ही नही दिया था। जनरलो ने बाद मे कहा कि उन्होंने क्षेत्र को घेर कर आत्मसमर्पण के लिए कई बार अपील जारी की। मगर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के सचिव भानसिंह ने सतीश जेकब को बताया कि इन घोषणाओ को सराय के अन्दर नही सुना जा सका। एक बार लोंगोवाल और तोहड़ा ने रेडियो पर यह घोषणा सुनी कि लोगो को आत्मसमर्पण का मौका देने के लिए दो घंटे तक कर्फ्यू हटा लिया

जायेगा। उन्होंने भानसिंह को पुलिस उपाधीक्षक के पास मोर्चे में शामिल होने आये अकाली दल समर्थकों और यात्रियों के समर्पण के लिए वातचीत करने भेजा। भानसिंह सराय प्रांगण से निकला, मगर ज्यों ही वह वाग वाली गली के अन्त तक पहुँचा, तेज गोलीवारी शुरू हो गयी। वह वापस भाग आया। ये दो नेता अपनी ओर से आत्मसमर्पण की वात नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे वाहर से सन्देश तो प्राप्त कर सकते थे, लेकिन अपनी ओर से भेज नहीं सकते थे।

19-वर्षीय महिला रणवीर कौर ने, जो अपने धार्मिक स्कूल के वच्चों के साथ गुरु रामदास सराय के एक कमरे में ठहरी थी, मुझे वताया कि उसने सेना द्वारा सराय छोड़कर आत्मसमर्पण करने की कोई अपील नहीं सुनी। जव मैंने पूछा कि क्या उसने कभी वाहर जाने की कोशिश की तो उसने उत्तर दिया, 'हम सोच रहे थे कि हम अन्दर अधिक सुरक्षित हैं। हमने यह सोचा ही नहीं था कि वे मन्दिर पर आक्रमण करेंगे।'

यात्री वन्दूकों, मशीनगनों और मोर्टारों की गोलीवर्षा से आतंकित थे। वे नहीं जानते थे कि गोली चलनी कव वन्द होगी और कव फिर चालू। न तोहड़ा और न लोंगोवाल कोई नेतृत्व प्रदान कर पा रहे थे। इसलिए जनरलों का यह सोचना नादानी ही थी कि लाउडस्पीकरों से जारी की गयी अपीलों का कोई असर होगा। सराय क्षेत्र को अन्ततः मन्दिर पर आक्रमण के दौरान ही खाली करवाया गया। इस कार्रवाई में वहुत-से निर्दोष व्यक्ति मारे गये, वहुत-से घायल हुए और वहुतों को गलतफहमी में पकड़ा गया। यह व्लू स्टार कार्रवाई का सवसे गरिमाहीन काम था। त्रासदी केवल आक्रमण के पहले सराय को खाली करवाने से ही टाली जा सकती थी। सराय को पहले खाली करवाने का मतलव था कि दोनों परिसरों को अलग किया जाये, मगर भिंडरांवाले के आदमी और उनके पुराने प्रतिद्वन्द्वी वव्वर खालसा न सिर्फ सराय क्षेत्र पर निगरानी रखे हुए थे, वल्कि स्वयं सराय में भी मोर्चा लगाये थे। भिंडरांवाले ने अपने दुभाषिये हरमन्दिर सिंह संधू को लोंगोवाल के कार्यालय में इसलिए भेजा था कि वे आत्मसमर्पण न करें। इसलिए दोनों परिसरों को अलग करने की कोशिश में सराय क्षेत्र में युद्ध छिड़ जाता। वह लड़ाई आसानी से मन्दिर क्षेत्र तक भी फैल सकती थी, और इससे विना किसी तैयारी के ही सेनाओं को भिंडरांवाले के गढ़ में घुसने पर मजवूर होना पड़ता।

सवसे गम्भीर समस्या थी समय की। दोनों परिसरों को अलग करने से असल लड़ाई में देर हो जाती। इसलिए कार्रवाई के मुख्य संचालक लेफ्टिनेंट-जनरल सुन्दरजी ने महसूस किया कि वे और जोखिम नहीं उठा सकते। 3 जून को सेना द्वारा घेरावन्दी करने के समय से ही उनके दिमाग में रफ्तार की वात छा गयी थी, क्योंकि उन्हें देहात में वगावत का भय था। लेफ्टिनेंट-जनरल सुन्दरजी ने सैनिक कार्रवाई के वाद इन आशंकाओं के वारे में प्रेस को वताया भी :

हम जानते थे कि उनकी निर्दोष व्यक्तियों को इस्तेमाल करने की योजना है —धार्मिक वृत्ति के निर्दोष देहाती लोगों को। वह योजना थी उन भोले-भाले लोगो को हजारों की संख्या मे स्वर्णमन्दिर में आने और बाहर-भीतर दोनों ओर से सारे क्षेत्र मे भर देने की, जिससे आतकवादियों को बाहर निकालने की सैनिक कार्रवाई में काफी अड़चनें पैदा हो जायें। यह पक्की सूचना थी। हमने देहातो मे जाने वाले संदेशों को सुना था। अतः घेराबंदी की मीयाद बढाने का नतीजा निकलता कि ऐसी सामूहिक गतिविधि बढ जाती।

देहातों में सिखो से होने वाले खतरो के बारे मे सेना के पास पर्याप्त कारण थे। स्वर्णमन्दिर को घेरने की अगली रात गाँवो के सिखो की एक भीड़ अमृतसर के सुल्तानविंड क्षेत्र में चढ आयी और हिन्दुओ की दूकानें और छोटे-मोटे कारखाने जला डाले। सेना द्वारा लागू किया गया कठोर कर्फ्यू भी प्रभावहीन सिद्ध हुआ था। ज्यों-ज्यों तनाव बढता गया, सैनिक हैलिकाप्टरो ने कई स्थानो पर क्रुद्ध सिखो को इकट्ठे होते देखा। सैनिको ने उन्हे तितर-बितर करने मे सफलता तो जरूर हासिल की, मगर जनहानि के बिना नही।

तीन जून की रात को पंजाब का सम्पर्क शेष भारत से काट दिया गया और पजाब के अन्दर सारी गतिविधियाँ बन्द करदी गयी, जिससे बगावत की आशका न रहे। रेल, बस, हवाई सेवाएँ स्थगित कर दी गयी, टेलीफोन लाइनो और टेलेक्स सेवाओं को बन्द कर दिया गया और पाकिस्तान से लगी सीमा सील कर दी गयी। स्वर्णमन्दिर ही एकमात्र ऐसा गुरुद्वारा नही था जिसे घेरा गया हो। उसी रात सेना ने 37 सिख मन्दिरो पर घेरा डाला, जहाँ उन्हे भिंडरांवाले के अनुयायियो के छिपने का सन्देह था। पटियाला मे गुरुद्वारा दुखनिवारन के अन्दर से जमकर मुकाबला किया गया, इसलिए सेना ने उस पर धावा बोलने का फैसला कर लिया। स्वर्णमन्दिर की तरह ही गुरुद्वारा दुखनिवारन की कार्रवाई का नेतृत्व भी एक सिख मेजर-जनरल गुरदयाल सिंह ने किया, जिसने अपनी दाढी कटा दी थी। सेना का कहना है कि पटियाला गुरुद्वारा मे 20 व्यक्ति मारे गये, जबकि पटियाला के डाक्टरो का कहना है कि कम-से-कम 56 व्यक्ति मारे गये। कुल मिलाकर 37 गुरुद्वारो में पकड़े गये या मारे गये आतंकवादियों की संख्या से सेना को निराशा हुई। या तो भिंडरांवाले के आदमी इतने दूर-दूर तक फैले ही नही थे या फिर उनमे से अधिकतर सेना के आने से पहले भाग चुके थे।

तीन जून की रात क्योंकि सभी सचार-साधनो को बन्द कर दिया गया था, इसलिए बाहर की दुनिया को पता ही नही चल रहा था कि पजाब मे हो क्या रहा है। पत्रकारो को अपने ही होटलो मे रुकने का आदेश दिया गया। इसलिए हम लोग रिट्ज होटल के लान में लगभग सारा दिन बैठे-बैठे सैनिक-पुलिस कार्रवाई के बारे मे अपने ट्रांजिस्टर-रेडियो के एफ० एम० बैंड पर सुनते रहे। सेना को ए:

वड़ी कार्रवाई के लिए तैनात किया जा रहा था। मगर कितनी वड़ी कार्रवाई, इसका पूरा एहसास उस समय मुझे नहीं था। मैंने एक अफसर को यह कहते सुना कि तोपखाना सही स्थान पर पहुँच गया है। मुझे विश्वास नहीं आ रहा था कि अमृतसर के ऐसे घने इलाके में सेना तोपों का इस्तेमाल करेगी। मैंने सोचा कि शायद तोपखाने के सिपाहियों को पैदल सैनिकों की तरह मन्दिर के रास्ते वन्द करने के लिए इस्तेमाल में लाया जा रहा है। मगर यह मेरी भूल थी।

उस रात, यानी सैनिक कार्रवाई की रात से पहले, पुलिस अधीक्षक सीतलदास रिट्ज होटल आये और उन्होंने वताया कि हम लोगों को पुलिस वसों के द्वारा पंजाव से वाहर भेजा जा रहा है। अधिकतर पत्रकारों ने उसकी वात मान ली, मगर हम में से कुछ ने अगले दिन तक रुकने का फैसला किया, जिससे यह देख लें कि अमृतसर और शेप पंजाव में क्या हो रहा है। जवरदस्त हंगामा हुआ। कुछ पत्रकारों ने सीतलदास का ही समर्थन किया। मुझे उनसे सहानुभूति थी, क्योंकि सारे दिन सेना ने उन्हें परेशान किया था। सेना पुलिस के प्रति अपनी घृणा खुले आम प्रकट करती रहती थी। जव एक वरिष्ठ सैनिक अधिकारी को यह पता चला कि एक विदेशी पत्रकार अभी भी अमृतसर में है, तो उसने पुलिस पर आरोप लगाया कि वह प्रेस को सैनिक योजनाओं की जानकारी देते रहते हैं। मैंने फिर भी सोचा कि यह विवादास्पद जोखिम उठाने लायक है और मैंने पुलिस अधिकारी से चिल्ला कर कहा, 'मैं नहीं जा रहा हूँ, चाहे आप मुझे गिरफ्तार ही क्यों न कर लें।' वह वापस चिल्लाया, 'जी हां, मैं आपको गिरफ्तार कर लूंगा। तुम अंग्रेज समझते हो कि तुम हम पर अव भी राज कर सकते हो और हमें वताओगे कि हमें काम कैसे करना चाहिए!' यह एक परेशानी में डालने वाली हालत थी, क्योंकि स्वतंत्र भारत में 16 साल काम करने के वाद मैं हरगिज साम्राज्यवादी कहलाना नहीं चाहता था। मगर भारत एक ऐसा देश है, जहाँ आवेश जितनी जल्दी आता है उतनी ही जल्दी चला भी जाता है। सीतलदास ने कहा कि वह सेना से पूछ कर वतायेंगे। एक व्रिगेडियर रिट्ज होटल आया और यह तय पाया गया कि हम विलकुल सवेरे चले जायेंगे। इस वात से सभी पक्षों की इज्जत रह गयी और सीतलदास और मैंने इस सुखद समझौते का मिलकर स्वागत किया। मैंने यह खुशी रिट्ज होटल के भारी-भरकम और हँसमुख मेजवान टाइनी मेहरा के साथ आखिरी वीयर-वोतलों से मनायी तो सीतलदास ने हलके पेय से, क्योंकि वह 'ड्यूटी' पर थे।

सरकारी आदेश यह था कि सिर्फ विदेशी पत्रकारों को पंजाव से वाहर जाना होगा, क्योंकि सेना द्वारा सुरक्षा का उत्तरदायित्व सम्भालने के वाद नयी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विदेशियों के पंजाव में रहने पर प्रतिवन्ध लगा दिया गया था। हमारे जाने से पहले इस नियम को उन भारतीयों पर भी लागू किया गया

12

ऑपरेशन ब्लू स्टार

5 जून की शाम को 7 बजे बजे भारतीय सेना की 16वीं कैलेवरी रेजिमेंट के टैंक स्वर्णमन्दिर परिसर की ओर बढ़ने लगे। वे जलियाँवाला बाग के पास से गुजरे, जहाँ जनरल डायर ने करीब 400 भारतीयों का कत्लेआम किया था। इस नर-संहार ने भारत पर शासन जारी रखने की ब्रिटेन की आशाओं पर एक घातक प्रहार किया था, और यह स्वतंत्रता-आन्दोलन का प्रमुख प्रेरणा-स्रोत बन गया था। जब श्रीमती गाँधी को सूचना दी गयी कि ऑपरेशन ब्लू स्टार शुरू हो गया है, तो उनके मन में यह शंका उठी होगी कि कहीं यह कार्रवाई सिखों की आजादी के लिए आन्दोलन को निर्णायक प्रेरणा न प्रदान करे, जिसका समर्थन उस समय भिंडरांवाले के अनुयायियों, ब्रिटेन, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में रहने वाले सिखों के छोटे-छोटे गुटों को छोड़कर शायद ही कोई और करता था।

स्वर्णमन्दिर परिसर में प्रवेश करने से पहले लेफ्टीनेंट-जनरल ब्रार ने अपने सैनिकों को सम्बोधित किया था। वह मिले-जुले (कई समुदायों के) सैनिकों की सेना का नेतृत्व कर रहे थे, जो कि आधुनिक भारतीय सेना का ही प्रतिनिधित्व करती थी, क्योंकि उसने सिर्फ 'जुझारू जातियों' के लोगों को ही सेना में भर्ती करने की पुरानी परम्परा छोड़ दी है। उनमें डोगरे थे और भारत के उत्तरी सीमांत पर हिमालय की तराइयों में रहने वाले कुमाऊँनी थे, रेगिस्तान के लड़ाके राजपूत थे, तमिलनाडु के मद्रासी थे, मध्य भारतीय जन-जातियों से आये हुए बिहारी थे और कुछ सिख भी थे। जनरल ब्रार ने अपने जवानों से कहा कि स्वर्णमन्दिर परि-सर में प्रवेश करना ही अब 'अन्तिम विकल्प' है और 'देश को बन्धक बनाने वाली गतिविधियों को खत्म करने के लिए उन्हें यह करना ही होगा।' भिंडरांवाले को 'शत्रु' घोषित किया गया और सैनिकों को बताया गया कि उसने 'मन्दिर पर कब्जा जमा रखा है।' प्रत्येक व्यक्ति को बताया गया कि जब तक स्पष्ट आदेश न हों, तब तक वे स्वर्णमन्दिर या अकाल तखत पर गोली न चलायें।

करीब तीस वर्ष पहले ब्रार ने लेफ्टीनेंट के रूप में मराठा लाइट इनफेंट्री में प्रवेश किया था। उन्होंने बंगलादेश युद्ध में लेफ्टीनेंट-जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के अधीन भाग लिया था, जो बाद में ब्लू स्टार कार्रवाई के सबसे कटु आलोचकों में

से एक थे। ब्रार को वीरता के लिए सम्मानित किया गया था। उन्होंने प्रतिरक्षा मंत्रालय के एक महत्वपूर्ण पद पर काम किया था और अब वे थल सेना की एक अक्खड डिवीजन—9वीं डिवीजन का नेतृत्व कर रहे थे। ब्रार एक बाँके सिपाही थे—जब वे गोल टोपी अपने दायें कान के ऊपर तक खींचकर पहनते थे तो उनके घुंघराले पके बाल कनपटियों पर झाँकते नजर आते थे।

ब्रार के अधिकारी थे पश्चिमी कमान के जनरल आफीसर कमांडिंग इन-चीफ लेफ्टीनेंट-जनरल कृष्ण स्वामी सुन्दरजी। उन्होंने महार रेजिमेंट में प्रवेश लिया था। यह 'गैर जुझारू' जातियों की भर्ती के लिए एक नयी रेजिमेंट बनायी गयी थी। 1965 में पाकिस्तान युद्ध में सुन्दरजी ने एक बटालियन का नेतृत्व किया था और बंगलादेश युद्ध के दौरान वह पूर्वी क्षेत्र में ब्रिगेडियर के पद पर थे। सुन्दरजी ने महू के कालेज आफ कंबैट का भी संचालन किया था, जो कि भारतीय सेना के प्रशिक्षण का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। उन्हें युद्ध-कौशल का विशेषज्ञ माना जाता था और वे थल सेनाध्यक्ष के सर्वोच्च पद के भी वह प्रत्याशी थे।

सुन्दरजी ने अपने चीफ स्टाफ आफिसर लेफ्टीनेंट-जनरल रंजीत सिंह दयाल से ऑपरेशन ब्लू स्टार की योजना तैयार करने को कहा। दलाल ब्रार की ही तरह सिख थे, मगर उन्होंने अपनी दाढी-मूंछ नहीं कटवायी थी। वह पगडी भी पहनते थे। दयाल एक इन्फैंट्री सैनिक थे और पैराशूट रेजीमेंट की पहली बटालियन में उन्होंने काम किया था। इसी टुकडी ने स्वर्णमन्दिर पर आक्रमण करने की पहल की। 1965 के युद्ध में दयाल एक मिसाल बन गये थे, जब उन्होंने एक ऐसे दर्रे को कब्जे में कर दिखाया था जिसे अब तक अत्यन्त दुर्गम माना जाता था और जिसके बाद पाक-अधिकृत कश्मीर से जम्मू-कश्मीर राज्य में जाने वाले एक महत्वपूर्ण मार्ग को रोक दिया गया। वहाँ सामने से हमला करना असम्भव था, इसलिए लेफ्टीनेंट जनरल दयाल हाजीपीर दर्रे के ऊपर की एक ऊँची पहाड़ी पर चढे और वहाँ से उन्होंने पाकिस्तानियों के ऊपर हमला बोला। उन्होंने इस कार्रवाई का वर्णन स्वयं किया है :

> मैंने तब अपने कमांडिंग अफसर से हाजीपीर दर्रे को अधिकार में करने की इजाजत माँगी। इजाजत मिल गयी और आगे का मार्च शुरू हुआ। दुश्मन दो दिशाओं से गोलियाँ बरसाने लगा। मैंने एक प्लाटून को दुश्मनों की तोपों को खामोश करने के लिए भेजा। मैं और मेरे दूसरे साथी लगातार बढ़ते गये और 7 बजे शाम हम हैदराबाद नाला पहुँचे।
>
> यहाँ से आगे बढना बहुत मुश्किल था। यहाँ से दर्रा 4000 फुट की खड़ी चढाई पर था। मूसलाधार बारिश हो रही थी। जमीन कीचड़-भरी थी। मैंने पुराने रास्ते को छोड़ कर दूसरा रास्ता लिया। वास्तव में यहाँ कोई

रास्ता था ही नहीं। यह केवल एक सीधी चढ़ाई थी। कठिनाइयों के बावजूद हम सुबह 4.30 बजे दर्रे को जोड़ने वाली सड़क तक पहुँच गये। यह 28 अगस्त का दिन था। बन्दूकें और बैटरियाँ लेकर यात्रा करने वाले जवानों को मैंने कुछ आराम का मौका देने का फैसला किया, जिसकी सचमुच उन्हें जरूरत थी। दो घंटे के बाद हम फिर चढ़ने लगे, और 8 बजे सुबह हम दर्रे के पास एक बन्ध पर पहुँच गये।

दुश्मन को फंसाये रखने के लिए कुछ जवानों को छोड़कर मैं एक दूसरी पहाड़ी पर चढ़ा और वहाँ से शत्रु पर उतर आया और दर्रे पर उनकी चौकियों पर चढ़ाई की। दुश्मन तोपें छोड़कर घबराहट में भाग खड़े हुए। 10.30 तक दर्रा हमारे पूरे नियंत्रण में था।[1]

ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद लेफ्टीनेंट-जनरल सुन्दरजी ने पत्रकारों को जानकारी देते हुए उन सरकारी आदेशों का वर्णन किया जो उन्हें दिये गये थे :

मुझे कहा गया था कि स्वर्णमन्दिर परिसर से उग्रवादियों को बाहर खदेड़ दूं। लेकिन संभव हो तो हरिमन्दिर साहब को कोई क्षति न पहुँचे और अकाल तखत का कम-से-कम नुकसान हो। मुझे इस काम के लिए कम-से-कम बल का इस्तेमाल करने को कहा गया था और मुझे ऐसी कोशिश करनी थी कि दोनों ही पक्ष के कम-से-कम लोग मरें। मुझे यह प्रयास करना था कि मैं गुरुद्वारे के भीतर रहने वाले दो प्रमुख गुटों—भिंडरांवाले और लोंगोवाल के समर्थकों के बीच गृहयुद्ध न होने दूं।

लेफ्टीनेंट-जनरल दयाल ने प्रेस को बताया कि 'न्यूनतम बल के सिद्धान्त को हर परिस्थिति में अमल मे लाना था।' उन्होंने ऑपरेशन ब्लू स्टार को सामान्य इन्फैंट्री कार्रवाई बताया। दयाल ने इस बात पर भी जोर दिया कि सभी सैनिकों को स्वर्णमन्दिर को क्षति न पहुँचाने का आदेश दिया गया था। वह निष्ठावान धार्मिक व्यक्ति थे, जो 14 वर्ष की आयु से ही स्वर्णमन्दिर में प्रार्थना करने आया करते थे। लेफ्टीनेंट-जनरल दयाल ने कहा कि उन्हें पूरा विश्वास था कि उनके सैनिक मन्दिर को बचाये रखने के आदेश का पालन करेंगे।

जैसा कि आप जानते हैं, भारतीय सेना बहुत आस्थावान सेना है। एक बार उन्हें आदेश मिले तो वे उसका शब्दशः पालन करते हैं। एक बार जब कहा गया कि स्वर्णमन्दिर को क्षति न पहुँचायें, तो मुझे विश्वास था कि वे यह आदेश मान लेंगे और हमें खुशी है कि उन्होंने इसका पालन अन्त तक किया।

दयाल ने भारतीय सैनिकों की धर्मपरायणता का एक उदाहरण भी दिया :

1965 के युद्ध (भारत-पाक युद्ध) में हम एक लक्ष्य की ओर बढ़े। वहाँ

हमने कुछ गायों को चरते हुए देखा। अचानक गोलाबारी शुरू हो गयी। एक गाय एक गोले से घायल हो गयी और तब मैंने वहाँ एक जवान को मोर्चे पर चोट लगने पर इस्तेमाल की जाने वाली मरहम-पट्टी निकालकर गाय को लगाते देखा।

लेफ्टीनेंट-जनरल सुन्दरजी ने भी इस कार्रवाई के धार्मिक पक्ष पर जोर दिया। उन्होंने कहा, 'हम मन में विनय की भावना और होंठों पर प्रार्थना लेकर अन्दर गये। हम सेना के लोग हर एक धर्म-स्थल को समान रूप से पवित्र मानते हैं।'

स्वर्णमन्दिर परिसर से उग्रवादियों को इस प्रकार 'बाहर खदेड़ने के लिए'—जिससे कम से कम नुकसान हो और सराय क्षेत्र में युद्ध न छिड़ जाये—दयाल ने दोहरी योजना बनायी। योजना थी कि सराय क्षेत्र को मन्दिर परिसर से अलग कर दिया जाये, जिससे सरायों को मुख्य युद्ध में उलझे बिना खाली कराया जा सके। सेना के असली लक्ष्य भिंडरांवाले को मन्दिर परिसर से बाहर निकलने के लिए कमांडो कार्रवाई की योजना बनायी गयी थी। कमांडो दस्ते की सहायता करने के लिए पैदल सेना थी। टैंकों को मशीनगनों के लिए मचों के रूप में ही इस्तेमाल करना था जिससे आगे बढ़ते सैनिकों पर हो रही गोलीबारी को रोका जा सके, और मन्दिर से बाहर जाने वाले रास्तों को बन्द किया जाये जिससे कि कोई भाग न पाये। सराय और मन्दिर परिसरों को अलग करने वाली सड़क पर सशस्त्र गाड़ियाँ रखी जानी थी, जिससे दोनों युद्ध-क्षेत्रों को अलग-अलग रखा जा सके।

इन तीन जनरलों को इनमें से सिर्फ एक ही लक्ष्य हासिल करने में सफलता मिली। स्वर्णमन्दिर खाली करवा लिया गया। लेकिन यह कहना कि भिंडरांवाले को 'बाहर खदेड़ डाला गया', सच्चाई को बहुत कम करके बताना होगा। उसे अकाल तख्त से भारतीय विजयन्त टैंक की 105 एम०एम० की मुख्य तोपों के जरिये ही उखाड़ा जा सका। परिणाम यह हुआ कि स्वयं अकाल तख्त, का काफी हिस्सा, जिसे कम-से-कम क्षति पहुँचाने के आदेश जारी किये गये थे, खंडहर बनकर रह गया। शुरू में तो सैनिकों को अकाल तख्त पर स्वचालित अस्त्रों से गोलियाँ दागने से बिलकुल मना कर दिया गया था। सराय परिसर को खाली किया गया, मगर गैर-सैनिक लोगों के बड़ी संख्या में हताहत होने से पहले नहीं।

पहला काम मेजर-जनरल शाहबेग सिंह की बाहरी किलेबन्दी को तोड़ना था। यह उद्देश्य तो शुरू की गोलीबारी में ही बहुत हद तक पूरा हो गया था, जब जनरल ब्रार को भिंडरांवाले को डरा कर आत्मसमर्पण करवा लेने की उम्मीद थी। शाह-बेगसिंह की इस व्यूहरचना में स्वर्णमन्दिर के बाहर की गलियों में स्थित वे 17 मकान शामिल थे, जिनमें पुलिस ने भिंडरांवाले के समर्थकों को रहने की छूट दे दी

थी। इनमें से कुछ तो स्वर्णमन्दिर से 800 गज तक दूरी पर थे। इन सभी इमारतों का अकाल तख्त में शाहबेग सिंह की कमान-चौकी के साथ वायरलेस द्वारा सम्पर्क बना हुआ था। मन्दिर के बाहर 'टेंपल व्यू होटल' पर भी कब्ज़ा जमा लिया गया था। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इससे सिक्खों को स्वर्णमन्दिर के प्रमुख द्वार पर नज़र रखने और गोली चलाने की खुली जगह मिल गयी थी। इसके अलावा ब्रह्मबूटा अखाड़ा, जोकि एक बड़ा मकान है और जहाँ सिक्खों के एक सम्प्रदाय का मुख्य कार्यालय है, से भी स्वर्णमन्दिर के मार्ग पर नज़र रखी जा सकती थी। इसके बाद तीन मीनारें थीं जिनकी किलेबन्दी की गयी थी और जिन पर से भिण्डरांवाले के आदमी मन्दिर के अहाते में गोली चला सकते थे। क्योंकि ये और मकानों से ज़्यादा ऊँचे थे इसलिए तंग गलियों में सेना की गतिविधियों को देखने के लिए ये बहुत अच्छे मचान थे। इनमें से एक तो पानी की टंकी थी और शेष दो 18वीं सदी में बनी ईंटों की मीनारें थीं। ये पुरानी मीनारें 80 फीट ऊँची हैं और लंगर भवन के निकट हैं, जिसकी छत पर भिण्डरांवाले ने कई सभाओं को सम्बोधित किया था।

मेजर-जनरल बरार ने कहा कि उन्होंने तोपखाने की मीनारों के ऊपरी हिस्से उड़ा देने का आदेश दिया। लेकिन उन्होंने उन 17 मकानों को कब्ज़े में लेने की कोशिश नहीं की, क्योंकि उनके पास 'इतने साधन नहीं थे'। इन इमारतों से स्वर्ण-मन्दिर पर कब्ज़ा होने के कई दिन बाद तक गोलियाँ चलती रहीं। अमृतसर जैसी घनी आबादी वाले शहर की पुरानी बस्ती में तोपों का इस्तेमाल आशंका के अनुरूप ही खासा महँगा पड़ा। तोपखाना एक मैदानी हथियार है, जिसे एक बड़े क्षेत्र में जवाबी गोलीबारी को रोकने के लिए प्रयोग में लाया जाता है और इसे प्रायः सीमित निशानों के खिलाफ इस्तेमाल नहीं किया जाता। कई बाज़ारों को भारी नुकसान पहुँचा, मगर बरार को मन्दिर परिसर की ओर जाने वाले सभी रास्तों पर कब्ज़ा करना था, ताकि वह जवानों को सिक्खों के इस ऐतिहासिक स्थल के अन्दर भेज सकें।

जब उन्हें विश्वास हो गया कि मन्दिर के सभी रास्ते साफ हो गये हैं तभी उन्होंने टैंकों को स्वर्णमन्दिर के उत्तरी द्वार के पास के घंटाघर चौक में जाने का आदेश दिया। एक टैंक-कमांडर ने बताया: 'जब मैं जलियाँवाला बाग में दक्षिण की ओर मुड़ा तो मैंने अपने टैंक के साथ टकराती गोलियों की टिक-टिक सुनी। हैडफोन पर मुझे आदेश मिला कि इस गोलीबारी को खामोश कर दो।' 16वीं कैवलरी के एक लेफ्टीनेंट के अनुसार वहाँ चार टैंक और तीन बख्तरबन्द गाड़ियाँ थीं। लगता था कि शाहबेग सिंह उनकी गतिविधि को सिर्फ आँक रहा है, क्योंकि जैसे ही बख्तरबन्द गाड़ियाँ सही पोज़ीशन में आयीं, गोलियाँ बन्द हो गयीं। लेफ्टी-नेंट ने अपने कमांडिंग अफसर को सूचना दी कि गोलीबारी समाप्त कर दी गयी है। मगर ज्योंही मन्दिर पर आक्रमण शुरू हुआ, यह साफ हो गया कि शाहबेगसिंह

का बारूद खत्म बिलकुल नही हुआ था।

इस बीच अकाल तखत के पीछे तंग गलियों मे कमाडो, जिनको स्वर्णमन्दिर के एक माडल के आधार पर प्रशिक्षण दिया गया था, भिंडरांवाले के किले मे पहुँचने की कोशिश कर रहे थे। यह कारवाई बिलकुल नाकामयाब रही। दोनों तरफ से गोलीबारी मे फँस जाने के कारण उन्हे वापस मुडना पड़ा। प्रेस को जानकारी देते समय जनरलो ने किसी वजह से इस कारंवाई के बारे में कुछ भी नहीं बताया।

शाम को दस और साढ़े दस के बीच जनरल ब्रार ने यह फैसला किया कि अकाल तखत पर सामने से आक्रमण करना चाहिए। पहली बटालियन पैराशूट रेजीमेंट के काली वर्दी पहने छापामारो को आदेश दिया गया कि वे घटाघर के नीचे की सीढियों से उतरकर परिक्रमा में आयें, फिर अमृतसरोवर के किनारे से जितनी जल्दी हो, अकाल तखत तक पहुँचें। मगर जब छापामार मुख्य द्वार मे घुसे तो उन पर गोलियो की बौछार शुरू हो गयी। अधिकतर सैनिक उन सिखों की लाइट मशीनगनो से मारे गये, जो परिक्रमा की ओर जाने वाले रास्ते में दोनो ओर छिपे हुए थे। जो छापामार आगे पहुँचे उन्हे भी सरोवर के दक्षिण की तरफ बनी इमारतो से गोलियो की वर्षा के कारण पीछे हटना पडा। घटाघर चौक के सामने एक मकान मे स्थापित नियत्रण-कक्ष मे ब्रारअपने दोनो अफसरो के साथ यह खबर सुनने के लिए वेसब्री से इन्तजार कर रहे थे कि उनके छापामारो ने परिसर के भीतर जगहे ले ली है। लेकिन जब कोई रिपोर्ट नही आयी तो उन्हे कमान की सम्पर्क-लाइन पर यह कहते हुए सुना गया, 'हरामजादो, अन्दर क्यो नही जाते ?'

थोड़े-से छापामार, जो बच रहे थे, मन्दिर के बाहर चौक मे फिर से इकट्ठा हुए और जनरल ब्रार को सूचना दी। उनसे कहा गया कि एक कोशिश और करें। इन छापामारों के पीछे 10वी गार्ड बटालियन आने वाली थी। जिसका नेतृत्व कर रहे थे एक मुसलमान लेफ्टीनेंट-कर्नल इसरार खाँ। इस बटालियन मे सिख जवान भी थे। दूसरे कमाडो हमले ने दोनों ओर की मशीनगनो को खामोश कर दिया और वे परिक्रमा तक पहुँचने में सफल हो गये। उनके बाद गार्ड आये जिन पर तेज गोलाबारी हुई और वे अपने लक्ष्य अकाल तखत की ओर बढ ही नही पाये। लेफ्टीनेंट कर्नल इसरार खाँ ने सरोवर की दूसरी तरफ के मकानो मे गोली चलाने की इजाजत माँगी। उसका मतलब यह होता कि स्वर्णमन्दिर भी गोलियो की जद मे आ जाता, क्योंकि वह बीच मे स्थित है। ब्रार ने इजाजत नही दी। उनका अब भी विश्वास था कि स्वर्णमन्दिर और अकाल तखत को सुरक्षित रखते हुए लक्ष्य पूरा करना सम्भव था। मगर उन्हे गार्डों के कमाडर से सूचनाएँ मिलने लगी थी कि बडी सख्या मे लोग मर रहे हैं। उनके लगभग 20 प्रतिशत लोग मारे गये थे,

तब भी वे परिसर के पश्चिमी हिस्से में अकाल तखत तक पहुँचने के लिए परिक्रमा के कोने को भी पार नहीं कर सके थे। गार्डों पर केवल उत्तर और दक्षिण दिशाओं से ही गोलियाँ नहीं चल रही थीं, बल्कि आतंकवादी परिक्रमा में बने मेनहोलों से भी अचानक निकलकर मशीनगनों से गोलियों की बौछार करते या परिसर में ही बनाया गया घातक हथगोला फेंकते। इन मशीनगनधारियों को घुटनों की ऊँचाई पर मारना सिखाया गया था, क्योंकि शाहबेग सिंह का अनुमान था कि सेना अपने लक्ष्य तक रेंग कर आयेगी। मगर गार्ड्स और कमांडो रेंग नहीं रहे थे, इसलिए बहुतों की टाँगों में गोलियाँ लगीं।

ब्रार ने समरनीति बदलने का फैसला किया। जैसा कि उन्होंने बाद में कहा, 'मैंने महसूस किया कि इस बटालियन के लिए आगे बढ़ना कठिन है और इस बात में कोई तुक नहीं है कि वे पहली मंजिल तक सीमित रहें। जब तक दूसरी मंजिल और छत तक पहुँचकर स्थिति को न सँभाला जाये' तब तक जानें जाती ही रहेंगी। इसलिए उनको आदेश दिया गया कि जनहानि के बावजूद वे हर हालत में पहली मंजिल पर एक चौकी जमाने की कोशिश करें। मैं उस दस्ते के अफसर लेफ्टीनेंट-कर्नल इसरार खाँ को इस बात का पूरा श्रेय देता हूँ कि उन्हेंने अपने जवानों को फिर से संगठित किया और उस विशेष क्षेत्र में एक जगह पर कब्जा करने में वे सफल हो गये।' इस जगह से सिपाहियों को सरोवर के दक्षिण से गोलियाँ चलने के ठिकानों को खामोश करने में सफलता मिली। उन्हें फिर भी इस आदेश से कठिनाई हो रही थी कि ऐसी गोली न चलायें कि दोनों में से किसी धर्मस्थल को कोई नुकसान पहुँचे।

तेज गोलीबारी के बावजूद कुछ छापामार परिक्रमा के किनारे से अकाल तखत के आँगन तक पहुँच गये। लेकिन वहाँ वे सिर्फ एक घातक व्यूह में ही फँसे। खुद अकाल तखत की भी पूरी तरह किलेबन्दी कर दी गयी थी। उसके दरवाजे में रेत के बोरे थे और खिड़कियों और मेहराबों में बंदूकें रखने के लिए ईंटों की चिनाई की गयी थी और उसके पवित्र संगमरमर में बन्दूकों की नालों के लिए सूराख बनाये गये थे। इसके दोनों ओर मकान हैं, जिनसे मन्दिर परिसर को देखा जा सकता है। इन मकानों में भी मोर्चाबन्दी कर दी गयी थी। इसी तरह अकाल तखत के सामने तोशखाना और पीछे के मकान में भी किलेबन्दी हो चुकी थी। इसलिए जब छापामार आँगन में पहुँचे तो उन पर चारों ओर से गोलियाँ बरसने लगीं। वे पीछे हटे, लेकिन उनके 30 प्रतिशत लोग वहीं खत्म हो गये। अकाल तखत के सामने वाला आँगन, मेजर-जनरल ब्रार के शब्दों में, 'हत्या का मैदान' बन गया था। मामला तब और भी बिगड़ा जब वह मद्रासी दस्ता कहीं नजर नहीं आया जिसे अकाल तखत को कब्जे में लेने के लिए छापामार कार्रवाई में दूसरी शाखा का काम करना था। जब पता चला कि मद्रासी पहले ही पिछवाड़े की तंग गलियों

में या तो रास्ता भूल गये हैं या फँस गये हैं, तो जनरल ब्रार ने अपने अधिकारियों से 15वीं डिवीजन के सैनिकों का इस्तेमाल करने की इजाजत माँगी। उनकी अपनी इन्फैंट्री डिवीजन पहले तैनात थी। गार्ड मन्दिर परिसर के उत्तरी हिस्से में थे। मद्रासी पूर्वी दरवाजे तक आने की कोशिश कर रहे थे, कुमाऊँनी सराय क्षेत्र को खाली करवा रहे थे और बिहारियों ने मन्दिर परिसर के चारों ओर घेरा डाल रखा था ताकि भिंडरांवाले या उसके समर्थक भागने न पायें।

सुन्दरजी और दयाल इस कारवाई को और मजबूत करने के लिए सहमत हो गये और 7वीं गढ़वाल राइफल्स की दो कम्पनियों को ब्रार के अधीन कर दिया गया। गढ़वाली भी उत्तरप्रदेश के हिमालय की तराइयों के हैं। ब्रार ने उन्हें दक्षिण से मन्दिर में प्रवेश करके गार्डों पर पड़ रहे दबाव को कम करने का आदेश दिया। ज्यों ही वे दक्षिणी द्वार से अन्दर गये, उन पर गोलियों की बौछार शुरू हो गयी। गढवालियों के एक अफसर ने कहा, 'लगता था कि वे सभी तरफ से गोलियाँ चला रहे हैं। यह जानना ही नामुमकिन था कि वापस कहाँ किस पर गोली चलायें।' मगर गढवालियों ने मन्दिर पुस्तकालय की छत पर अपना ठिकाना लेने में सफलता प्राप्त कर ली। उनके मुखिया ने यह सूचना ब्रिगेडियर ए० के० दीवान को दी।

दीवान दरअसल सैनिकों के सैनिक थे, जो हर समय लड़ाई के बीचोबीच रहना चाहते थे। यह बात अजीब थी कि उनको छेड़ने के लिए उन्हें 'चिकन' (मुर्गी) कहा जाता था। यह नाम उन्हें तब दिया गया था, जब वह प्रशिक्षणार्थी थे, क्योंकि उनकी गर्दन लम्बी और पतली थी। ब्रिगेडियर को अन्दर की लड़ाई बटालियन अफसरों के जिम्मे छोड़ देनी चाहिए थी, मगर वह स्वय ही बीच में कूदने का लालच नहीं छोड़ पाये। गढवालियों का नेतृत्व करने वाले लेफ्टीनेंट-कर्नल ने समझाया कि मेरे जवानों पर गोलियों की बौछार हो रही है, मगर यह दीवान के लिए और भी बड़ा आकर्षण था। जब वह मन्दिर में पहुँच गये तो उन्होंने मेजर-जनरल ब्रार को वायरलेस पर सूचना दी। ब्रार, जिनका सयम अब तक टूट रहा था, पूरे सम्पर्क नेटवर्क पर चिल्लाते सुने गये, 'तुम वहाँ कर क्या रहे हो? मैं इस कारवाई का संचालन कर रहा हूँ। तुम मेरे आर्डर के बिना हिल नहीं सकते।'

जब ब्रार का गुस्सा ठंडा हो गया तो उन्होंने दीवान को अन्दर ही रहकर यथासम्भव अन्दर की जानकारी देने के लिए कहा। दीवान ने महसूस किया कि इसकी सम्भावना बहुत कम ही है कि गार्ड और छापामार अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पायें। लेकिन उनको स्थिति दक्षिण की ओर काफी सुरक्षित है, और अगर वे और सहायता प्राप्त कर सकें तो शायद अकाल तखत पर चढाई की जा सकती है। जब उन्होंने यह सूचना ब्रार को दी तो उन्होंने 15वीं कुमाऊँ डिवीजन की दो कम्पनियों को बुलाने की इजाजत दी। अब तक कारवाई की दो घंटे हो चुके थे,

लेकिन ब्रार को सफलता कहीं नजर नहीं आ रही थी। उनकी संक्षिप्त और तेज छापामार कार्रवाई अटक गयी थी, इसलिए उन्होंने मंदिर परिसर में दीवान को अपनी लड़ाई खुद लड़ने की इजाजत दी।

दीवान ने बार-बार अकाल तखत पर धावा बोलने की कोशिश की, मगर जब भी गढ़वाली और कुमाऊँनी 'परिक्रमा' के किनारे से मुड़कर अकाल तखत के आँगन की ओर बढ़ते, उन्हें जबर्दस्त गोली-वर्षा का सामना करना पड़ता और वापस लौटना पड़ता। दीवान स्वयं भी परिक्रमा के दक्षिणी भाग में ऊपर-नीचे आ-जाकर अपने जवानों का साहस बढ़ा रहे थे। मगर उनका काम असंभव था। हालाँकि अब तक परिक्रमा के दक्षिणी और उत्तरी, दोनों भाग सेना के अधिकार में आ चुके थे फिर भी वे मुख्य किले और उसके चारों ओर की मोर्चेबन्दी पर कोई असर नहीं डाल पाये। इस बीच 4 कम्पनियों ने 137 जानें गँवायी थीं। निस्संदेह उन्हें स्वर्णमन्दिर पर गोली न चलाने के आदेश से काफी बाधा पहुँच रही थी।

दीवान ने अब भी मन्दिर में पहुँचने की कोशिश करते हुए मद्रासियों की प्रतीक्षा करके आखिरी धावा बोलने का फैसला किया। मद्रासी आखिरकार सुबह 3 बजे—यानी 5 घंटे बाद वहाँ पहुँचे। वे सराय क्षेत्र के दरवाजे से मन्दिर परिसर में आये। जब वे आये, जबर्दस्त गोलीबारी चल रही थी और अँधेरा भी था। घबराहट में मद्रासियों ने दीवान के जवानों पर ही गोली चलानी शुरू कर दी। ब्रिगेडियर चिल्लाये, 'गोली मत चलाओ ! मैं डिप्टी जी० ओ०सी० हूँ।' जब वह 'छोटी-सी चूक' ठीक हो गयी तो दीवान ने अपना आखिरी हमला शुरू किया।

इस किले के अन्दर मोर्चों को तोड़े बिना जा पाना सम्भव नहीं था। दीवान के एक के बाद एक हमले 'लाइट ब्रिगेड' के हमलों की तरह ही बेकार हो रहे थे और अब उन्हें खुद भी इसका एहसास हो चुका था। उन्होंने वायरलेस पर ब्रार से संपर्क स्थापित किया और कहा कि उन्हें टैंक मँगवाकर अकाल तखत पर गोलीबारी करनी होगी। ब्रार ने जवाब दिया, 'मैं और अधिक जवान खोने का जोखिम नहीं उठा सकता। मैं हार स्वीकार नहीं कर सकता।' ब्रार ने बाद में इस घटना के बारे में प्रेस को बताया :

> इन्फैंट्री के कत्लेआम का खतरा पैदा हो गया था...हिचकिचाते हुए मैंने अपने अधिकारियों से कहा कि मुझे एक टैंक अन्दर ले जाना पड़ेगा। मैं अब पैदल सैनिकों को मरवाने का खतरा नहीं ले सकता। पैदल सेना असंभव काम नहीं कर सकती। मुझे कहना चाहिए कि इसकी प्रतिक्रिया फौरन हुई, क्योंकि मेरे दोनों अफसर जहाँ बैठे थे वहाँ से लड़ाई का दृश्य मुश्किल से 15 मीटर दूर था।

सुन्दरजी की प्रतिक्रिया तात्कालिक नहीं थी। उन्होंने पहले युद्ध की जानकारी लेने के लिए दिल्ली में स्थापित विशेष कार्रवाई कक्ष से सम्पर्क स्थापित किया। रक्षा उप-मंत्री के० पी० सिंहदेव, जो स्वयं भी सैनिक अधिकारी रह चुके थे, इसका संचालन कर रहे थे। उनकी सहायता के लिए राजीव गाँधी के विश्वासपात्र सलाहकार अरुण सिंह थे, जो सिख धर्म का पालन तो नहीं करते लेकिन पंजाब के एक राजवंश से संबंधित हैं। सेना और सरकार के सामने अब एक दुविधा थी। सुन्दरजी ने पहले से ही आग्रह किया था कि कार्रवाई भोर से पहले ही पूरी होनी चाहिए, नहीं तो उनके जवान मन्दिर के अन्दर छिपे भिंडरांवाले के आदमियों की गोलियों का सीधा निशाना बन जायेंगे। वापस लौटकर अगली रात फिर से कोशिश करने का सवाल नहीं था, क्योंकि यह समाचार किसी-न-किसी तरह बाहर तो पहुँचता ही कि भिंडरांवाले और शाहबेग सिंह के आदमियों ने भारतीय सेना को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। उससे पंजाब के देहातों और सेना के सिखों पर बहुत उलटा असर पड़ता। अब एक ही हल दिखायी देता था—यानी टैंक। अब टैंक ही बचे थे, जिनमें भिंडरांवाले के किले के अन्दर प्रवेश करने की मारक शक्ति और लक्ष्य भेदने की क्षमता थी। मगर टैंक का मतलब था कि सेना अकाल तखत को सुरक्षित रखने के उद्देश्य में विफल रहती। यह गहरी आशंका भी थी कि कहीं किसी तोपची की गलती से स्वर्णमन्दिर को भारी क्षति न पहुँचे। आखिरकार दिल्ली में यह फैसला हुआ कि टैंकों का इस्तेमाल किया जाये। और यह संदेश सुन्दरजी को 'चिकन' दीवान द्वारा टैंकों की माँग के दो घंटे बाद मिला।

इस बीच मेजर-जनरल बार ने अकाल तखत में घुसने का एक और प्रयास किया। उन्होंने स्काट ओ० टी० 64 बख्तरबंद गाड़ी मँगवायी। टैंकों को परिक्रमा तक जाने वाली सीढ़ियाँ तोड़नी थी, ताकि पोलैंड के बने 8 पहियों वाले बख्तरबंद सैनिक वाहन अन्दर जा सके। उनका उद्देश्य था इस वाहन को सीधे अकाल तखत तक ले जाना, जिससे भारतीय सेना की इस नयी इकाई—यन्त्रीकृत इन्फेंट्री के जवान दीवार की ओट में भीतर जा सकें। मगर ज्यों ही सैनिक वाहन अकाल तखत की ओर आया, उस पर दो चीनी टैंक-नाशक ग्रेनेड लांचर्स से वार हुआ। एक गोला निशाने पर लगा और सैनिक वाहन बेकार हो गया। इस प्लाटून का कमांडर घायल हो गया।

इस घटना ने जनरलों को अपनी समरनीति पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर कर दिया। उन्हें यह गुप्त जानकारी थी ही नहीं कि शाहबेग सिंह के पास कवच-भेदी हथियार हैं। यहाँ तक कि टैंक, जो गोली चलाने के लिए सरकारी आदेशों का इन्तजार करते हुए परिक्रमा के पास तक पहुँच रहे थे, खतरे में थे। हालाँकि टैंकों के कवच की अधिकतम मोटाई बख्तरबन्द गाड़ी की दुगुनी से भी अधिक होती है। टैंक भिंडरांवाले के निशानेबाजों को अपनी तेज रोशनी से चौंधि-

याने की कोशिश कर रहे थे। ज्यों ही ब्रार को पता चला कि शत्रु के पास कवच-भेदी हथियार हैं, उन्होंने टैंकों को रोशनी बुझाने का आदेश दिया। टैंक परिक्रमा को उखाड़ते हुए आगे बढ़ रहे थे, जिसकी हर सीढ़ी पर उस भक्त का नाम खुदा था जिसने संगमरमर की वह सीढ़ी बनवायी थी।

विजयन्त सेना का प्रमुख टैंक था, जोकि 38 टन वाले विकर्स टैंक का भारतीय रूप है। आदेश आया, तो उन्होंने अपनी मुख्य तोपों को दागना शुरू कर दिया। क्षतिग्रस्त अकाल तखत के चित्रों से स्पष्ट है कि टैंकों ने अपनी 105 एम० एम० की मुख्य तोप से बड़े भारी विस्फोटक 'स्क्वैश हेड' गोले उस पर फेंके। ये गोले सख्त निशानों, जैसे कवच या किलेबन्दी के लिए बनाये गये थे। जब ये गोले अपने निशाने से टकराते हैं तो उनके सिरे फैल जाते हैं। इनके फ्यूजों को इस तरह रखा जाता है कि इनकी टकराहट और गोलों के सुलगने में थोड़ा अन्तर रह जाता है जिससे लक्ष्य में आघात तरंगें दौड़ती हैं और कवच या चिनाई के भीतर का काफी हिस्सा दूर हट जाता है। लेफ्टीनेंट-जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा, जिन्होंने मरम्मत होने से पहले अकाल तखत को देखा था, का मानना है कि अकाल तखत पर मारे गये ऐसे घातक गोलों की संख्या 80 तक हो सकती है। टैंक की मुख्य तोप का लाभ यह है कि निशाने पर अचूक वार कर सकती है। भारतीय अफसर का कहना है कि विजयन्त की अचूक मार अपने निशाने से जरा भी इधर-उधर नहीं होती।

अकाल तखत पर इस गोलाबारी का प्रभाव विनाशकारी था। इस धर्मस्थल का अगला हिस्सा पूरा नष्ट हो गया, शायद ही कोई स्तम्भ खड़ा रह पाया। कई कमरों में आग भड़क उठी जिससे संगमरमर काला पड़ गया और महाराजा रणजीत सिंह के जमाने की नक्काशियाँ खराब हो गयीं। इनमें संगमरमर की संगतराशी, प्लास्टर और शीशे और महीन जाली का काम भी शामिल था। अकाल तखत का स्वर्ण-मंडित कलश भी तोपों से क्षतिग्रस्त हो गया था। इस रात एक बार तो जनरल ब्रार ने अपने कर्नल (प्रशासन) को अकाल तखत के पीछे एक मकान की छत पर 3.7 इंच होवेल गन टिकाकर गुम्बद की ओर गोली चलाने को कहा, जिससे सिख डर के मारे आत्मसमर्पण कर दें। ब्रार ने कर्नल से कहा, 'हो सकता है, शोर और धमाके से कोई असर हो।'

तोप के गोलों से भिंडरांवाले के आदमी नहीं डरे, मगर टैंकों की बात ही और थी। उनका जो प्रभाव पड़ा होगा, उसकी कल्पना करना भी असम्भव है। जब एक के बाद एक आघात तरंगों ने इस भवन को झकझोरना शुरू किया होगा तो साहसी, लेकिन गुमराह रक्षकों को लगा होगा कि अब यह उनके सिर पर आ गिरेगा। विस्फोट की कान फाड़नेवाली आवाज और शोलों तथा गिरते हुए मलबे की वजह से वे पिछले हिस्से में भाग गये। सेना पर जो घातक मशीनगन की गोलियाँ चलायी जा रही थीं, वे बन्द हो गयीं।

अकाल तखत के आँगन से दिखायी देने वाली इमारतों से अभी भी बीच-बीच मे गोलियाँ चल रही थी। अब तक रोशनी हो चुकी थी और ब्रार ने सोचा कि इस समय अकाल तखत पर नियंत्रण करना खतरनाक होगा, जहाँ भिंडराँवाले और शाहबेग सिंह पैदल सेना के आक्रमणो के बावजूद टिके हुए थे। इसलिए ब्रिगेडियर दीवान को आदेश दिया गया कि टैंक आक्रमण से आगे की कार्रवाई शाम तक के लिए स्थगित कर दें। कमान-चौकी मे तीनो जनरल जानते थे कि उन्होंने भिंडराँवाले की किलेबन्दी तोड़ दी है, मगर उनके मन को भिंडराँवाले के जिंदा भाग जाने की आशंका बेचैन करती रही।

इस लड़ाई के बाद ब्रार ने प्रेस को बताया कि एक ही टैंक परिक्रमा से आगे ले जाया गया था और उसके वैकल्पिक हथियारों —7.62 एम० एम० मशीनगन का ही इस्तेमाल किया गया था। मगर अकाल तखत को हुई क्षति दूसरी ही कहानी कहती है। ऐसी कोई मशीनगन नही है जो इतना मलबा गिराये, और गोलों के निशान स्पष्ट रूप से उच्च विस्फोट और टकराने के बाद फैलने वाले गोलों के थे। जहाँ तक टैंकों की संख्या का सवाल है, सतीश जेकब ने जिन अफसरों से बात की, उनके अनुसार छह टैंक परिसर मे लाये गये थे। एक विजयन्त मे प्रमुख गोलों के सिर्फ 45 राउंड होते हैं। इससे स्पष्ट है कि एक से अधिक टैंकों का प्रयोग हुआ। यह भी सम्भव है कि तोपचियो ने कई-कई जगहों से गोलाबारी की हो, क्योंकि सरोवर के बीच स्थित होने के कारण हरिमन्दिर उनकी गोलाबारी के दायरे मे पड़ता था।

उस रात सिर्फ अकाल तखत मे ही लड़ाई नही हुई। स्वर्णमन्दिर परिसर के पार पूर्वी क्षेत्र मे कुमाऊँ रेजिमेंट की एक बटालियन उस दूसरी कार्रवाई में लगी थी, जिसका सचालन जनरल सुन्दरजी को करने का आदेश दिया गया था। उन्हें बताया गया था कि वे 'मन्दिर परिसर और सराय क्षेत्र मे टिके दो प्रमुख गुटो, भिंडराँवाले और लोंगोवाल गुट के बीच अन्तर्कलह को रोकें।' ऐसा करने के लिए जनरलों ने तय किया था कि स्वर्णमन्दिर को खाली कराते समय ही सराय क्षेत्र, जहाँ लोंगोवाल रहते थे, को भी खाली करा लिया जाये।

पहली समस्या इस परिसर मे जाने की थी। मन्दिर और सराय के बीच सार्वजनिक सड़क पर लोहे के फाटक को बन्द कर दिया गया था। एक टैंक द्वारा उसे तोड़ना पड़ा। सड़क के दोनों ओर बख्तरबन्द गाड़ियाँ खड़ी की गयी जिससे दोनों परिसरों की लड़ाई अलग रहे। तब नवी कुमाऊँ बटालियन अन्दर गयी। सड़क के दोनों ओर की इमारतों की छतों से उन पर गोलियाँ चलायी गयी, मगर मन्दिर परिसर में गये अपने साथियो के विपरीत उन्हे लड़कर उस इमारत मे घुस पाने मे सफलता मिली, जिसे खाली करने का आदेश था।

इन दोनों इमारतों मे अधिकाश आतंकित तीर्थयात्री, अकाली मोर्चे के समर्थक

और अकाली त्रिमूर्ति के दो नेता अपने कर्मचारियों समेत दुबके पड़े थे। उनके पास न बिजली थी न पानी, क्योंकि पानी की टंकी नष्ट हो चुकी थी। लोंगोवाल, तोहड़ा और उनके कई साथी तेजासिंह समुन्द्री हाल में तोहड़ा के कार्यालय में थे। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के सचिव भानसिंह ने बाद में स्थिति का वर्णन किया :

> उन्होंने बिजली और पानी की सप्लाई काट दी। कमरों में बड़ी गर्मी थी। पानी खत्म हो गया था। हमारे पास पानी की दो प्लास्टिक की बाल्टियां थीं। लोंगोवाल को इनकी रखवाली के लिए दो आदमियों को रखना पड़ा। बहुत-से लोगों ने पसीने से तर अपनी कमीजों को निचोड़ कर प्यास बुझाने की कोशिश की।

सेना तेजासिंह समुन्द्री हाल में करीब 1 बजे रात में घुसी। एक अफसर के अनुसार, तोहड़ा और लोंगोवाल कच्छे और बनियान ही पहने हुए थे। सेना कहती है कि उन्होंने आत्मसमर्पण किया। मगर भानसिंह इस बात को नहीं मानते। उनका कहना है, 'सेना अन्दर घुस आयी और उसने हमें गिरफ्तार कर लिया। हमने आत्मसमर्पण नहीं किया।' यह तो कहने का एक ढंग-भर है। सच बात यह है कि तोहड़ा और लोंगोवाल ने सेना का कोई विरोध नहीं किया।

अकाली नेताओं को एक कार्यालय में रखा गया। बाकी लोगों को बाहर आकर गुरु रामदास सराय के आंगन में बैठने को कहा गया। भानसिंह के अनुसार वहां 250 के आसपास लोग थे। आतंकवादियों ने जब देखा कि लोग बाहर आ रहे हैं, तो उन्होंने उन पर एक हथगोला फेंका। भानसिंह ने इस घटना का वर्णन इस तरह किया :

> अचानक एक जबर्दस्त धमाका हुआ। चारों ओर भगदड़ मच गयी। लोग भागकर बरामदे और कमरों में जाने लगे। मैं और अविनाशी सिंह, अकाली दल के भूतपूर्व सचिव गुरुचरण सिंह के पास बैठे थे, जिन पर भिंडरांवाले ने सोढ़ी को मारने का आरोप लगाया था। गुरुचरण को अन्दर भागते हुए गोली लगी। हमने पाया कि सैनिक हम पर ही गोलियां चला रहे हैं। सेना को लगा था कि हममें से ही किसी ने हथगोला उधर फेंका था। मगर शायद यह गोला आतंकवादियों ने सराय के पीछे पानी की टंकी पर फेंका था। हम तोहड़ा के कमरे में गये और लोंगोवाल को बताया कि वहां क्या हो रहा है। लोंगोवाल बाहर आये और मेजर पर चिल्लाकर बोले, 'इन लोगों को मत मारो, ये आतंकवादी नहीं हैं। ये लोग शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के कर्मचारी

हैं।' मेजर ने अपने आदमियों को गोलीबारी बन्द करने का आदेश दिया। सुबह हमने गिना कि 70 व्यक्ति आँगन में मरे पड़े थे। उनमें औरतें और बच्चे भी थे।।

श्वेतपत्र में सरकार ने यह तो स्वीकार किया है कि इस घटना में 30 औरतों और बच्चों समेत 70 व्यक्ति मारे गये, मगर सरकार ने सारा दोष आतंकवादियों पर डाला और सेना की भूमिका के बारे में कुछ नहीं कहा। भार्नसिंह के अनुसार, जो लोग बच गये, उन्हें गुरु रामदास सराय के आँगन में तब तक बिठाया गया जब तक अगले दिन कर्फ्यू नहीं हट गया। उसके अनुसार, उनको खाना-पीना या दवा कुछ भी नहीं दिया गया। भार्नसिंह का कहना था कि कुछ लोगों ने वह पानी पिया जो सेना द्वारा उड़ायी गयी पानी की टंकी से बिखरकर आँगन के गड्ढों में जमा हो गया था। तीन बच्चों की माँ करनैल कौर ने, जो अपने गाँव के 65 अन्य लोगों के साथ लोगोवाल के मोर्चे में शामिल होने आयी थी, कहा कि 'जब लोगों ने पानी माँगा तो जवानों ने कहा कि जमीन पर पड़े पेशाब और खून का मिक्सचर पी लो।'

भार्नसिंह ने पत्रकार और इतिहासकार खुशवन्त सिंह को बताया कि सेना ने कुछ युवकों को गोली मार दी थी, जिन्हें तेजा सिंह समुन्द्री हाल से बाहर लाया गया था। उसने कहा :

> मैंने 30-35 सिखों को सिर के ऊपर हाथ उठाये पंक्तिबद्ध देखा। मेजर उन्हें मारने का आदेश देने ही वाला था। जब मैंने चिकित्सा सहायता माँगी तो मेजर गुस्से में आ गया और मेरे सर से पगड़ी फेंक कर अपने आदमियों को मुझे गोली मारने का आदेश दिया। मैं पीछे मुड़ा और लाशों तथा घायलों के ऊपर से भागते हुए एक दीवार के सहारे सरककर जान बचायी। मैं टोहड़ा और लोगोवाल के कमरे में गया और उन्हें यह घटना बतायी। सरदार करनैल सिंह नाग ने भी, जो मेरे पीछे ही चला आया था, इस घटना के बारे में बताया कि 30-35 युवकों को तोपों से उड़ा दिया गया। ये सब युवक देहाती थे।[2]

मगर तेजासिंह समुन्द्री हाल से पकड़े गये सभी लोग बेकसूर नहीं थे। औरों के साथ भिंडरांवाले का बातूनी दुभाषिया हरमिन्दर सिंह सन्धू भी था, जो आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेडरेशन का सचिव भी था। जब मैं सैनिक कार्रवाई के एक दिन पहले उससे मिला था तो उसने डींग हाँकी थी, 'संतजी का हर अनुयायी स्वर्ण-मन्दिर की रक्षा में अपनी जान दे देगा।' मगर जब समय आया, हरमिन्दर सिंह

सन्धू ने चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया।

गुरुरामदास सराय, जहाँ यात्री अटे पड़े थे, कलकत्ता के 'ब्लैक होल' का दृश्य उपस्थित करता था। अध्यापिका रणबीर कौर और उसके पति ने उन 12 बच्चों के साथ, जिनकी देखभाल उनके ऊपर थी, अपने आपको कमरा नम्बर 144 में बंद कर रखा था। रणबीर कौर ने बाद में बताया :

> हम सब एक-दूसरे से सटे हुए थे। हमें मालूम ही नहीं था कि क्या हो रहा है। भयानक शोर था। हम पिछले 24 घंटे से कमरे से बाहर नहीं निकले थे और हमारे पास खाना-पीना कुछ भी नहीं था। बहुत गर्मी पड़ रही थी। मैंने बच्चों को कह दिया कि हमें अब मरने के लिए तैयार रहना चाहिए। वे रोते रहे।

रात एक बजे कुमाऊं रेजीमेंट सराय में घुस आयी और सबको बाहर आने को कहा। मगर यह उनकी यातना का अन्त नहीं था। रणबीर कौर का कहना है :

> छह तारीख की सुबह सेना गुरुरामदास सराय में आयी और कमरों से सबको बाहर निकलने को कहा। हमें आँगन में लाया गया। मर्दों को औरतों से अलग किया गया। हमें भी बूढ़ी और जवान औरतों में बाँटा गया। और इस तरह मुझे बच्चों से अलग होना पड़ा। मगर मैं बूढ़ी औरतों में शामिल हो गयी। जब हम वहाँ बैठे थे, सेना ने तहखाने से 150 लोगों को निकाला। उनसे जब पूछा गया कि वे पहले बाहर क्यों नहीं आये तो उन्होंने कहा कि दरवाजे बाहर से बन्द कर दिये थे। उनसे हाथ ऊपर उठाने को कहा गया और पन्द्रह मिनट बाद उन्हें गोली से उड़ा दिया गया। दूसरे युवकों से पगड़ियाँ खोलने को कहा गया, इन पगड़ियों का इस्तेमाल पीठ पीछे उनके हाथ बाँधने के लिए किया गया। सेना ने बंदूकों के कुंदे उनके सर पर मारे।

तहखाने के लोग बंगलादेशी मुसलमान थे, जिनका अकाली आंदोलन से कोई लेना-देना नहीं था। ये गैर-बंगाली थे, जिन्हें आमतौर पर बिहारी मुसलमान कहा जाता है। उन्होंने 1971 के मुक्ति आंदोलन में पाक सेना का साथ दिया था और पिछले तेरह साल से बंगलादेश के विभिन्न शरणार्थी शिविरों में रहते आये थे। पाकिस्तान सरकार ने इन बिहारियों की कोई भी जिम्मेदारी लेने से इनकार कर दिया, इसलिए भिंडरांवाले और उनके अनुयायी अलग से इन लोगों को सीमा पार कराने का फायदेमन्द व्यापार भी कर रहे थे।

दो सिख युवकों—शार्दूल सिंह और मलूक सिंह को, जो गुरु अर्जुन की शहादत के समारोह में हिस्सा लेने स्वर्णमन्दिर आये थे, सेना ने सराय से रिहा नहीं किया। उनके एक बड़े भाई ने गाँव से भारत के सिख राष्ट्रपति जैलसिंह को उनके अनुभवों के बारे में लिखा। बड़े भाई सुजान सिंह मरगिदपुरी ने लिखा :

> ये युवक और कुछ दूसरे तीर्थयात्री कमरा नम्बर 61 में ठहरे। सेना ने सभी कमरों की तलाशी ली। उनके कमरे से कोई आपत्तिजनक चीज बरामद नहीं हुई। सेना को उनके पास भी कोई आपत्तिजनक चीज नहीं मिली। सेना ने उस कमरे में 60 यात्रियों को देखा और फिर न सिर्फ दरवाजा बंद किया, बल्कि खिड़की भी बंद कर दी। बिजली काट दी गयी। 5 जून और 6 जून के बीच की रात बड़ी गर्मी थी। इन कैदी युवकों को थोड़ी देर बाद भयकर प्यास लगी। उन्होंने दरवाजे खटखटाये और ड्यूटी पर तैनात सैनिकों से पानी माँगा। पानी तो नहीं मिला, गालियाँ जरूर मिलीं। दरवाजा नहीं खोला गया। भयकर प्यास और दम घुटने के कारण कमरे के अन्दर लोग बेहोश होने लगे और अकल्पनीय यातनाएँ सहने पर मजबूर हुए। 6 जून को सुबह आठ बजे जब कमरे का दरवाजा खोला गया, तब तक 60 में से 55 लोग मर चुके थे। बाकी पाँच भी अधमरी हालत में थे।

बचे हुए पाँच लोगों को इस आतंक-भरी रात के बाद सेना ने गिरफ्तार किया और उन्हें पूछताछ करने के लिए शिविरों में ले गयी। यही हाल रणबीर कौर, उसके पति और उन बच्चों का हुआ जिनकी वे देखभाल कर रहे थे। दो महीने बाद इनमें से तीन बच्चों को एक प्रसिद्ध समाजसेवी द्वारा दिल्ली के सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दाखिल करने के बाद रिहा कर दिया गया। रणबीर कौर अगस्त के अन्त में रिहा हुई। वह आजाद हुए तीनों बच्चों से जा मिली, मगर किसी ने उसे यह नहीं बताया कि दूसरे नौ बच्चों का क्या हुआ।

बाद में सराय क्षेत्र की लड़ाई के बारे में मेजर-जनरल ब्रार ने कहा :

> हमें जो हुक्म दिये गये थे उनके मुताबिक हमें केवल उनसे उसी हालत में लड़ना था जब वे हमें इसके लिए मजबूर करते। अधिक-से-अधिक लोगों की जान बचाने की कोशिश करनी थी और यह भी देखना था कि बेकसूर लोग बच जायें। मुझे इस बात की खुशी है कि बाकी हिस्से को मुख्य परिसर से अलग करने की वजह से हम इस उद्देश्य को बहुत हद तक हासिल करने में कामयाब रहे।

यह दावा प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा दिये गये ब्यौरों से प्रमाणित नहीं होता।

13

स्वर्णमन्दिर

6 जून 1984

स्वर्णमन्दिर के लिए होने वाली समूची लड़ाई के दौरान सेवादार हरी सिंह अकाल तखत, जहाँ रात में विश्राम के लिए गुरु ग्रंथ साहब को रख दिया जाता है, के एक कमरे में तीस दूसरे लोगों के साथ छिपा रहा। हालांकि यह कमरा देवस्थल के सबसे आगे पड़ता है, लेकिन यह आश्चर्य ही है कि गोलाबारी के बावजूद यह ज्यादा क्षतिग्रस्त नहीं हुआ। टैंकों की गोलाबारी बंद हुई तो भिंडरांवाले के गुरु करतार सिंह का बेटा अमरीक सिंह कमरे में आया। भिंडरांवाले के अनुयायियों द्वारा की गयी अनेक हत्याओं के पीछे अमरीकसिंह का ही दिमाग था। उसने कहा, 'अब हम टैंकों का मुकाबला नहीं कर सकते। तुम लोग बाहर जा सकते हो। हम यहीं रहेंगे।' पंद्रह मिनट बाद भिंडरांवाले खुद अपने पैंतालीस अनुयायियों के साथ कमरे में आया। वह मुख्य कक्ष में गया। गुरुओं की गद्दी अकाल तखत के सामने उसने अरदास की। फिर जीवित बचे लोगों से बोला, 'वे लोग जो शहीद होना चाहते हैं, मेरे साथ यहाँ रुक सकते हैं। जो लोग आत्मसमर्पण करना चाहते हों, वे चले जायें।'

लगभग तीस लोग भिंडरांवाले के पीछे-पीछे चले। वह मलबे के ढेर के बीच से रास्ता बनाता हुआ अकाल तखत के सामने की ओर बढ़ रहा था। वे लोग गलियारे में कूदे और सेवादार हरी सिंह के अनुसार, उनका स्वागत गोलियों की बौछार ने किया। उनमें से कुछ लोगों ने स्वर्णमन्दिर की ओर खुलने वाले दरवाजे की ओर दौड़ने की कोशिश की, दूसरे लोग परिसर के उत्तर की ओर स्थित इमारतों की दिशा में दौड़े। अमरीक सिंह तो फौरन गिर गया, लेकिन कुछ लोगों ने भागना जारी रखा। तभी गोलियों की एक बौछार और हुई और सेवादार हरी सिंह ने देखा कि दस-बारह नौजवान और गिर गये। इसके बाद हरी सिंह ने सोचा कि वह यहाँ ज्यादा सुरक्षित नहीं है, इसलिए वह अकाल तखत के पिछवाड़े ग्रंथी राम सिंह के कमरे में आ गया। मुख्य ग्रंथी प्रीतम सिंह भी उसी कमरे में छुपे हुए थे। थोड़ी देर में भिंडरांवाले के अनुयायियों का एक गुट उस कमरे में आया। उसने बताया, 'अमरीक सिंह शहीद हो गया है।' भिंडरांवाले के बारे में पूछने पर उन्होंने बतलाया कि हमने उन्हें मरते हुए नहीं देखा। उन नौजवान सिखों ने इसके बाद

पारम्परिक कपड़े उतारे, बुशर्ट और पैंट पहनी और अकाल तख्त के पीछे की ओर से भाग गये। अकाल तख्त को बाहरी इमारतों से जोड़ने वाला बाँस का एक जीना था। इनमें से कोई युवक वहाँ पर तैनात बिहार रेजिमेंट के घेरे को तोड़ने में कामयाब हो गया या नहीं, इसकी जानकारी किसी को नहीं है।

भारत के राष्ट्रपति के एक वरिष्ठ अधिकारी त्रिलोचन सिंह को अकाल तख्त के एक ग्रंथी ने बतलाया कि जब भिंडरांवाले अकाल तख्त से बाहर भागा तो पहले उसकी जाँघ में गोली लगी, लेकिन उसे फिर से इमारत में वापस ले जाया गया। मन्दिर परिसर के भीतर के एक वरिष्ठ सैनिक अधिकारी ने सतीश जेकब से इसकी पुष्टि की थी कि जब सिख युवकों का एक जत्था अकाल तख्त से निकल कर बाहर की ओर भागा तो सैनिकों ने गोली जरूर चलायी थी। लेकिन अधिकारी यह नहीं बता सका कि उनमें भिंडरांवाले भी था या नहीं। उसने यह भी बतलाया कि परिसर के सामने की ओर लंगर के नजदीक तैनात कुछ युवक पवित्र सरोवर में कूद पड़े और उन्होंने स्वर्णमन्दिर की ओर तैरने की कोशिश की, क्योंकि उन्हें मालूम था कि सेना स्वर्णमन्दिर की तरफ गोलियां नहीं चलायेगी। लेकिन जिन्दा बचे लोगों में से किसी ने भिंडरांवाले या शाहबेग सिंह को मरते नहीं देखा। सरकार का कहना है कि उनकी लाशें अकाल तख्त के तहखाने में पायी गयी जब सेना ने *6 जून की रात को वहाँ प्रवेश किया। कहा जाता है कि शाहबेग सिंह के हाथ में उस वक्त भी 'वाकी-टाकी' था।*

मन्दिर के दूसरे ग्रंथी ज्ञानी पूरन सिंह को सैनिकों ने बतलाया था कि भिंडरांवाले, अमरीक सिंह और शाहबेग सिंह की लाशें अकाल तख्त के सामने के गलियारे में पायी गयी थी—लेकिन 6 जून की रात को नहीं, 7 तारीख की सुबह। वहाँ पड़ी तीनों लाशों के फोटो भी हैं, लेकिन उन तसवीरों से यह भी पता चलता है कि शाहबेग सिंह की बाँहों में रस्सी बाँधी गयी है। इसलिए संभावना यह है कि उसके शरीर को अकाल तख्त से बाहर निकालने के लिए घसीटा गया होगा। हो सकता है कि सैनिकों ने सिर्फ यह खबर दी हो कि उन्होंने लाशों को अकाल तख्त के सामने पड़े हुए देखा था और उन्हें इसकी जानकारी न रही हो कि असल में वे *लाशें पायी कहाँ गयी थी।*

स्वर्णमन्दिर का पुस्तकालय जलाया जाना सैनिक कारंवाई की सबसे विवादास्पद घटनाओं में थी। इस पुस्तकालय में अत्यन्त मूल्यवान पाडुलिपियाँ थी जिनमें कुछ सिख गुरुओं की हस्तलिपि में लिखी गुरु ग्रंथ साहब की प्राचीन प्रतियाँ भी थी। इस घटना के समय वहाँ मौजूद एक वरिष्ठ सैनिक अधिकारी के अनुसार, ब्रिगेडियर दीवान और उनके सैनिक पुस्तकालय के दरवाजे के ठीक सामने पूरियों का नाश्ता कर रहे थे कि तभी किसी ने छिप कर उन पर गोली चलायी। वे बाल-बाल बचे। मद्रास बटालियन का नेतृत्व करने वाले लेफ्टिनेंट-कर्नल ने एक मशीन-

गन उठायी और गोलियों का जवाब दिया। छिपे हुए आतंकवादी पुस्तकालय की एक खिड़की से दूसरी खिड़की की ओर भागते हुए सैनिकों को अपना निशाना बनाते रहे। दोपहर चार बजे तक सेना उन तीनों को पकड़ने में कामयाब नहीं हो पायी। अधिकारी के अनुसार, इसी कार्रवाई के दौरान पुस्तकालय में आग लगी। हालांकि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के सचिव भान सिंह के अनुसार, इस घटना की अगली सुबह उन्होंने पुस्तकालय को सही-सलामत देखा था।

बहुत-से सिखों का मानना है कि पुस्तकालय में सेना ने जानबूझ कर आग लगायी। उदाहरण के लिए, चंडीगढ़ में सिख संस्था के संचालक अशोक सिंह के अनुसार, 'कोई भी फौज अगर किसी राष्ट्र को नेस्तनाबूद करना चाहती है तो वह पहले उसकी संस्कृति को नेस्तनाबूद करती है। इसीलिए हिंदुस्तानी फौज ने पुस्तकालय को आग लगायी।' सरकार के श्वेतपत्र के अनुसार पुस्तकालय में आग तब लगी जब सेना स्वर्णमन्दिर परिसर में दक्षिणी फाटक से घुसी, और यह जब जनरल दीवान और उनके साथी नाश्ता कर रहे थे उससे कई घंटे पहले की घटना है। श्वेतपत्र में लिखा है :

> आतंकवादी पुस्तकालय की इमारत में कई जगहों से मशीनगनों से गोला-बारी कर रहे थे और देशी हथगोलों को दियासलाइयों से आग लगाकर फेंक रहे थे। इसी दौरान पुस्तकालय में आग दिखायी पड़ी। सेना के आग बुझाने वाले दस्ते पुस्तकालय में लगी आग बुझाने दौड़े, लेकिन आतंकवादियों की भारी गोलाबारी के कारण उनकी कोशिश नाकाम हो गयी। जब तक आतंकवादियों के अड्डों पर कब्जा किया जाता, तब तक पुस्तकालय स्वाहा हो चुका था।

पुस्तकालय की आगजनी के एक प्रत्यक्षदर्शी सैनिक अधिकारी द्वारा दिये गये ब्यौरे और श्वेतपत्र में दिये गये ब्यौरे में विरोधाभास के कारण सरकारी बयान के बारे में संदेह होना स्वाभाविक है। फिर भी इस बात पर विश्वास करना मुश्किल है कि जिस सेना ने स्वर्णमन्दिर की दिशा में गोलियां न चलाने के आदेश का पालन करते हुए अपने आप पर अंकुश लगाया हो, वह पुस्तकालय जैसी महत्वपूर्ण इमारत को जानबूझ कर आग लगा सकती है।

छह जून को मध्याह्न तक दोनों परिसरों पर सेना का नियंत्रण हो चुका था और दो घंटों के लिए कर्फ्यू हटा लिया गया। मेजर-जनरल बरार, जो इस समय तक मन्दिर परिसर के भीतर थे, मानते थे कि अब भी लोग स्वर्णमन्दिर में और परिक्रमा के चारों ओर की इमारतों के कुछ कमरों में छिपे हुए हैं। इसीलिए उन्होंने अपने अधिकारियों को उनसे आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। स्वर्ण-मन्दिर में छिपने वालों में से एक ग्रंथी ज्ञानी पूरन सिंह भी थे। स्वर्णमन्दिर में

जो-जो हुआ उसके बारे में उन्होंने सतीश जेकब को यों बतलाया :

मैं 5 जून की शाम 7.30 बजे हरिमन्दिर साहब यह देखने के लिए गया कि वहां पर धार्मिक कृत्य पूरा हो रहा है या नहीं। जैसे ही मैंने परिक्रमा पर कदम रखा, मैं एक लाश से टकराया। गोलियां लगातार चल रही थी और दर्शनी ड्योढी तक पहुँचने के लिए मुझे एक-एक खम्भे के पीछे छिपना पड़ा। दर्शनी ड्योढी पर एक और शव पड़ा हुआ था। मैं कुछ गज दौड़ कर अकाल तखत तक पहुँचा। हरिमन्दिर में रात्रिपूजा अकाल तखत पे रात्रिपूजा शुरू होने के पांच मिनट बाद शुरू होती है। मैं जानना चाहता था कि क्या अकाल तखत में पाठ शुरू हो गया है? मैंने भिंडरांवाले की एक झलक देखी। हम एक-दूसरे से कुछ बोले नहीं। 7 बजकर 45 मिनट पर मैं अकाल तखत से निकलकर दर्शनी ड्योढ़ी की तरफ लपका। वहां से मैं हरिमन्दिर साहब की ओर भागा—बिना इस बात की परवाह किये कि चारों ओर से गोलियाँ चल रही हैं। मैंने रात्रिपूजा शुरू की। थोड़ी देर बाद मेरे एक साथी ज्ञानी मोहन सिंह भी इसमें शामिल हो गये। गोलीबारी की तीव्रता को देखते हुए हमने सामने वाले दरवाजे को छोड़ कर बाकी सारे दरवाजे बन्द करने का फैसला किया। जल्द ही हमने सारे धार्मिक कृत्य निपटा डाले। इसके बाद हम गुरुग्रंथ साहब को लेकर सबसे ऊपर के कमरे में चले गये, जिससे इस पवित्र ग्रंथ को कोई क्षति न हो। मुख्य ग्रंथी ज्ञानी साहिब सिंह ने स्पष्ट निर्देश दिये थे कि अगर स्थिति ठीक न हो तो किसी भी हालत में गुरु ग्रंथ साहब को अकाल तखत न ले जाया जाये।

हरिमन्दिर साहब की पहली मंजिल की खिड़की से मैंने देखा कि एक टैंक परिक्रमा पर खड़ा हुआ है और उसके बल्ब जल रहे हैं। मैंने सोचा कि शायद यह दमकल गाड़ी है, जो सरोवर से पानी लेने आयी हुई है जिससे वह लगभग हर जगह, हर कमरे में लगी हुई आग को बुझा सके। लेकिन कुछ ही मिनट बाद मेरा यह विश्वास टूट गया जब मैंने देखा कि वह गाड़ी आग बुझाने की बजाय आग उगलने में लगी हुई है। करीब साढ़े दस बजे तक परिक्रमा में ऐसे तेरह टैंक इकट्ठा हो चुके थे। वे पश्चिम की तरफ से, जहां गुरु राम दास सराय, लंगर और तेजा सिंह समुन्द्री हॉल है, सीढ़ियों को तोड़ कर अन्दर घुसे थे। एक के बाद एक गोलाबारी से आकाश में आग जलती रही। जब पहला गोला दर्शनी ड्योढ़ी के निचले हिस्से को छेदता हुआ आया तो मैंने देखा कि महाराजा रणजीत सिंह द्वारा प्रदान की गई ऐतिहासिक चांदनी (चंदोवे) में आग लग गयी। एक के बाद एक बड़े-बड़े गोले दर्शनी ड्योढ़ी से टकराते रहे। और कुछ समय पहले तक जो एक खूबसूरत इमारत थी, अब आग

की लपटों से घिर चुकी थी। तोशखाना भी आग की लपटों में था। कभी-कभार एक-आध गोली आकर हरिमन्दिर साहब पर भी लगती थी। भीतर हम लोग कुल मिलाकर सत्ताइस आदमी थे जिनमें से ज्यादातर रागी और सेवादार थे।

छह जून को बिलकुल तड़के हम लोग पवित्र ग्रंथ को लेकर नीचे गये और वहाँ हर रोज होने वाले धार्मिक कृत्यों को पूरा किया, जैसे 'महाराज दा प्रकाश करना' और ग्रंथ के पदों का पाठ करना। अगल-बगल के दोनों दरवाजे बन्द थे और सामने और पीछे के दरवाजे खुले थे। गोलियाँ भीतरी और बाहरी दीवारों पर सुनहली परत को जगह-जगह से उधेड़ती हुई टकराती रहीं। हमने जैसे ही पाठ समाप्त किया, उसके फौरन बाद हमारे एक साथी रागी अवतार सिंह को गोली लगी। हम उसे खींचकर एक कोने तक ले गये। तभी एक दूसरी गोली आकर पवित्र ग्रंथ साहब पर लगी। हमने इस ग्रंथ को सुरक्षित रखा हुआ है।

इस दौरान अकाल तखत पर गोलीबारी जारी थी। दूसरी जगहों पर भी गोलीबारी जारी थी। हमें प्यास लगी थी और हम पानी के लिए तरस रहे थे। हम लोग जमीन पर सरकते हुए अपने और अपने घायल साथियों के लिए पानी लेने पवित्र सरोवर तक गये।

लगभग पाँच बजे शाम उन्होंने लाउडस्पीकरों से एलान किया कि जो लोग हरिमन्दिर साहब में छुपे हुए हैं, वे बाहर आ जायें, उन्हें गोली नहीं मारी जायेगी। मैं और ज्ञानी मोहन सिंह तो अन्दर ही रह गये, दूसरे लोग अपने हाथ ऊपर उठाये हुए बाहर निकले। हमारे साथियों ने मेजर-जनरल ब्रार को बताया कि अभी हम लोग अन्दर ही हैं। ब्रार ने हमसे बाहर निकल आने के लिए कहा। लगभग साढ़े सात बजे शाम को एक अफसर और दो सैनिक हमें ले जाने के लिए अन्दर आये।

हमारे बाहर आने पर मेजर-जनरल ब्रार ने हमसे पूछा कि हमने उनके आदेश का पालन क्यों नहीं किया? हमने उन्हें बताया कि हम अन्दर बहुमूल्य सामान और गुरु ग्रंथ साहब को छोड़कर नहीं आ सकते थे। हमने उनसे गुसल जाने की इजाजत चाही। वे मान गये। तब हमें एक सिख अफसर और कुछ सिपाहियों द्वारा वापस हरिमन्दिर साहब तक ले जाया गया। यह सिख अफसर उद्दंड था और उसने हमको लगातार अपने आगे रखा जिससे अगर अन्दर छिपा कोई व्यक्ति गोली चलाये तो हम ही मारे जायें। चूंकि न तो हरिमन्दिर साहब के भीतर कोई छिपा हुआ था और न ही वहाँ कोई बंदूक थी, इसलिए हमें वैसा करने पर कोई नुकसान होता नहीं दिखायी पड़ा। इस समय तक रात के लगभग साढ़े आठ बज चुके थे। मैंने देखा कि अवतार

सिंह हरिमन्दिर साहब के बाहर निकल आया था और ग्रंथ साहब की ओर सिर और पूर्वी दरवाजे की ओर अपनी टाँगें किये हुए औधा पड़ा था। जब हरिमन्दिर साहब के भीतर कही कोई बंदूक नहीं मिली तो वह फौजी अफसर अपने व्यवहार पर शर्मिन्दा हुआ। जब हम लोग लौटकर नीचे आये तब तक अवतार सिंह मर चुका था। हम दोनो को उसी जगह छोड़कर अफसर और सैनिक बाहर चले गये। अगली सुबह हम दोनों को स्वर्णमन्दिर के मुख्य ग्रंथी ज्ञानी साहिब सिंह के घर आटा मंडी ले जाया गया। वहाँ हम लोगों को निर्देश दिया गया कि न तो हम लोग बाहर निकलें और न ही किसी से कोई बात करें। ज्ञानी साहिब सिंह को हरिमन्दिर साहब ले जाया गया।

ज्ञानी पूरन सिंह के द्वारा दिये गये ब्यौरे की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि स्वर्णमन्दिर में उस रात रखी गयी सिख ग्रंथ की एक प्रति के पृष्ठो में गोली के सूराख हैं। लेकिन बाकी सारे प्रमाणों से यह पता चलता है कि पूरन सिंह को टैंको के आने का वक्त सही नही मालूम था। उन्होने कहा कि टैंक परिक्रमा में साढ़े दस बजे तक आ गये थे, जब कि अन्य सभी सूचनाओ के अनुसार वे वहाँ बाद में आये। इसके अलावा वह अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जो टैंकों की संख्या इतनी ज्यादा (13) बतलाते है।

पूरन सिंह का मानना है कि स्वर्णमन्दिर के भीतर हथियार नही थे, जबकि सैनिक कार्रवाही का संचालन करने वाले तीन जनरलो का कहना है कि सेना पर गोली मन्दिर से चलाई गयी। भूतपूर्व लेफ्टिनेंट-जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा ने कहा कि जब वे हरिमन्दिर साहब गये तो वहाँ पहले से मोर्चेबंदी का कोई सबूत उन्हें नहीं मिला। लेकिन उन्होंने यह स्वीकार किया कि इसका इस्तेमाल मौके-बेमौके पर गोली चलाने के लिए गतिशील टुकड़ियो द्वारा किया गया होगा।

इतना तो तय है कि स्वर्णमन्दिर पर भी गोलियों के सूराख हैं। ऐसे तीन सौ सूराखों को गिना जा चुका है। इनमे से कुछ सूराख तो तब हुए, जब सैनिक कार्रवाई के पहले सी० आर० पी० ने गोलियाँ चलायी। दूसरे बहुत सारे सूराख स्वर्णमन्दिर परिसर की हिफ़ाजत करने वाले लोगो की गलत-सलत गोलाबारी से भी बने होंगे। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्वर्णमन्दिर का पूरा ढाँचा सही-सलामत बना रहा और इसे जो नुकसान पहुँचा, अगर उसकी तुलना अकाल तखत, पुस्तकालय, दर्शनी ड्योढ़ी और परिसर की दूसरी इमारतों से की जाये तो यह नुकसान न्यूनतम था। इस मायने मे सैनिक कार्रवाई बिल्कुल सफल कही.जा सकती है और इसका श्रेय भारतीय सेना के अनुशासन को जाना चाहिए। 40 वर्ग फुट का स्वर्णमन्दिर युद्ध के मैदान के बीचोबीच था। सेना पर चारो तरफ से गोली चलायी गयी। अगर सैनिको ने मेजर-जनरल बार के आदेशों को न माना होता तो

निश्चित ही स्वर्णमन्दिर वहुत ज्यादा क्षतिग्रस्त हो गया होता।

6 जून को मध्याह्न में जव कर्फ्यू हटाया गया तो परिक्रमा के चारों ओर, स्वर्ण-मन्दिर परिसर में परिक्रमा के ऊपर वने कमरों में फँसे 250 लोगों ने आत्मसमर्पण किया। आत्मसमर्पण करने वालों में नरिन्दरजीत सिंह नन्दा भी था जो मन्दिर का जनसम्पर्क अधिकारी था और जिसे एक वार भिंडराँवाले ने 'पढ़ा लिखा मूरख' कहा था, क्योंकि नन्दा ने सुझाव दिया था कि हथियारवन्द आन्दोलन की वजाय एक अखवार निकालना सिखों के अधिकारों के संघर्ष के सिलसिले में वेहतर माध्यम होगा। नन्दा ने सतीश जेकव को अपने अनुभवों के वारे में वताया :

> 5 जून की रात, जो कि हमले की असली रात थी, मोर्टारों ने इमारतों के प्लास्टर उखाड़ने शुरू कर दिये। मैं, मेरी पत्नी और मेरी दो लड़कियों ने पहली मंजिल के अपने फ्लैट से उतर कर दफ्तर में जाने का फैसला किया जो कि भूतल पर है। इस समय मैंने आत्मसमर्पण करने की सोची, लेकिन भिंडराँवाले के आदमी ने कहा कि 'परिसर के वाहर तुमने कदम रखा नहीं कि तुम लाश में वदल जाओगे'। अपने समूचे परिवार के सामने इस धमकी और दफ्तर के कमरे की असुरक्षा को देखते हुए मैंने एक सँकरे तहखाने में जाने का निर्णय लिया। तहखाने में एक फ्रिज था और एक एक्जास्ट पंखा भी लगा हुआ था जो हमारे लिए प्राणदायी सिद्ध हुआ। मैं वहाँ से वाहर होने वाली सैनिकों की वातचीत और उनके कमांडरों के आदेशों को सुन सकता था। तहखाने से लगी हुई एक दूसरी कोठरी थी, जहाँ एक सेवादार सोया करता था। मैंने सुना कि उस सेवादार को सेना वाहर घसीट रही है। उसे गोली मार दी गयी थी। चूंकि आतंकवादी हर झरोखे, खिड़की या सूराख का इस्तेमाल 'कवच' (पिल वाक्स) की तरह या उसमें से हथगोले फेंकने के लिए कर रहे थे, इसलिए सैनिकों ने फैसला किया कि ऐसे हर सूराख में से हथगोले अन्दर फेंके जायें। इनमें मेरे तहखाने के पंखे का छेद भी शामिल था। जैसे ही मैंने यह आदेश सुना, हम लोग सीढ़ियों के नीचे आ गये। कुछ ही मिनट वाद दो हथगोले अन्दर गिरे। उनकी किरचों ने दीवालों को तीन इंच गहराई तक उधेड़ डाला। लेकिन सौभाग्य से हम लोग वच गये। हमने रात सीढ़ी के नीचे ही गुजारी। आखिरकार 6 जून को 11 वजे दिन में मेरी पत्नी को लगा कि कोई सैनिक अफसर वाहर खड़ा है। उसने अफसर का ध्यान आकर्षित करने के लिए उसे आवाज देकर हम लोगों को वहाँ से निकालने की प्रार्थना की। उसने उससे कहा कि मेरी दो वेटियाँ साथ में हैं। अफसर ने वड़ी शालीनता से व्यवहार किया और वोला, चिन्ता मत कीजिए। मेरी भी दो वेटियाँ हैं। आपको कुछ नहीं होगा। आप लोग वहीं रहिए।' उसने हमारे

लिए चपाती, अचार और पीने के लिए पानी का इंतजाम किया जब कर्फ्यू हटा तो उसने हमें बाहर आने दिया।

हमें यहाँ-वहाँ चारो ओर बिखरी हुई लाशों के ऊपर पैर रखकर चलना पड़ रहा था। हमें घंटाघर के सामने के मैदान में ले आया गया। जैसे ही सैनिको ने देखा कि महिलाओं की जमात मे मैं अकेला पुरुष सदस्य हूँ, उन्होंने रायफल मेरी ओर तान कर पोजीशन ले ली। मुझे लगता है कि वे मुझे गोली मारने ही वाले थे कि एक ब्रिगेडियर ने मुझे पहचान लिया और उन्हें रोका। इसके बाद सैनिक हमें परिक्रमा के पार पुस्तकालय की ओर ले गये। एक लेफ्टिनेंट हमारे साथ था। दूसरी ओर पहुँचने के बाद उसने मुझे एक दीवाल से सटकर खड़ा हो जाने को कहा और फार्यारिंग स्क्वैड को कतारबद्ध कर दिया। उसने मुझसे प्रार्थना कर लेने के लिए कहा। मैंने अनुरोध किया कि मैं अपनी पत्नी और दोनों बेटियों से विदा लेना चाहता हूँ। इसी समय वही ब्रिगेडियर फिर दिखायी पड़ा। वह इस नौजवान अफसर पर चिल्लाया, 'अरे, यह तुम क्या कर रहे हो ?' अफसर ने जवाब दिया, 'सर, मैंने आपका आदेश गलत समझ लिया था। मैंने समझा था कि इस आदमी को गोली मारनी है।'

अब हमें जमीन पर बिठा दिया गया। मेरे हाथ मेरी पीठ की ओर बाँध दिये गये थे। उस भीड़ मे हम कुल मिलाकर 70 लोग थे। हम सभी लोगो को अपना सिर नीचे झुकाकर रखने के लिए कहा गया। सिर में अगर जरा भी जुबिश होती तो रायफल का कुंदा आकर सर पर टकराता। हमने पूरी रात बैठे-बैठे गुजारी।

स्वर्ण मन्दिर के सभी अधिकारियो—ग्रंथी, सेवादार, रागी और नन्दा जैसे आत्मसमर्पण करने वाले कर्मचारियो से निपटने के बाद सेना ने अपना रुख फिर अकाल तखत की ओर किया। हालांकि वहाँ से गोलियाँ चलनी बन्द हो गयी थी, लेकिन मेजर-जनरल ब्रार दिन-दहाड़े अपने आदमियों को वहाँ भेजकर कुछ और जिन्दगियो का जोखिम नहीं उठाना चाहते थे। भिंडरांवाले के किले मे धावा बोलकर जो भी मिले उसे गोली मार देने का आदेश देने के लिए वे धुंधलका होने तक इन्तजार करते रहे। सेना को बहुत कम प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और वह अकाल तखत मे घुसी, जो तहस-नहस हो गया था। इस वेदी के फर्श पर खाली कारतूसों के खोखों की परत बिछी हुई थी (एक अधिकारी ने बताया कि यह परत नौ इंच गहरी थी)। हवा मे मौत की गन्ध थी। जब इस सैनिक टुकड़ी का नेतृत्व करने वाले अधिकारी ने खबर दी कि भिंडरांवाले का किला फतह कर लिया गया है तो ब्रार ने उसके बाहर पहरा बिठा दिया और परिसर की तलाशी लेने के लिए सुबह होने का इन्तजार करने लगे। सेना के अनुसार, इसी तलाशी के दौरान

7 जून की सुबह भिंडराँवाले, शाहबेग सिंह और अमरीक सिंह की लाशें तहखाने में पायी गयीं।

भिंडराँवाले का 7 जून की शाम 7 बजकर 39 मिनट पर दाह-संस्कार किया गया। यह उस सैनिक अधिकारी का कहना है, जो उस समय दाह-संस्कार की ड्यूटी पर था। लगभग 10,000 लोगों की भीड़ मन्दिर के करीब इकट्ठा हो गयी थी, लेकिन सेना ने उन्हें रोक लिया। भिंडराँवाले, अमरीक सिंह और दमदमी टकसाल के उपप्रधान थारा सिंह की लाशें मन्दिर के ठीक बाहर बनायी गयी चिता पर लायी गयीं। चार पुलिस अधिकारियों ने उस लारी से भिंडराँवाले का शव उठाया, जो मुर्दाघर से लायी गयी थी और वे उसे आदर के साथ चिता तक लाये। अधिकारी के अनुसार, दाह-संस्कार में मौजूद कई पुलिस वाले उस समय रो रहे थे। उनमें से एक ने इस सारी कार्रवाई के इंचार्ज कैप्टन भारद्वाज को सिगरेट पीने से रोका। उन्होंने जवाब दिया—'ऊपर देखो, मैं तो कम-से कम तीस आदमियों से घिरा हुआ हूँ।' भारद्वाज ने यह पक्का करने के लिए कि लाश भिंडराँवाले की है या नहीं, उसके ऊपर से चादर हटाने की जिद की। एक अफसर ने भारद्वाज को पुलिस वालों से यह पूछते हुए सुना कि सन्त का शव इतनी बुरी हालत में क्यों है। एक पुलिस अधिकारी ने जवाब दिया, 'उग्रवादियों ने उसकी हड्डियाँ तोड़ डालीं।' लेकिन भिंडराँवाले की दाह-क्रिया के सही समय के बारे में मतभेद है, क्योंकि उसकी पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार उसका शव मुर्दाघर में साढ़े सात बजे तक आया ही नहीं था और उसका परीक्षण आठ बजे से पहले नहीं किया गया। रिपोर्ट में लिखा गया कि भिंडराँवाले शायद आग्नेयास्त्रों से हुए जख्मों के कारण मरा।

पोस्टमार्टम रिपोर्ट की सत्यता को लेकर भी सन्देह है। मेजर-जनरल शाहबेग सिंह की पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार उसकी लाश 9 तारीख तक मुर्दाघर में लायी ही नहीं गयी थी। रिपोर्ट के अनुसार तब तक उसकी लाश का पूरा पोस्टमार्टम सम्भव नहीं रह गया था, क्योंकि वह सड़-गल चुकी थी। लेकिन तसवीरों से पता चलता है कि सेना ने शाहबेग सिंह की लाश को सड़ने के काफी पहले ही खोज निकाला था। यह समझ पाना मुश्किल है कि सेना इतने दिनों लाश के खराब होने तक, शाहबेग सिंह का शव अपने कब्जे में क्यों रखे रही। सेना और पुलिस दोनों का हित इसी में था कि पोस्टमार्टम की रिपोर्ट बिल्कुल सही और सटीक हो। यह हो सकता है कि सेना तुरत-फुरत मौका मिलते ही उन लाशों की दाह-क्रिया कर डालना चाहती थी, क्योंकि दंगों को भड़काने के लिए लाश से ज्यादा ताकतवर कोई और चीज नहीं होती, और इसीलिए सेना पोस्टमार्टम के औपचारिक झंझट से बचना चाहती थी। अगर ऐसा है तो पोस्टमार्टम की ये रिपोर्टें जिन्हें देख भी लिया गया और जिनकी फोटो-कापी तक करवा डाली गयी, और कुछ नहीं, बाद

में सोची-गढ़ी गयी हैं।

जब शाहबेग सिंह के बेटे परबपाल सिंह ने पंजाब के राज्यपाल को अपने पिता के दाह-संस्कार में भाग लेने की इजाजत के लिए फोन किया तो राज्यपाल ने कहा कि ऐसे लोगों की तादाद हजारों में है जो अन्तिम संस्कार में भाग लेना चाहते हैं और अगर उन्होंने शाहबेग सिंह के बेटे को इसमें भाग लेने की इजाजत दी तो फिर दूसरे लोगों को भी देनी पड़ेगी, जो कि सम्भव नहीं है। जब परबपाल सिंह ने पूछा कि क्या उसे अपने पिता की अस्थियाँ मिल सकती हैं तो उसे बतलाया गया कि सरकार 'अस्थियों को भारत की किसी पवित्र नदी में प्रवाहित कर देगी।'

शाहबेग सिंह के अन्तिम संस्कार का कोई प्रमाण कहीं दर्ज नहीं है। उसकी अन्तिम क्रिया स्वर्णमन्दिर और सराय परिसर में पायी गयी दूसरी लाशों के साथ ही कर दी गयी होगी। शुरू में नगरपालिका के सफाई कर्मचारियों ने उन लाशों को हटाने में इनकार कर दिया था। आखिरकार रम का लालच देकर और यह छूट देकर कि लाशों में जो भी कीमती चीजें मिलें, वे ले सकते हैं, उन्हें इसके लिए तैयार कर लिया गया। उन्होंने लाशों को इकट्ठा करके कूड़ा ढोने वाली गाड़ियों में लादा और श्मशान ले गये।

श्वेतपत्र के अनुसार, सेना के कुल 83 लोग मारे गये, जिनमें चार अधिकारी भी हैं। 12 अधिकारी और 237 सैनिक घायल हुए। बहुत-से लोगों का दावा है कि सेना के हताहतों की संख्या इससे बहुत ज्यादा है। पत्रकार कुलदीप नैयर ने अपनी किताब 'ट्रेजेडी आफ दि पंजाब' में लिखा है कि सैनिक कार्रवाई के दौरान लगभग 700 जवान और अधिकारी मारे गये। उन्होंने कार्रवाई के तीन महीने बाद राजीव गांधी के एक वक्तव्य को भी उद्धृत किया है। लेकिन बाद में राजीव गांधी ने उस वक्तव्य का खंडन किया जो कि निश्चित ही बहुत अतिरंजित लगता था।

हमने जो अनुमान तैयार किया है उससे लगता है कि सरकारी आँकड़े सच्चाई के करीब हैं। केवल उन्हीं टुकड़ियों को सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा जिन्होंने अकाल तख्त पर धावा बोला। उस क्षेत्र की लड़ाई में थल सेना की जितनी कंपनियों ने हिस्सा लिया, उनकी संख्या परिक्रमा के दक्षिण की ओर छह और उत्तर की ओर तीन थी। पैदल सैनिकों की एक कम्पनी में सैनिकों की अधिकतम संख्या लगभग 200 होती है। यह तय है कि कम्पनी के सभी जवान संगीनों से लैस नहीं रहे होंगे। सक्रिय पैदल जवानों की संख्या करीब पचास प्रतिशत ही रही होगी। स्वर्णमन्दिर में प्रवेश करने वाली दूसरी एकमात्र टुकड़ी पैरा-कमांडो की थी, जिनकी कुल संख्या 80 थी। इसका मतलब यह निकला कि कुल मिलाकर जितनी टुकड़ियाँ इस कार्रवाई में हिस्सा ले रही थीं, उनके सैनिकों की संख्या 1000 के आसपास ही रही। सरकार के श्वेतपत्र में 332 लोगों के हताहत होने की बात

कही गयी है। इसका अर्थ हुआ कि सरकार के मुताविक लगभग एक तिहाई सेना हताहत हुई। यह किसी भी सेना द्वारा स्वीकार की जाने वाली सीमा से भी ऊपर ही ठहरती है। अगर हताहतों की संख्या और ज्यादा होती तो यह सोचना भी संभव नहीं लगता कि सेना लड़ाई जारी रख पाती। ऐसे भी आँकड़े उच्च कोटि की वीरता दर्शाते हैं।

सबसे ज्यादा नुकसान पैराशूट रेजिमेंट के पैरा-कमांडों का हुआ। उनमें लगभग पचास प्रतिशत हताहत हुए। वहाँ मरने वाले 17 कमांडों के सम्मान में इस रेजिमेंट ने उस साल अपना स्थापना समारोह भी नहीं मनाया। गार्ड भी काफी संख्या में हताहत हुए। मेजर-जनरल व्रार ने स्वीकार किया है कि एक ही हमले में 20 गार्ड मारे गये और 60 घायल हुए। एक वरिष्ठ अधिकारी ने सतीश जेकब को बताया कि ब्रिगेडियर दीवान के अधीन छह कम्पनियों के 137 लोग हताहत हुए। ये आँकड़े सरकार के वताये आँकड़ों के आसपास ही बैठते हैं। सतीश जेकब ने जिन अफसरों से वात की, सभी ने श्वेतपत्र में दी गयी संख्या को ठीक बताया।

दुर्भाग्य से नागरिक हताहतों के बारे में यह वात नहीं कही जा सकती। समस्या यह है कि पुलिस और सेना ने मृतकों की शिनाख्त करने की कोई कोशिश नहीं की, उनकी अन्तिम क्रिया एक साथ थोक में कर डाली गयी। मरने वालों की संख्या के बारे में एक-से-एक कल्पनातीत अफवाहें फैलती रहीं। कुछ ने तो इनकी संख्या 3000 तक बतायी। तालिका-1 में आँकड़े दिये गये हैं जो हम लोग 3 जून को दोनों परिसरों में सेना द्वारा घेर कर इकट्ठा किये गये लोगों के बारे में तैयार कर सके।

तालिका—1

1.	राज्य में खाद्यान्न की गतिविधि को रोकने के लिए अकाली दल द्वारा छेड़े गये मोर्चे में भाग लेने और गिरफ्तारियाँ देने के लिए आये अकाली समर्थकों की संख्या	1,700
8.	गुरु अर्जुन देव शहीदी दिवस मनाने के लिए आने वाले तीर्थयात्रियों की संख्या	950
3.	ग्रंथी, सेवादार और मन्दिर के अन्य कर्मचारी	80
4.	स्वर्णमन्दिर परिसर में रहने वाले शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवंधक समिति के कर्मचारी और उनके परिवार के सदस्य	300
5.	भिंडराँवाले के अनुयायी	500
6.	बब्बर खालसा तथा लोंगोवाल का समर्थन करने वाले दूसरे गुट	150
		3,680

सब जानते हैं कि 3 जून को कर्फ्यू उठाया गया, भिंडरांवाले के लगभग 200 अनुयायी भाग निकले। 5 जून को सैनिक कार्रवाई शुरू होने के ठीक पहले जब सेना ने थोड़ी-थोड़ी देर के लिए गोलाबारी की उस समय सराय परिसर की तरफ भी कुछ लोगों ने आत्मसमर्पण किया। प्रत्यक्षदर्शी इन लोगों की संख्या 200 से 400 तक बताते हैं। इसके बावजूद यही तथ्य प्रकट होता है कि मुख्य कार्रवाई और लड़ाई के दौरान दोनों परिसरों के भीतर मौजूद लोगों की कुल संख्या 3000 से भी ज्यादा थी।

प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार, जब दोनों लड़ाइयां खत्म हुईं तो मन्दिर परिसर से लगभग 250 लोगों ने और सराय परिसर से लगभग 500 लोगों ने आत्मसमर्पण किया। श्वेतपत्र कहता है कि 493 लोग मरे और 86 घायल हुए। कम-से-कम 1600 लोगों की गिनती इन आंकड़ों में यों ही छूटी रह जाती है। निश्चित ही यह मानना गलत होगा कि ये लोग लड़ाई में मारे गये। लेकिन नागरिक हताहतों के बारे में दिये गये इन सरकारी आंकड़ों पर एक बड़ा सवालिया निशान जरूर लगता है। वैसे यह आंकड़ा भी एक सेना द्वारा अपनी जनता के विरुद्ध की गयी कार्रवाई के लिहाज से काफी भयंकर है।

इसमें बहुत संदेह है कि अगर श्रीमती गांधी को स्वर्णमन्दिर में कार्रवाई के दौरान हताहतों की इतनी बड़ी संख्या होने का और अकाल तख्त के खिलाफ टैंक तक के इस्तेमाल करने की जरूरत का अंदाजा होता, तो वे सेना स्वर्णमन्दिर में प्रवेश करने का आदेश देतीं। फिर गड़बड़ी कहां हुई? सबसे बड़ा कारण था गुप्त-चर सेवा की नाकामयाबी। इसी कारण सैनिक जनरल भिंडरांवाले के अनुयायियों, हथियारों, सैनिक प्रशिक्षण और सबसे अधिक उनके लड़ने के माद्दे के बारे में गुमराह हुए। लेफ्टिनेंट-जनरल सुंदरजी ने मेरे सामने खुद स्वीकार किया : 'गुप्त-चर सेवा में कुछ-न-कुछ गड़बड़ी जरूर हुई।' सेना को तो स्वर्णमन्दिर परिसर के पूरे नक्शे के बारे में भी ठीक-ठीक जानकारी नहीं थी। एक जूनियर अधिकारी ने सतीश जैकब को इसके बारे में बताया :

> हमारी सबसे बड़ी समस्या यह थी कि परिसर की पूरी बनावट का नक्शा ही हमारी जानकारी में नहीं था। हमारे पास स्वर्णमन्दिर परिसर के भीतर का एक मोटा-मोटा खाका तो जरूर था, लेकिन हम वहां के अनेक ताखों, कमरों, तहखानों और सायबानों का अंदाजा नहीं लगा सके। हम पर दरअसल हर अंतरे-कोने से गोलियां चलायी गयीं।

यह स्पष्ट नहीं है कि मन्दिर की बनावट के बारे में सेना के नक्शे में इतनी खामियां किस वजह से थीं। सेना द्वारा मन्दिर की घेराबंदी करने के दिन तक भिंडरांवाले ने मन्दिर में प्रवेश करने वाले तीर्थयात्रियों को रोकने की कोई कोशिश

नहीं की थी। वे परिक्रमा के चारों ओर की पटरी पर घूम सकते थे—चाहे वे सिख हों या गैरसिख। इसलिए गुप्तचर सेवा के प्रशिक्षित लोग अगर चाहते तो स्वर्ण-मन्दिर परिसर का सही-सही नक्शा तैयार कर सकते थे। उत्तर प्रदेश की तराइयों में अर्ध-सैनिक कमांडो द्वारा तैयार किया गया स्वर्णमन्दिर परिसर का माडल भी सेना के पास था। जहाँ तक हथियारों का सवाल है, हर कोई जानता है कि पिछले कई महीनों से भिंडराँवाले और उसके साथी तस्करी के ज़रिये मन्दिर में हथियार जमा कर रहे थे। पंजाब के मुख्यमंत्री दरबारा सिंह ने दो साल पहले सार्वजनिक रूप से कहा था कि वे जानते हैं कि स्वर्णमन्दिर में हथियारों का उत्पादन भी हो रहा है। सिर्फ़ चीनी प्रक्षेपास्त्र-युक्त टैंक-प्रतिरोधी ग्रेनेड लांचर्स ही ऐसे हथियार थे जिनके बारे में सेना को शायद पता नहीं रहा होगा। लेकिन सेना ने अपनी मूल योजना में भी बख़्तरबंद टुकड़ियों का प्रयोग करने की बात शामिल नहीं की थी।

भिंडराँवाले की संघर्ष-क्षमता को आँकने में हुई गड़बड़ी को आसानी से समझा जा सकता है। भिंडराँवाले की खुद की ख्याति एक कायर आदमी के रूप में थी। अपने प्रसिद्ध होने के शुरू के दौर में, कहते हैं कि जब निरंकारियों के विरुद्ध जुलूस कूच कर रहा था तो वह बीच रास्ते से ही खिसक लिया। इसके अलावा कम-से-कम तीन बार अपनी गिरफ्तारी से बचने के लिए उसने गुरुद्वारों में शरण ली थी। अगर आत्मसमर्पण करके भिंडराँवाले अपनी इस ख्याति को फिर पुष्ट कर देता तो सारा-का-सारा प्रतिरोध बिखर जाता।

यह बात भी समझ में आने वाली है कि सेना ने आतंकवादियों के प्रशिक्षित होने के तथ्य को पूरी तरह नहीं आँका। जब भिंडराँवाले अपनी प्रातःकालीन संगत आयोजित करता था तो उसके चारों ओर रहने वाले नौजवान सीधे-सादे दिखते थे। वे यहाँ-वहाँ मटरगश्ती करते, लंगर की मुंडेर पर टिके हुए एक-दूसरे से बातचीत करते दिखायी देते थे। अपने नेता के लिए अपनी जान तक दे देने वाले प्रशिक्षित सैनिकों की बजाय वे ठगों-उचक्कों की तरह लगते थे। फिर भी मन्दिर परिसर की सुरक्षा के लिए जैसी बारीक योजना बनायी गयी थी, सेना के जनरलों को उसका सही अन्दाजा करना चाहिए था। उन्हें अर्से से यह बात पता थी कि मेजर जनरल शाहबेग सिंह मन्दिर की किलेबंदी कर रहा है। उन्हें पता था कि वह एक प्रतिभाशाली सैनिक है, फिर भी वे उसके जाल में फँसते गये।

जिन सैनिक अधिकारियों से सतीश जेकब ने बातचीत की, उन्हें सबसे ज्यादा आश्चर्य भिंडराँवाले के अनुयायियों के साहस और प्रतिबद्धता को लेकर था। एक अधिकारी ने कहा, 'अरे, क्या जबर्दस्त टक्कर दी उन्होंने! अगर मेरे पास सेना की ऐसी सिर्फ तीन डिवीजनें हों, तो मैं एक दिन में जिया (पाकिस्तान के राष्ट्रपति) की ऐसी-तैसी कर सकता हूँ।' एक और अफसर ने सतीश जेकब से कहा, 'मैंने

बहुत सारी कार्रवाइयाँ देखी हैं, लेकिन मैं आपको बताऊँ कि इसके पहले ऐसी कोई नही देखी। वे आतंकवादी जान पर खेलने वाले थे। उन्होंने हमारी बड़ी मार झेली। उन्हे पता होना चाहिए था कि वे किसी भी तरह सेना से नही जीत सकते। हमारा एक हथियार अगर बेकार हो जाता था, तो हम दूसरा ले आते थे। वह भी बेकार हो जाता तो हम एक और ले आते।' एक तीसरे अधिकारी ने बड़े संक्षेप मे कहा, 'साले हमे किसी भी तरह से अंदर ही नही घुसने दे रहे थे।'

जिन भारतीयो या विदेशी सैनिक विशेषज्ञो मे हमने बात की, उनका मानना था कि सैनिक योजना और खुफिया सेवा में खामियाँ थी। उदाहरण के लिए भूतपूर्व लेफ्टिनेंट-जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा ने कहा कि योजना 'जल्दबाजी और हड़बड़ाहट से भरी हुई थी।' उन्होंने मुझसे कहा कि बिना किसी पर्याप्त सर्वेक्षण और योजना के सेना को फौरन कार्रवाई करने का आदेश दे दिया गया। ऐसा लगता है कि सेना को सिर्फ दो हफ्ते की नोटिस दी गयी थी। अरोड़ा ने कमांडो को इस्तेमाल मे लाने की भी आलोचना की। उन्होंने कहा : 'ऐसी स्थितियों मे कमांडो के इस्तेमाल का भी खास फायदा नही था। अगर अचानक हमला कर देने की स्थिति न हो तो कमांडो भी बिलकुल साधारण पैदल सिपाहियों की तरह हो जाते हैं।' भूतपूर्व लेफ्टिनेंट-जनरल ने कहा कि अकाल तख्त पर कब्जा उसके पिछवाड़े की सँकरी गली के जरिये किया जा सकता था, जबकि लेफ्टिनेंट-जनरल सुंदरजी का ऐसा न कर पाने के बारे मे कहना यह था कि उन गलियो के ऊपर के मकानो में आतंकवादियों ने पहले से ही मोर्चे लगा रखे थे।

सिख रेजीमेंट के 20 साल से मानद कर्नल और सेवानिवृत्त लेफ्टिनेंट-जनरल हरबख्श सिंह ने सेना द्वारा हमले की पूरी अवधारणा की ही आलोचना की : 'ऐसी जगहों पर पैदल सैनिक नही भेजे जाते, जहाँ कोई आड़ न हो।' भूतपूर्व मेजर-जनरल भाटिया ने 'स्टेट्समैन' मे लिखते हुए एक और आलोचनात्मक टिप्पणी जोड़ दी : 'यह एक गलत नागरिक और सैनिक अनुमान था कि आतंकवादी आत्म-समर्पण कर देंगे।'

एक पश्चिमी दूतावास के सैनिक सलाहकार का मानना था कि पैदल सैनिको को, यह जानते हुए भी कि वे सामने के गलियारे को पार नही कर सकते, बार-बार अकाल तख्त के सामने से हमला करने की योजना नही बनानी चाहिए थी।' उन्होंने कहा, 'पीछे से मदद पहुँचाने की नीति तो प्रथम विश्वयुद्ध के जमाने मे ही असफल साबित हो गयी थी।' इस विदेशी सैनिक सलाहकार का यह भी मानना था कि तीन-तीन जनरलो को 'कमांडिंग पोस्ट' पर बैठाना भी एक भूल थी। उसके अनुसार इस कार्रवाई की योजना और इसका संचालन ब्रिगेड स्तर पर होना चाहिए था। जनरलो ने निचली श्रेणी के कमांडरो को जैसे फँसा डाला। यह सैनिक सलाहकार यह नही मानते कि 'सामने से पूरे हमले की कोई जरूरत थी।'

उनका मानना है कि भारतीय सेना को विद्युत संवेदी (एलेक्ट्रिक सेंसर्स), गैस धुएँ, और संपर्क-संचार को ठप्प कर देने वाले परिष्कृत आधुनिक उपकरणों की माँग करनी चाहिए थी और इसके बाद ही कमांडो कार्रवाई करनी चाहिए थी। उनका कहना है कि 'भारतीय सेना अपने आकार और गोला-बारूद के कारण कुछ ज्यादा ही अक्खड़ हो गयी है।' एंटेबी और ईरानी दूतावास पर कब्जे के युग में यह समझना बड़ा मुश्किल है कि भारतीय सेना ने स्वर्ण मन्दिर पर कब्जा करने के लिए इतना महँगा और इतना भोंडा रास्ता क्यों अपनाया? अगर वे कब्जा करने ही गये हुए थे तो निश्चित ही वे इसे बहुत बेहतर ढंग से कर सकते थे।

लेफ्टिनेंट-जनरल सुन्दरजी ने, जब वे सैनिक कार्रवाई के बाद पत्रकारों से मिले, अपने इस फैसले के बारे में एक लम्बा स्पष्टीकरण दिया। चूँकि इस निर्णय के कारण उनकी लगातार आलोचना की जाती रही है, इसलिए उनके तर्कों को पूरा-का-पूरा दे देना महत्वपूर्ण होगा। उन्होंने जैसे अपने से पूछा :

> क्या उन इमारतों पर चेतावनी दे देने के बाद भी और जरूरत पड़ने पर आतंकवादियों को भूखा रख कर बुरी तरह पस्त करके कब्जा कर लेना संभव था? क्या आतंकवादियों को बाहर आ जाने के लिए राजी करना संभव होता? पहली नजर में देखने पर ऐसा सोचना बड़ा आकर्षक लगता है। लेकिन जब मैंने इसका विश्लेषण किया तो मुझे पता चला कि ऐसा कर पाना कई वजहों से अव्यावहारिक होता। सबसे पहला कारण यह है कि स्वर्णमन्दिर परिसर क्षेत्र की घेरेबन्दी की बात कागज पर तो बहुत अच्छी लगती है, लेकिन व्यवहार में इस घेरेबन्दी को सफल बनाने के लिए चाहे जितनी टुकड़ियों को तैनात किया जाये वे असरदार नहीं हो पायेंगी, क्योंकि जो लोग इस क्षेत्र को जानते हैं, उन्हें पता है कि मन्दिर के चारों ओर इमारतों का करीबी घेरा है। नीचे सुरंगों जैसे रास्तों और इन इमारतों के बीच के रास्तों पर भी आतंकवादियों का कब्जा था, इसलिए किसी भी प्रभावकारी घेरेबन्दी, नाकेबन्दी और कब्जे को कामयाबी मिल पाने में संदेह ही था। दूसरा कारण यह है कि जहाँ तक रसद का सवाल है, आतंकवादियों के पास उसका बहुत बड़ा भंडार था और जहाँ तक गोलाबारूद और लड़ाई के लिए जरूरी हथियारों और चीजों का सवाल है, उनका भंडार उनके पास इससे भी ज्यादा था। पानी तो वहाँ सरोवर में था ही। इसलिए उन्हें भूखा-प्यासा रख कर बाहर निकाल लाने की ऐसी कोई भी कार्रवाई असंभव ही होती। एक-दो महीने की लंबी नाकेबन्दी के बाद सिर्फ सैद्धांतिक रूप से ऐसा संभव जरूर दिखायी देता है।
>
> फिर हमें इसकी सूचना भी थी कि वे निर्दोष और सीधे-सादे लोगों

का भी इस्तेमाल करने की योजना बनाये हुए हैं। ये लोग गाँव-देहात में रहने वाले, धार्मिक आस्थाओं वाले लोग थे। योजना यह थी कि इन लोगों को भड़का कर हजारों की तादाद में स्वर्णमन्दिर आने के लिए उकसाया जाये, जिससे वे स्वर्णमन्दिर के भीतर और बाहर—हर तरफ भर जाते और इस तरह आतंकवादियों को बाहर निकालने के लिए हमारी किसी भी कार्रवाई को बड़े प्रभावशाली ढंग से रोक देते। इस योजना की पुष्ट सूचना हमारे पास थी। हमने पंजाब के गाँवों को भेजे जाने वाले सन्देशों को बीच में ही कई बार खुफिया तौर पर सुन लिया था। इसलिए किसी भी नाकेबन्दी या घेरेबन्दी, जो दूसरे किसी मौके पर व्यावहारिक लग सकती है, (पर यहाँ नहीं थी) का अंत एक ऐसे जनान्दोलन के साथ होता जिसने किसी भी कार्रवाई को पूरी तरह से ठप्प कर डाला होता, भले ही निर्दोष लोगों को होने वाली क्षति को टालने के लिए किसी भी सेना की कितनी भी ताकत वहाँ इकट्ठा कर दी जाती। अगर हम इस आन्दोलन को होने से रोकना चाहते तो हमको कर्फ्यू की घोषणा करके सख्ती के साथ उसे लागू करना पड़ता। लेकिन मुझे यकीन है कि आप सब लोग इस तथ्य को स्वीकार करेंगे कि इतने सख्त कर्फ्यू की योजना, जो इस समस्या से निपटने के लिए अपनायी जाती, ज्यादा-से-ज्यादा तीन या चार दिन तक ही प्रभावी और व्यावहारिक रह सकती थी। उस अर्से के बाद उसे और लागू रख पाना नामुमकिन हो जाता और इसी-लिए, भारी दिल से मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि जब यह मिशन पूरा करना ही है, तो स्वर्णमन्दिर में प्रवेश करने के अलावा अब दूसरा कोई भी विकल्प नहीं बचा है।

जिन दो भूतपूर्व सिख जनरलों से मैंने बात की, उन्होंने सुन्दरजी के इस स्पष्टीकरण को सही नहीं माना। लेफ्टिनेंट-जनरल अरोडा का खयाल था कि समूचे पंजाब में भारी संख्या में सेना की तैनाती अमृतसर की ओर कूच करने वाली भीड़ को रोकने के लिए काफी थी। लेफ्टिनेंट-जनरल हरबख्श सिंह का मानना था कि पवित्र सरोवर से पानी की सप्लाई को काट कर और रसोई कक्ष और भोजन कक्ष को स्वर्णमन्दिर में जमा की गयी रसद सामग्री के विशाल भंडार से अलग करके भिंडरांवाले को 'बड़ी जल्दी भूख से तड़पा कर बाहर निकाला जा सकता था।

'आतंकवादियों को खदेड़ बाहर' करने के लिए की गयी कार्रवाई के दौरान सेना ने जो ढंग अपनाया, उसके बारे में एक और सवाल यह पूछा जा सकता है कि क्या दोनों परिसरों में पकड़े गये निर्दोष लोगों के प्रति सेना का रवैया अनुशासित और मानवीय रहा? दोनों ही परिसरों के प्रत्यक्षदर्शियों को यह कहते हुए कई

जगह उद्धृत किया गया है कि जिन लोगों ने आत्मसमर्पण किया, उनके हाथ पीछे की ओर रस्सियों से बांध दिये गये और कुछ को गोली भी मारी गयी। पुलिस के एक डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट और लाशों का पोस्टमार्टम करने वाले एक डाक्टर ने एसोशिएटेड प्रेस के संवाददाता ब्रह्म चेलानी को, जो कि पूरी कार्रवाई के दौरान अमृतसर में रहने में सफल रहे, बतलाया कि बहुत सारे ऐसे सिखों के हाथ, जिन्हें गोली मारी गयी, पीठ की ओर बंधे हुए थे। हमारे पास ऐसे फोटो भी हैं जिनसे साफ पता चलता है कि बहुत-से बंदियों के हाथ पीछे की ओर बंधे हुए हैं और हमारे पास पोस्टमार्टम की एक ऐसी रिपोर्ट भी है जिससे पता चलता है कि कम-से-कम एक बंदी को तो जरूर इसी हालत में गोली मारी गयी। फिर भी भारत सरकार ने ऐसे आरोपों का लगातार खंडन किया है। सरकार तो इस हद तक पहुंच गयी कि उसने ऐसी रपट भेजने वाले एसोशिएटेड प्रेस के संवाददाता ब्रह्म चेलानी पर ही जुर्म के अभियोग कायम कर दिये। हमें इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं लगता कि सेना ने सिख युवकों के हाथ पीछे बांध दिये हों। जिस समय उन्होंने आत्म-समर्पण किया, उस समय सेना के पास यह जानने का कोई विश्वसनीय जरिया नहीं था कि वे लोग भिंडरांवाले के समर्थक आतंकवादी हैं या नहीं। दोनों परि-सरों के तनावपूर्ण और वीभत्स माहौल में इस बात की बहुत अधिक गुंजाइश दिखायी देती है कि कुछ 'बंदियों' को गोली मार दी गयी हो। उस वरिष्ठ सैनिक अधिकारी ने, जिसने सतीश जेकब से जनसंपर्क अधिकारी नन्दा को धमकी दिये जाने की घटना की पुष्टि की थी, कहा : 'भिंडरांवाले के अनुयायियों ने सेना को जो नुकसान पहुंचाया था, जितने सैनिकों को हताहत किया था, उसकी वजह से सैनिक बहुत खराब मूड में थे। और ऐसे मूड में सैनिकों पर काबू रख पाना बहुत मुश्किल था।'

'टाइम्स आफ इंडिया' के संवाददाता सुभाष किरपेकर ने, जो कि ब्रह्म चेलानी की तरह ही पूरी सैनिक कार्रवाई के दौरान अमृतसर में रह पाये, 6 जून को जब कर्फ्यू हटा तो सेना के उस 'खराब मूड' को अपनी आंखों से देखा : 'कुछ सैनिकों ने उन ग्यारह संदिग्ध आतंकवादियों को लातों से मारा, जो अपने नंगे घुटनों के बल गर्म-तपती हुई सड़क पर रेंग रहे थे। इस कार्रवाई का संचालन करने वाले अधिकारियों में एक सिख अधिकारी भी था। उसका चेहरा तब गुस्से के मारे विकृत हो गया जब वह अपनी कौम के लोगों पर टूट पड़ा, जो उसकी निगाह में गद्दार थे।'[12]

सैनिकों का पारा सिर्फ अपने साथी सैनिकों की होने वाली क्षति से ही नहीं चढ़ा था। स्वर्णमन्दिर की रक्षा करने वालों ने भी कम जुल्म नहीं ढाये थे। उन्होंने उन नागरिकों पर भी हथगोले फेंके जिन्होंने सराय परिसर में आत्मसमर्पण किया था। उन्होंने दो जूनियर सैनिक अफसरों को बड़ी क्रूर यंत्रणाएं दीं। एक अफसर

की तो खाल उतार दी गयी और उसे बम से बाँध कर उड़ा दिया गया। घायल नागरिकों की चिकित्सा करने के लिए गये सेना के एक डाक्टर को उन्होंने जिबह कर डाला। युद्ध हमेशा भयानक होता है, और यह तो भिंडरांवाले के अनुयायियों और भारतीय सेना के बीच छिड़ा एक आमरण युद्ध था।

14

परिणाम

ऑपरेशन ब्लू स्टार से सिखों का घोर अपमान हुआ। इसका गुस्सा सिर्फ रूढ़िवादी और अकाली सिखों तक ही सीमित नहीं रहा। लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा, लेफ्टिनेंट-जनरल हरबख्श सिंह, एयर-मार्शल अर्जुन सिंह जैसे भूतपूर्व सिख सैनिक अधिकारी स्तब्ध रह गये। इतिहाकार और पत्रकार खुशवन्त सिंह ने, जो भिंडरांवाले के निर्भीक और खुले आलोचक थे और अपने को कतई रूढ़िवादी नहीं मानते, श्रीमती गांधी द्वारा दिया गया अलंकरण (पद्मभूषण) लौटा दिया। जिन दूसरे सिखों ने अपने सम्मान लौटाये, उनमें भगत पूरन सिंह भी थे। गरीबों और खासकर कुष्ठ रोगियों के बीच उनकी सेवाओं के लिए उन्हें 'दाढ़ी वाले मदर टेरेसा' कहा जाता था। पटियाला के महाराजा अमरिन्दर सिंह, जो अकाली दल के साथ बातचीत में श्रीमती गांधी की ओर से मध्यस्थता कर रहे थे और जिनका पंजाब में अब भी खासा असर है, ने भी श्रीमती गांधी की पार्टी और संसद सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। ऐसा ही एक अन्य सिख संसद-सदस्य ने भी किया। फिर भी इस विपत्ति की काफी जिम्मेदारी खुद अपनी बिरादरी पर भी महसूस करने वाले जो चंद साहसी सिख थे, उनमें से एक थी (इन्दिरा कांग्रेस) सांसद श्रीमती अमरजीत कौर। उन्होंने लिखा :

> वास्तव में सिख समुदाय पर यह आघात बहुत गहरा है। हमने सोचा था कि हम देश की शान हैं, सभी के रक्षक हैं। लेकिन अब यह लगने लगा है कि स्थितियों का सामना करने की कूवत ही हममें नहीं है। हम सिख लोगों को खुद ही भिंडरांवाले को स्वर्णमन्दिर से उठाकर बाहर फेंक देना चाहिए था। अब हमें अपनी ही नाकामयाबी को स्वीकार कर पाने में अड़चन महसूस हो रही है। हमारी तथाकथित वीरता और गतिशीलता गायब हो चुकी है।

इस समय सबसे निर्णायक सिख थे राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह। उन्होंने श्रीमती गांधी को यह संकेत दे दिया था कि स्वर्णमन्दिर पर सैनिक हमले से वे भीतर तक आहत हुए हैं और उनके कर्मचारियों ने देश की जनता को यह आभास

दिया कि देश के पहले सिख राष्ट्रपति इस्तीफा देने की सोच रहे हैं। ऐसा होने पर देश मे एक अभूतपूर्व सवैधानिक संकट पैदा हो जाता, जिसे आधार बना कर बुरी तरह विभाजित और दुर्बल विपक्ष भी श्रीमती गाँधी को इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर सकता था। जैल सिंह ने स्वर्णमन्दिर को देखने की जिद की। श्रीमती गाँधी ने हिचकिचाहट के साथ इसे स्वीकार कर लिया, हालांकि जनरलो ने उन्हें बतला दिया कि न तो अभी तक परिक्रमा की सफाई हो पायी है और न ही उन्हें इसका पूरा भरोसा हो सका है कि उन्होंने सारे शवो को खोज निकाला है। उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि वे राष्ट्रपति की सुरक्षा की गारंटी नही दे सकते। सरकार नियंत्रित दूरदर्शन की टीम भी राष्ट्रपति अपने साथ ले गये। इस तरह स्वर्णमन्दिर पर सैनिक हमले के तीन दिन बाद भारतीयों ने अपने टेलीविजन के परदे पर देखा कि गले तक बटनबंद लबी सफेद शेरवानी पहने राष्ट्रपति जैल सिंह स्वर्ण-मन्दिर के पवित्र सरोवर के चारो ओर संगमरमर के फर्श पर लगे खून के दागों को रगड़-रगड़ कर साफ करते सिपाहियो के बीच से घबराये हुए-से रास्ता बनाते चल रहे हैं। जिन इमारतों को अभी भी सेना पूरी तरह 'साफ' नही कर पायी थी, वहाँ छिपे आतंकवादी अभी भी गोलियाँ चला रहे थे। इसे भी दर्शकों ने सुना। राष्ट्रपति जैल सिंह के साथ चल रहे लेफ्टिनेंट-कर्नल ए० के० चौधरी की बाँह में गोली लगी। जो दर्शक राजनैतिक दृष्टि से जागरूक थे, उन्होंने देखा कि जहाँ-जहाँ भी राष्ट्रपति गये उनके साथ श्रीमती गाँधी के विश्वस्त 'पहरेदार' लगे ही रहे। उनमे से एक थे श्रीमती गाँधी के निजी सचिव आर० के० धवन। धवन श्रीमती गाँधी के इतने निकट थे कि उनके हर फोटो मे कही-न-कही वे जरूर दिखायी पड़ते थे। जब श्रीमती गाँधी की मृत्यु हुई तब भी वे उनकी बगल मे थे। दूसरे थे राजीव गाँधी के सबसे नजदीकी सलाहकार अरुण सिंह। ये वे व्यक्ति थे, जो श्रीमती गाँधी और उनके बेटे राजीव की तरफ से 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' की निगरानी कर रहे थे। धवन और अरुण सिंह, इन दोनो को यह देखने के लिए राष्ट्रपति के साथ भेजा गया था कि वे कोई भी अप्रिय बात न तो कहे, न ऐसा कुछ कर पायें। बाद मे जैल सिंह ने स्वीकार किया कि जब उन्होंने स्वर्णमन्दिर को देखा तो वे बडी मुश्किल से अपने आँसू रोक पाये। जब उन्होंने स्वर्णमन्दिर परिसर से बरामद किये गये हथियारो और गोलाबारूद का ढेर देखा तो पजाब के राज्यपाल पर उन्होंने एक बडा चुभता हुआ कटाक्ष किया: 'लगता है, आपने अपनी आँखें और कान किसी को उधार दे दिये थे।'

जब ज्ञानी जैल सिंह दिल्ली लौट कर आये तो उन्होंने भारत के एक महत्व-पूर्ण वार्षिक समारोह—फिल्म समारोह—मे राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान करने का अपना निर्धारित कार्यक्रम रद्द कर दिया, हालाँकि उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र न देने का फैसला किया। इसकी जगह उन्होंने आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले

राष्ट्र के नाम अपने संदेश को खुद ही लिखने की जिद की। उन्होंने श्रीमती गांधी को बतला दिया कि इस प्रसारण में वे काँग्रेस सरकार और अपने पुराने प्रतिद्वन्द्वी दरबारा सिंह की आलोचना करेंगे। श्रीमती गांधी को लगा कि राष्ट्रपति को कुर्सी पर बिठाये रखने की यह कीमत कुछ ज्यादा नहीं है।

ऑपरेशन ब्लू स्टार की सबसे बड़ी गंभीर प्रतिक्रिया सेना में हुई, जहाँ कई जगहों पर सिख सैनिकों ने बगावत की। सिखों के प्रति भेदभाव और पक्षपात की उनकी तमाम शिकायतों के बावजूद अभी भी भारतीय सेना में सिखों की संख्या 10 प्रतिशत है। दूसरी तरफ, सिख ही अकेले ऐसे भारतीय हैं जिनके पूरे-के-पूरे रेजिमेंटों में सिर्फ अपने ही संप्रदाय के लोग हैं। भले ही अधिकारी न हों, लेकिन सिख रेजीमेंट के सभी सैनिक जाट सिख ही होते हैं। एस० एल० आई० (सिख लाइट इनफैंट्री) में पूरी तरह से मजहबी या निचली जातियों के सिख हैं।

सात जून को, यानी स्वर्णमन्दिर परिसर में सेना के प्रवेश करने के दो दिन बाद, सिख रेजिमेंट की 9वीं बटालियन में विद्रोह हो गया। पाकिस्तान की सीमा के करीब गंगानगर कस्बे में छह सौ सिख सैनिक छावनी के शस्त्रागार में घुस गये। अंधाधुंध गोलियाँ चलाते हुए और 'संत जनरैल सिंह भिंडरांवाले अमर रहें' के नारे लगाते हुए वे लोग गंगानगर की सड़कों पर वाहनों में निकल पड़े। एक पुलिस वाला मारा गया और एक घायल हुआ। इनमें से एक जत्था दिल्ली की ओर बढ़ा और दूसरा पाकिस्तानी सीमा की ओर। इन सिख विद्रोहियों का पीछा करने के लिए राजपूताना रायफल्स को भेजा गया और उसने ज्यादातर बागी सिखों को पकड़ लिया। कँटीले तारों से घिरी खुली लारियों में उन्हें छावनी वापस लाया गया। हालाँकि स्थानीय निवासियों का कहना है कि कुछ विद्रोही सरहद पार करके पाकिस्तान भाग जाने में सफल हो गये।

सबसे बड़ा विद्रोह बिहार के रामगढ़ में स्थित रेजिमेंटल सेंटर में हुआ। यह सेंटर लगभग एक ब्रिटिश सैनिक रेजिमेंट केन्द्र के बराबर होता है, जहाँ सिख रेजिमेंट के बटालियनों के रंगरूटों की भरती की जाती है और प्रशिक्षण दिया जाता है। एक मेजर-जनरल की अध्यक्षता में गठित जाँच आयोग की रपट के अनुसार, इस बगावत का नेतृत्व सिपाही गुरनाम सिंह ने किया था। उसे 'बैरक का वकील' कहा जाता था और उसकी धार्मिक आस्थाओं के कारण उसका उप-नाम 'ज्ञानी' पड़ गया था। उस सप्ताह की शुरुआत में पंजाब में होने वाली घट-नाओं के प्रति गुरनाम सिंह ने अपनी चिन्ता सिख रेजिमेंटल सेन्टर के डिप्टी-कमांडेंट से व्यक्त की थी। हालांकि सभी अधिकारी यह जानते थे कि गुरनाम सिंह का प्रभाव आम सैनिकों पर अच्छा-खासा है, तब भी उन्होंने न तो उसके दिमाग को ठंडा करने की कोशिश की और न ही उन्होंने दूसरे सैनिकों को पंजाब की सही स्थितियों के बारे में कुछ समझाया। जाँच अदालत की रपट के अनुसार, न तो कोई दरबार

(सेना के अधिकारियों और अन्य सैनिकों के बीच होने वाली बैठक जिसमें रेजिमेंट के मनोबल और उसके कल्याण की बातों पर विचार किया जाता है) आयोजित किया गया और न ही सेना के सभी वर्गों को पंजाब की ताजा परिस्थितियों के बारे में पूरी जानकारी देने की कोशिश की गयी।

रही-सही कसर गंगानगर के नजदीक 9वीं सिख बटालियन के विद्रोह के बारे में बी० बी० सी० पर मेरी रपट के प्रसारण ने पूरी की। जिस रात यह रपट प्रसारित हुई उसी रात गुरनाम सिंह और कुछ वरिष्ठ नॉन-कमीशंड अफसरों ने आखिरकार विद्रोह करने और अमृतसर की ओर कूच करने का फैसला किया। अगले दिन रविवार था। हमेशा की तरह सैनिक गुरद्वारे में इकट्ठे हुए। सिख रेजिमेंटल सेंटर के सूबेदार-मेजर को महसूस हुआ कि सैनिक बहुत ज्यादा अशांत हैं। उसने इसकी सूचना अपने जूनियर कमीशंड अफसरों को दी, लेकिन कमांडेंट को सूचित नहीं किया।

सुबह लगभग दस बजे सिपाहियों और नॉन-कमीशंड अफसरों ने शस्त्रागार और गोलाबारूद के भंडार पर हमला कर दिया। ड्यूटी पर तैनात किसी गार्ड ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। जूनियर कमीशंड अफसर खामोश दर्शक बने हुए सारा नजारा देखते रहे, जबकि विद्रोहियों ने रेजिमेंट के ट्रकों पर हथियार और गोला-बारूद लादने शुरू कर दिये थे।

बगावत फूट पड़ने के बाद सूबेदार मेजर ने कमांडेंट ब्रिगेडियर एस० सी० पुरी से संपर्क किया। कमांडेंट दूसरे दो वरिष्ठ अधिकारियों के साथ अपनी कार में बैठ कर शस्त्रागार की ओर चल पड़े। जैसे ही कार वहाँ पहुँची, विद्रोहियों ने गोली चलायी। अधिकारियों ने कार को शस्त्रागार के दरवाजे की ओर मोड़ा, लेकिन वहाँ से और भी गोलियाँ चलीं जिससे ब्रिगेडियर पुरी और उनके सहयोगी गम्भीर रूप से घायल हो गये। पुरी तो कार के बाहर नहीं निकल सके, लेकिन दोनों अफसर किसी तरह घिसट कर बच निकलने में कामयाब हो गये। फिर भी जब उन्होंने देखा कि परिस्थिति उनके नियंत्रण के बाहर हो चुकी है तो वे वापस कार में आये और सैनिक अस्पताल पहुँचे, जहाँ सवा ग्यारह बजे ब्रिगेडियर पुरी की मृत्यु हो गयी।

जिन विद्रोहियों ने अपने कमांडिंग आफिसर पर गोलियाँ चलायीं उनमें सिपाही गुरनामसिंह भी था। शस्त्रागार और बारूदखाने को खाली कर डालने और कैंटीन लूटने के बाद छावनी के लगभग सभी आम सिपाहियों का नेतृत्व करते हुए फौजी वाहनों के काफिले के साथ गुरनामसिंह बाहर निकल पड़ा। जब वे लोग रामगढ़ पहुँचे तो वहाँ उन्होंने नागरिक वाहनों का अपहरण किया और अमृतसर की दिशा में चल पड़े। अमृतसर वहाँ से 480 किलोमीटर दूर था। सेना के हेलिकाप्टर इस काफिले को खोज पाने में सफल नहीं हो पाये, लेकिन उनकी गतिविधियों पर

पुलिस ट्रांसमीटरों से निगरानी रखी जा रही थी।

रामगढ़ सैनिक छावनी में दहशत की हालत थी। जाँच अदालत की रपट में कहा गया है : 'सिख रेजिमेंटल सेंटर में 10 वजे सुवह से लेकर 4.30 वजे शाम तक कमांड और नियंत्रण पूरी तरह समाप्त हो गया था। नियंत्रण का थोड़ा-वहुत आभास लगभग 6.30 वजे शाम तक दिखायी दिया।' सिख रेजिमेंटल सेंटर की पड़ोसी थी पंजाव रेजिमेंट। उन्हें सैनिक वगावत की सूचना 10.45 वजे ही मिल गयी थी। लेकिन जाँच अदालत की रपट के अनुसार, उन्होंने 'स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए आवश्यक कदम 5.30 वजे तक नहीं उठाये।'

सैनिक विद्रोह की खवर सेना के मुख्यालय तक पहुँची तो रामगढ़ से दिल्ली के तमाम रास्ते पर टुकडियों को वाधाएँ खड़ी करने के आदेश दिये गये। विद्रोही नेताओं ने अपने काफिले को वनारस के पहले दो हिस्सों में वाँट दिया, क्योंकि उन्हें सड़क अवरोधों का आभास मिल गया था। आखिरकार सिख रेजिमेंटल सेंटर से 190 मील दूर शक्तेशगढ़ रेलवे स्टेशन के पास विद्रोहियों के आधे हिस्से को तोपों से लैस सेना ने रोक लिया। कुछ ट्रक भाग निकले, पर 21वीं एम० आई० आर० (मेकेनाइज्ड इनफैंट्री रेजिमेंट) द्वारा पकड़ लिये गये।

विद्रोही काफिले का दूसरा हिस्सा भी तोपखाने और 20वीं पैदल व्रिगेड द्वारा रोका गया। सड़क-वाधा पर तैनात सैनिकों और विद्रोहियों के वीच हुई झड़प में कुल मिलाकर 35 लोग मारे गये। जिन सैनिकों ने वगावत में हिस्सा लिया, उनकी कुल संख्या 1461 थी। इनमें से 1050 विलकुल नये रंगरूट थे। जाँच अदालत को पता चला कि इनमें से वहुत-से रंगरूटों को वन्दूक की नाल दिखाकर वगावत करने पर मजवूर किया गया था।

जाँच अदालत ने सरकार के इस तर्क को पूरी तरह से रद्द कर दिया कि सैनिक विद्रोह के पीछे कुछ 'विदेशी एजेंसियों का हाथ है।' यह एक ऐसा मुहावरा है जिसका अर्थ ज्यादातर लोग पाकिस्तान से ही लगाते हैं। रपट में कहा गया : 'इस वात का कोई प्रमाण नहीं है कि रामगढ़ की सिख सैनिक टुकड़ियों को वगावत के लिए उकसाने में किन्हीं वाहरी एजेंसियों का हाथ रहा है।' रपट ने स्पष्ट रूप से सारी जिम्मेदारी अधिकारियों और जूनियर कमीशंड अफसरों पर डाली। रपट में इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि सैनिकों को उनके अपने गाँवों में होने वाली घटनाओं के प्रभाव से अलग-थलग विलकुल नहीं किया जा सकता। इसमें कहा गया है : 'कई राज्यों में, और खासतौर पर पंजाव में उभरने वाले धार्मिक कट्टरतावाद और भाषाई अन्धवाद विना शक उस इलाके से संवंधित सैनिक टुकड़ियों पर भी अपना असर डालेंगे—तव भी, जव वे भावनात्मक रूप से एक-दूसरे के साथ संगठित हों—खासतौर पर सेना जैसे संगठन में।'

इस टिप्पणी के वाद भारतीय सेना के सवसे लड़ाकू और वहादुर अंग, सिख

सैनिकों के भविष्य के बारे में सवाल उठना लाजिमी है। इस टिप्पणी से एक और भी बुनियादी मुद्दा सामने आता है—यानी यह कि भविष्य में धार्मिक, साम्प्रदायिक और जातीय नफरत की आग को बुझाने के लिए सेना कितनी बार, बिना इस आग का शिकार हुए, काम में लायी जा सकती है।

ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद सेना के सिखों में असंतोष बना रहा। पंजाब की सरहद से लगे जम्मू क्षेत्र में सिख रेजिमेंट की एक बटालियन में बगावत हुई और पूना में भी पंजाब बटालियन के सिख सैनिकों ने विद्रोह किया। पंजाबियों की एक टुकड़ी ने बम्बई के बाहर घमासान लड़ाई की, जिसमें उन्हें गिरफ्तार करने के लिए भेजा गया एक सैनिक मारा गया और दस जख्मी हुए। इसके अलावा तीन अन्य छोटे सैनिक विद्रोह भी हुए।

आजादी के बाद भारतीय सेना के सामने अनुशासन का यह सबसे गम्भीर संकट था। इसके सैनिक नागरिक आबादी से बिलकुल अलग सैनिक छावनियों में रहते हैं। इन छावनियों में सैनिकों को सारी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, और जो अनुशासहीनता हिन्दुस्तान में आम है, उसका असर सेना पर नहीं पड़ने पाता। लेकिन स्वर्णमन्दिर में सेना भेजने के फैसले ने भारतीय सेना के अनुशासन और वफादारी में भी दरारें पैदा कर दी। यह ध्यान में रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि भारतीय सेना में जितने सिख हैं उनके केवल 3 प्रतिशत ने ही विद्रोह किया था, फिर भी यह संख्या सेना के इतने महत्वपूर्ण समुदाय के सन्दर्भ में बहुत गम्भीर है। इन विद्रोहों ने सेना के दूसरे समुदायों के साथ सिखों के सम्बन्धों को तनावपूर्ण बना डाला और सैनिक सेवा के लिए सिखों की निर्भर योग्यता पर भी शक पैदा किया। यह भारतीय सेना के गौरव पर भी एक आघात था।

भूतपूर्व अधिकारियों का मानना है कि अगर सैनिकों को पंजाब में होने वाली घटनाओं की पूरी जानकारी दी जाती तो इन विद्रोहों को टाला जा सकता था। लेफ्टिनेंट-जनरल हरबख्श सिंह ने कहा : 'जब उन्होंने सुना कि पंजाब में सेना तैनात कर दी गयी है तो उन्होंने सोचा कि उनके गांवों पर हमला शुरू हो गया है। रेजिमेंट्स को चाहिए था कि वे अधिकारियों के अधीन सैनिकों के छोटे-छोटे दल पंजाब भेजते, जिससे वे वहाँ जाकर स्वयं सारी घटनाओं को देखते और लौट कर अपने साथियों को वास्तविकता से परिचित कराते।'

भूतपूर्व लेफ्टिनेंट-जनरल एस०के० सिन्हा ने, जिनकी किस्मत अगर साथ देती (कुछ लोग किस्मत की जगह 'राजनीति' कहते है) तो वे ऑपरेशन ब्लू स्टार के समय तक भारत के सेनाध्यक्ष होते, अधिकारियों की खुली आलोचना की। एक अखबार को दिये गये इन्टरव्यू में उन्होंने कहा : 'जहाँ तक सैनिक बगावत का सवाल है, मैं इसका सारा दोष सीधे-सीधे अफसरों पर डालता हूँ, क्योंकि लगता है कि जैसे उन्हें कुछ पता ही न था कि उनके सैनिक सोच क्या रहे हैं। इस मामले

में मेरा दिमाग बिलकुल साफ है। अधिकारियों को अपने जवानों के बारे में उनकी माताओं से भी ज्यादा गहराई से जानना चाहिए। इस मामले में निश्चित ही वे नाकामयाब रहे।'

सेना के मुख्यालय को भी इसका कुछ जिम्मा दिया जाना चाहिए। सिख सैनिकों के मानसिक संकट का अनुमान पहले से लगाना चाहिए था और सामान्य निर्देशों के तहत समस्त सैनिक अधिकारियों को यह चेतावनी देनी चाहिए थी कि वे सतर्क और संवेदनशील रहें। यह आश्चर्यजनक है कि सेना-पुलिस, जिसके पास अपना निजी खुफिया तंत्र है, ने भी सेनाध्यक्ष को इस बारे में कोई खबर नहीं दी। इसकी भी सम्भावना है कि सैनिक अधिकारियों ने आभास होने पर भी सिखों की वफादारी पर शक करना उचित न समझा हो। वफादारी के मसले को नाजुक ढंग से सुलझाया जाना जरूरी है, वरना तमाम एहतियाती कदमों का नतीजा वही निकलेगा, जिसे रोकने के लिए वे उठाये जाते हैं -- यानी सैनिक विद्रोह।

इसके बाद सेना के सामने बागियों को अनुशासित करने की समस्या आयी। इस मामले पर दो तरह की सोच थी, जिसकी झलक रक्षा मंत्रालय और दक्षिणी कमान के कमांडिग अधिकारी के परस्पर-विरोधी वक्तव्यों से मिलती है। रक्षा मंत्रालय ने संकेत दिया कि अधिकारियों को विद्रोहियों के प्रति उदार रवैया अपनाना चाहिए। एक प्रवक्ता, जिसने सिखों को 'विद्रोही' बल्कि 'भगोड़े' कहा, का कहना था कि वे लोग 'गुमराह' हो गये थे। उसने आगे यह भी कहा: 'हमें लगता है कि कुछ लोग जवानों की भावनात्मक स्थिति का फायदा उठाना चाहते हैं।' इस प्रवक्ता ने ऐसे 'भड़काने वाले तत्वों' का भी जिक्र किया, जो पंजाब की घटनाओं के बारे में 'खौफनाक किस्से' गढ़कर सुनाते हैं, और कहा कि 'हम सिख जवानों की भावनाओं को समझते हैं।' सिखों के भाग जाने के बाद लकीर पीटने के-से अन्दाज में प्रवक्ता ने घोषणा की कि अधिकारियों को फोटोग्राफ देकर सिख जवानों को यह समझाने के लिए भेजा जा रहा है कि स्वयं स्वर्णमन्दिर को कोई क्षति नहीं पहुँची है और जिन सैनिकों ने इस कार्रवाई में हिस्सा लिया उन्होंने इस पवित्र स्थल के प्रति सर्वोच्च आदर और सम्मान बनाये रखा है। लेकिन दक्षिणी कमान के 80,000 सिख सैनिकों का नेतृत्व करने वाले लेफ्टिनेंट-जनरल टी० एस० ओबेराय ने बिना किसी लाग-लपेट के ठेठ ढंग से कहा, वे भगोड़े जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है, उनका कोर्ट मार्शल किया जायेगा और उन्हें सजा दी जायेगी।'

सैनिक विद्रोहों के एक महीने बाद थल सेनाध्यक्ष जनरल ए० एस० वैद्य ने राष्ट्र के नाम संदेश प्रसारित करने का अभूतपूर्व कदम उठाया। भारतीय सेना के इतिहास में अब तक ऐसा नहीं हुआ था। उन्होंने घोषणा की कि जिन लोगों को यह डर था कि भगोड़ों के प्रति सख्त कार्रवाई से सिख सैनिकों के मनोबल को

और ज्यादा धक्का लगेगा और जो इस बात से डरते थे कि उनके प्रति दया और उदारता बरतने से सेना के अनुशासन को नुकसान पहुँचेगा—इन दोनो परस्पर-विरोधी नजरियो का हल निकाल लिया गया है। 'विद्रोहियो' को भारतीय सैनिक कानूनो की सारी कठोरता को झेलना पड़ेगा। जनरल वैद्य ने कहा, 'मैं इस बात का आश्वासन देना चाहता हूँ कि विद्रोहो मे हिस्सा लेने वाले लोगों पर सेना के लिए बनाये गये कानून के तहत सख्त कार्रवाई की जायेगी, जिससे कि जो लोग हमारे साथ सेना मे हैं और जिन्हें अपने वतन की खातिर हथियार उठाने का सम्मान मिलता है, उनका गौरव बना रहे और वे सेना के अनुशासित सिपाही रहे आयें।' यह पहला अवसर था जब भारतीय सेना ने 'विद्रोह' की बात स्वीकार की। इसके पहले वे हमेशा 'विद्रोह' की जगह 'पलायन' शब्द का इस्तेमाल करते थे।

लेकिन सेवा-निवृत्त सिख सैनिक अधिकारियों का मानना था कि जनरल वैद्य गलत हैं। इन अधिकारियो मे से पाँच लोग, जिनमे लेफ्टिनेंट-जनरल अरोड़ा और लेफ्टिनेंट-जनरल हरबख्श सिंह शामिल थे, विद्रोहियो के प्रति विशेष व्यवहार करने के लिए अनुरोध करने राष्ट्रपति के पास गये। उन्होंने राष्ट्रपति जैलसिंह से स्पष्ट किया कि अमृतसर मे जो कुछ होने जा रहा था और वह सब क्यों हुआ, इसके बारे मे सैनिको को न बतला कर अधिकारियो ने गलती की। उन्होंने कहा कि यहाँ तक कि वरिष्ठ अधिकारियो को भी यह जानकारी नही दी गयी थी। इन भूतपूर्व सिख सैनिक अधिकारियो ने सेना मे धर्म के महत्व पर जोर देते हुए कहा कि सिख सैनिक अपनी वफादारी की शपथ गुरु ग्रंथ साहब के जरिये ही लेते है। लेफ्टिनेंट-जनरल अरोडा के अनुसार, राष्ट्रपति को उनके प्रति सहानुभूति तो थी, लेकिन उन्होंने कहा कि इस मामले मे हस्तक्षेप करने का उन्हे कोई प्रत्यक्ष अधिकार नही है। फिर भी उन्होंने अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने का वायदा किया। जब अखबारों में विद्रोहियो के साथ 'अमानवीय' व्यवहार की खबरें छपने लगी तो लेफ्टिनेंट जनरल हरबख्श सिंह ने एक वक्तव्य जारी किया। उन्होंने कहा : 'मुझे लगता है कि यह सब सेना के उच्चाधिकारियो द्वारा सिख सैनिको के मनोबल और अनुशासन को बनाये रखने की अपनी नाकामयाबी को ढँकने के लिए किया जा रहा है। सेना के अधिकारियों का एक बहुत महत्वपूर्ण काम था, सिखों की सबसे पवित्र धार्मिक गद्दी अकाल तख्त के बे-वजह (जैसी कि अफवाह थी) विध्वंस से पैदा होने वाली उग्र धार्मिक प्रतिक्रिया की पहले से ही रोकथाम करने का प्रयास करना।' निश्चित ही अफवाहें इन विद्रोहो का सबसे प्रमुख कारण रही हैं, लेकिन सेना के मुख्यालय इन अफवाहो का पूर्वानुमान लगा पाने मे पूरी तरह असफल रहे। लेफ्टिनेंट-जनरल हरबख्श सिंह ने सुझाव दिया कि सिखो के साथ भगोड़ों जैसा व्यवहार नही किया जाना चाहिए और उन्हे अपनी यूनिटो मे वापस आने की अनुमति दी जानी चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करने के लिए कार-

वाई दरअसल अधिकारियों के खिलाफ की जानी चाहिए। लेकिन उनकी सलाह नहीं मानी गयी। तथ्य यह है कि प्रतिरक्षा मुख्यालय ने सिख सैनिकों के मामले में अद्वितीय अनुभवी ले० जन० हरवख्श सिंह से कभी कोई सलाह नहीं माँगी।

भारतीय सेना के सामने सिर्फ मनोवल बनाये रखने और अनुशासन की ही समस्या नहीं थी। हालाँकि स्वर्णमन्दिर की लड़ाई खत्म हो चुकी थी, लेकिन लेफ्टि-नेंट-जनरल रंजीत सिंह दयाल अभी भी पंजाव के राज्यपाल के सुरक्षा सलाहकार थे और आतंकवादियों का 'सफाया' करने के लिए (जिनके वारे में संदेह था कि वे गाँवों में छिपे हुए हैं) पूरे राज्य में सेना तैनात कर दी गयी थी। लेकिन पंजाव के गाँवों में आतंकवादियों से निपटने के लिए यह 'सफाया' शब्द भी उतना ही अनुप-युक्त सावित हुआ जितना स्वर्णमन्दिर परिसर में छिपे हुए आतंकवादियों के सिल-सिले में 'खदेड़ वाहर करना' सावित हुआ था। सेना को जल्द ही पता चल गया कि आतंकवादी अपने 'सफाये' का इन्तजाम करते हुए एक जगह पर वैठे नहीं रहते। सेना की गुप्तचर सेवा को उम्मीद थी कि स्वर्णमन्दिर के दोनों परिसरों में पकड़े गये लोगों से पूछताछ के दौरान उन्हें आतंकवादियों की पहचान और उनके ठिकानों के वारे में पर्याप्त जानकारियाँ मिल जायेंगी। हालाँकि उनमें से अधिकांश लोग निर्दोष थे, लेकिन विना पूरी तरह पूछताछ किये सेना उन्हें छोड़ने नहीं जा रही थी। इसमें उम्र और स्त्री-पुरुष का भी कोई लिहाज नहीं किया गया, जैसा कि स्कूल अध्यापिका रणवीर कौर ने महसूस किया :

> हम लोगों को अमृतसर में सेना के एक कैंप में ले जाया गया। वच्चे हमसे अलग कर दिये गये। सेना ने हमसे पूछताछ की। वे जानना चाहते थे कि भिंडराँवाले के साथी कौन लोग हैं। उन्होंने हमें गोली मार देने की धमकी दी। मैंने भिंडराँवाले को सिर्फ एक वार देखा था, जव वह अपनी संगत से लौट रहा था। 6 जुलाई को हमें लुधियाना जेल ले जाया गया। हमें फिर अलग कर दिया गया। हमें कोई चिट्ठी नहीं मिलती थी। कुछ पुलिस वालों ने मुझे वताया कि हम लोगों को जमानत पर छोड़ा जा सकता है। लेकिन मुझे आगाह किया गया कि अगर मैंने ऐसा किया तो मुझे लगातार पेशी में हाजिर होने के लिए वुलाया जाता रहेगा। मेरी वच्ची मेरे पास थी, क्योंकि मेरे माता-पिता जव सेना के पास मुझे रिहा करने की प्रार्थना करने आये थे, जिससे मैं अपने वच्चे की देखभाल कर सकूँ तव अधिकारियों के इनकार करने पर उन्होंने वच्ची सेना के हाथों सौंप दी और कहा : 'वेहतर यही होगा कि इस वच्ची को आप उसकी माँ को ही दे दें।'

यहाँ तक कि स्वर्णमन्दिर परिसर को सेना द्वारा 'आजाद' कराये जाने के समय

रणवीर कौर के जिम्मे जो बच्चे थे, उनसे भी 'पूछताछ' की गयी। 12 साल के मेहरबान सिंह ने बताया, 'हमसे बार-बार पूछा गया कि क्या हम भिंडरांवाले के आदमी हैं ? उन्होंने लुधियाना जेल में हमें मारा-पीटा, हमारे गले को उँगलियों से दबाकर वे चाहते थे कि हम स्वीकार कर लें कि हम भिंडरांवाले के लोगों को देने के लिए बंदूकों की मैगजीन में गोलियाँ भर रहे थे।' ग्यारह साल के शमशेर सिंह का कहना था, 'सेना के कैंप में हमें बहुत खराब खाना दिया गया। जेल में खाना जरा बेहतर था। हमें बताया गया था कि हम भिंडरांवाले के आदमी हैं और वे हमसे भिंडरांवाले के दूसरे साथियों के बारे में जानकारी पाना चाहते थे। जेल में हमें बार-बार पीटा जाता था। उन्होंने हमसे पूछा कि भिंडरांवाले ने अपने हथियार कहाँ छिपाये हैं ?'

स्वर्णमन्दिर का जनसम्पर्क अधिकारी नन्दा, जिसके बारे में सेना ने स्वीकार किया कि वह 'आजाद' कराये जाने के बाद गोली से उड़ा दिये जाने से बाल-बाल बचा, दिल का दौरा पड़ने के कारण इस 'पूछताछ' से बरी रहा। लेकिन उसके घर की तलाशी जरूर ली गयी। हालांकि स्वर्णमन्दिर की हालत का कोई भी जानकार गुप्तचर अधिकारियों को बता सकता था कि नन्दा भिंडरांवाले का कतई दोस्त नहीं था। नन्दा ने अपने अनुभवों का वर्णन यों किया :

> हम लोग अगले दिन (7 जून को) सैनिक छावनी के एक कैंप में ले जाये गये। यह कैम्प असल में एक सैनिक स्कूल था। चारों ओर कँटीले तारों की बाड़ेबंदी थी। वहाँ हथियारबंद सैनिक कुत्तों के साथ निगरानी कर रहे थे। कैम्प में कई सर्चलाइटों की रोशनी थी। इस कैम्प में हमारी कोठरी की तुलना कलकत्ता के 'ब्लैक होल' से की जा सकती है। हम सारे-के-सारे 70 लोग इसी कोठरी में ठूँस दिये गये। घुटन की वजह से इस कैद में शुरू के ही घंटों में तीन बूढ़े लोगों की मृत्यु हो गयी। हम लोगों ने वहाँ चार दिन गुजारे। इन्हीं दिनों एक क्रोधित सिपाही ने मेरे टखनों को बूट से मार कर लगभग भुरता बना डाला। इसी बीच मुझे दिल का दौरा पड़ा। बहुत कोशिशों के बाद ही डाक्टरी सुविधा मिली। जिस डाक्टर ने मेरी जाँच की, उसे लगा कि मुझे जल्द किसी 'इंटेंसिव केयर यूनिट' में दाखिल किया जाना चाहिए। मैं वहाँ से तो ले जाया गया, लेकिन अस्पताल के एक सामान्य वार्ड में। खुशकिस्मती से वहाँ पर मुझे अमृतसर के कमांडिंग अफसर मेजर-जनरल जमवाल ने देख लिया, जो मुझे वहाँ से निकाल कर एक निरीक्षण बंगले में ले गये। इसी बंगले में मेरी एक छोटी सी मुलाकात जनरल बरार से हुई। देखिए, शिरोमणि गुरद्वारा प्रबंधक समिति में अपनी बीस साल की नौकरी के दौरान मैंने कुछ जमापूँजी इकट्ठी की थी। इसमें जेवर के रूप में 88

> ग्राम सोना, दो साधारण हीरे के नेकलेस, एक मिनोल्टा कैमरा, एक नेशनल पैनासोनिक टू-इन-वन और एक रिवाल्वर शामिल थे। इनमें से ज्यादातर सामान मेरी बेटी के दहेज के लिए रखा गया था। मेरी पत्नी ने अपना घर देख कर आने के बाद मुझे बतलाया कि ये सारी चीजें गायब हैं। दूसरे घरेलू सामान जैसे फर्नीचर, फ्रिज, टेलीविजन आदि पूरी तरह तोड़-फोड़ डाले गये थे। सीलिंग पंखों के ब्लेड मोड़-तोड़ दिये गये थे। मेरे दफ्तर और घर में लगभग 4,500 रुपयों की नगदी भी थी, वह भी गायब थी।
>
> बाद में मुझे दस दिन के लिए दिल्ली के एक नर्सिंग होम में भरती किया गया। मेरे टखने के जख्म से मवाद आने लगा था। मैं भिंडरांवाले से घृणा करता था, क्योंकि उसने मुझसे उठक-बैठक करवाकर और अपने साथियों को मेरी पतलून खोल देने का आदेश देकर मुझे अपमानित किया था। एक और मौके पर भिंडरांवाले ने मुझसे कहा था कि 30 दिन के भीतर वह शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति पर कब्जा कर लेगा और तब मैं उसका नौकर बन जाऊँगा। स्वर्णमन्दिर और इसके प्रबन्ध पर जरनैल सिंह भिंडरांवाले का पूरा नियंत्रण हो चुका था।

सैनिक कार्रवाई के बाद जब सतीश जेकब अमृतसर गये तो पुराने शहर के कई निवासियों से मिले। इन निवासियों की शिकायत थी कि आतंकवादियों की तलाश के सिलसिले में सेना ने उनके घरों की लूट-खसोट की। इनमें से एक था सुरिन्दर सिंह, जिसकी दूकान अकाल तखत के पास है। उसने सतीश जेकब को बतलाया :

> जब 17 जून को मैं लौटकर अपनी दूकान में आया तो मैंने पाया कि दूकान के ऊपर मेरे कमरे का दरवाजा जबर्दस्ती खोल डाला गया है। लोहे की आलमारी, जिसमें कपड़े, गहने और रुपये रहते थे, वह टूटी हुई खुली पड़ी थी। मेरे सारे गहने और रुपये गायब थे। फ्रिज में जो सब्जियाँ मैं रख कर गया था वे डाइनिंग रूम के फर्श पर यहाँ-वहाँ छितरी हुई थीं। एक छोटी-सी जगह जो मेरा स्टोर रूम था, उसे भी उलट-पलट डाला गया था।

सुरिन्दर सिंह का कहना था कि यह सारी कारस्तानी सैनिकों की ही है, क्योंकि वह पूरा इलाका उनके नियंत्रण में था। उसने अपना कमरा 6 जून तक नहीं छोड़ा था, जब तक कर्फ्यू उठा नहीं लिया गया।

मन्दिर के जिन कर्मचारियों के कमरे परिसर के भीतर थे, उन्होंने भी शिकायत की कि उनके घरों को लूटा गया। लेकिन एक वरिष्ठ अधिकारी ने सतीश

जेकब को बतलाया कि ऐसी कोई भी औपचारिक शिकायत अभी तक दर्ज नही करायी गयी है। उसने कहा : 'हो सकता है कि कुछ सैनिको ने ऐसी छोटी-मोटी वारदात की भी हो, लेकिन सेना ऐसे कामों के प्रति बड़ा सख्त रवैया अपनाती है। अगर ऐसी शिकायतें आधिकारिक तौर पर दर्ज होती और सैनिकों को दोषी पाया जाता, तो निश्चित ही उन्हें सजा दी जाती।'

मुख्य ग्रंथियो ने स्वर्णमन्दिर में जमे सैनिको के व्यवहार के बारे मे श्रीमती गांधी और जनरलों से शिकायत की। उन्होंने कहा है कि सैनिकों ने पवित्र सरोवर को अपने नहाने का घाट बना लिया और पवित्र स्थलो के भीतर सिगरेट-शराब पीकर उन्हें नापाक किया। सेना ने इन आरोपो का खंडन किया। लेकिन जब पत्रकार खुशवन्त सिंह, स्वर्णमन्दिर गये तो उन्होंने अकाल तख्त के बाहर एक नोटिस लगी हुई देखी, जिसमे लिखा था, 'यहाँ पर सिगरेट-शराब पीना मना है।' इससे यह सकेत मिल सकता है कि कोई-न-कोई वहाँ सिगरेट-शराब जरूर पीता रहा होगा—और उस समय मन्दिर सेना की ही देखरेख मे था। निश्चित ही सेना के पास पीने के लिए बहुत शराब थी। पंजाब सरकार के आबकारी और कर विभाग द्वारा जारी एक सूचना प्रपत्र के अनुसार 7,00,000 रम की क्वार्ट बोतलें, 30,000 व्हिस्की, 60,000 ब्राडी और 1,60,000 बीयर की क्वार्ट बोतलो की इजाजत दी गयी, जिन पर आबकारी कर हटा लिया गया। सूचना मे स्पष्ट कहा गया कि यह शराब 'ऑपरेशन ब्लू स्टार मे तैनात सशस्त्र सेना के कर्मचारियो के उपयोग के लिए है।'

शेष पंजाब मे आतकवादियों की तलाश के सिलसिले मे भी सेना की बर्बरता के आरोप थे। पत्रकार हरजी मलिक ने 'एकॉनामिक ऐंड पोलिटिकल वीकली' मे एक 23-वर्षीय सिख युवक के बारे मे लिखा, जिसे लोंगोवाल के जिले संगरूर में अपने गाँव के घर से पकड़ा गया। कुछ दिनों बाद इस युवक की लाश उसके परिवार वालो को लौटायी गयी। उसकी मृत्यु के बारे मे सरकारी बयान यह था कि वह 'मुठभेड़' मे मारा गया। एक स्थानीय वकील ने, जिसने इस युवक की लाश देखी, कहा कि युवक के नाखून उखाड़ डाले गये थे और उसके सीने मे जले हुए के निशान थे। इस वकील ने हरजी मलिक को एक अपाहिज सिख युवक के बारे मे भी बताया जिसे सेना ने गिरफ्तार किया और मारा-पीटा।

20 जुलाई को पटियाला के पंजाबी विश्वविद्यालय में हुई एक घटना के बारे में कई पत्रकारों ने लिखा। लगभग 60 छात्र विश्वविद्यालय के कुलपति से किसी मामूली प्रशासनिक गड़बड़ी की शिकायत करके वापस लौट रहे थे कि मेजर उप्पल के नेतृत्व मे एक सैनिक दस्ते ने उन्हे रोक लिया। छात्रो के साथ चल रहे विश्व-विद्यालय के दो विभागीय कर्मचारियों ने मेजर को बतलाया कि ये लड़के आतक-वादी नही हैं। उसने उन कर्मचारियो की बात अनसुनी कर दी और लड़कों को

जब तक इसके विपरीत प्रमाण न मिल जायें। इस अधिनियम के तहत ऐसे अपराधियों पर मुकदमे चलाने के लिए पंजाब में विशेष अदालतों की स्थापना हुई।

यह एक नाराज पंजाब था, जिस पर सेना शासन कर रही थी। बहुत-से सिखों को इस बात पर यकीन नहीं था कि भिंडरांवाले मर चुका है। अफवाहें फैलीं कि वह पाकिस्तानी टेलीविजन पर दिखायी देगा। सरकार के तमाम प्रचार के बावजूद, बहुत सारे लोगों की निगाह में भिंडरांवाले एक सन्त ही बना रहा, आतंकवादी नहीं, स्वर्णमन्दिर पर आक्रमण ने सिखों की गरिमा पर बहुत गहरा ज़ख्म किया था। पंजाब सरकार के वरिष्ठ अधिकारी जानते थे कि सिखों और शेष हिन्दुस्तान के बीच सद्भाव बनाने के लिए घावों को भरना जरूरी है। वे यह भी जानते थे कि पंजाब में, बल्कि पूरे हिन्दुस्तान में तब तक कोई स्थायी शान्ति स्थापित नहीं होगी, जब तक यह सद्भावना नहीं बनती।

प्रेस इस सद्भावना के लिए लगातार दुहाई दे रहा था। ऑपरेशन ब्लू स्टार के फौरन बाद 'इंडियन एक्सप्रेस' ने लिखा है कि 'इसके पहले कि कोई स्थायी क्षति पहुँचे, इस बहादुर कौम के सामूहिक मानस में लगे जख्म पर मरहम लगाना बहुत जरूरी है। पहले जो पंजाब-प्रश्न था और फिर आतंकवादी हिंसा में मिल गया, उसे और अधिक बढ़कर सिख-समस्या नहीं बनने देना चाहिए।' अखबार ने सिखों के इस 'घायल सामूहिक मानस' की क्षति को रोकने के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव भी दिये। पहला सुझाव था : पंजाब से संबंधित सभी खबरों को प्रकाशित करने की आजादी। उन दिनों पंजाब से प्रकाशित होने वाले अखबारों को सेंसर कर दिया जाता था और भारत के दूसरे भागों से आने वाले अखबार वहाँ प्रतिबन्धित थे। 'इंडियन एक्सप्रेस' ने ठीक ही लिखा कि अफवाह एक शत्रु है। यह एक ऐसा सबक था जिसे सेना ने सिख विद्रोहियों से सीखा था। दूसरा सुझाव था : स्वर्णमन्दिर परिसर से सेना की फौरन वापसी। तीसरा था : अकाल तखत और दूसरी क्षतिग्रस्त इमारतों की मरम्मत के लिए उन्हें मन्दिर के अधिकारियों को सौंप देना। चौथा सुझाव था : पंजाब के गाँवों में आतंकवादियों की धर-पकड़ के लिए सेना की सक्रियता को रोकना। पाँचवाँ था : अकाली दल के नेताओं की रिहाई; और छठा प्रस्ताव था : श्रीमती गाँधी द्वारा आकाशवाणी से प्रसारण की जरूरत। अखबार ने लिखा, 'उन्हें आकाशवाणी के माध्यम से अपने शब्दों और आगे उठाये जाने वाले कदमों की घोषणा करके एक जख्मी राष्ट्र पर सान्त्वना का मरहम लगाना चाहिए।'

श्रीमती गाँधी ने 'इंडियन एक्सप्रेस' की सलाह पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। अकाल तखत पर हमले के तीन दिन बाद उन्होंने ऑपरेशन ब्लू स्टार के बारे में अपने देशवासियों को पहली बार कुछ बतलाया और वह भी एक सरकारी प्रवक्ता के जरिये। प्रवक्ता के अनुसार, यह भाषण उन्होंने अर्धसैनिक दस्ते सी० आर० पी० के

अधिकारियों के समक्ष दिया था। सिखों की दृष्टि में इससे अनुपयुक्त कोई दूसरा श्रोतावर्ग हो नही सकता था। कहा जाता है कि इस भाषण मे श्रीमती गाँधी ने 'पंजाब को हाल की घटनाओं के कारण लोगो के दिलो मे लगे जख्म पर मरहम लगाने' की बात भी की थी। इसमे सिखों के जख्मों के बारे में कोई स्पष्ट संकेत नही था। उन्होंने सेना और सी० आर० पी० की खुली प्रशंसा भी कर डाली। इस तरह श्रीमती गाँधी ने सिखों के जख्मो पर मरहम नही, दरअसल नमक लगाया।

सिखो के जख्म भरने की प्रक्रिया के बारे में अगर श्रीमती गाँधी बात करना चाहती तो अकाली दल की त्रिमूर्ति ही सिख समुदाय की वास्तविक प्रतिनिधि थी। कुमाऊँ रेजिमेंट ने जब सराय परिसर को खाली कराया था तो लोंगोवाल और तोहड़ा गिरफ्तार कर लिये गये थे। प्रकाश सिंह बादल भी जैसे ही अपने फार्म से निकले, गिरफ्तार कर लिये गये। ऑपरेशन ब्लू स्टार के विरोध मे शुरू के तीन दिनो मे पंजाब और कश्मीर मे 30 से भी ज्यादा लोग मारे गये, इसलिए शायद यह ज्यादा अच्छा निर्णय था कि इन नेताओं को फिलहाल बन्द रखा जाये। लेकिन जब श्रीमती गाँधी की हत्या हुई तब भी अकाली त्रिमूर्ति जेल मे बन्द थी। उन्हे इसका अवसर ही नही दिया गया कि वे अपने समर्थकों की मानसिकता का पता लगाकर सिखों और हिन्दुओं की पारस्परिक सद्‌भावना कायम करने के लिए कोई रास्ता निकालते और ऑपरेशन ब्लू स्टार की कार्रवाई के परिणामों को एक सम्पूर्ण पृथकतावादी आंदोलन तक पहुँचने से रोक पाते। इस बात के कोई संकेत नही थे कि बादल या लोंगोवाल, दोनों मे से कोई इस पृथकतावादी आंदोलन का समर्थक है और तब तक तोहड़ा को भी पता चल जाता कि नादानी मे जो रास्ता उन्होंने अपनाया है, वह कितना खतरनाक है। इतना तो था ही कि तोहड़ा ने आखिरी मौके पर भिंडरांवाले को आत्मसमर्पण के लिए राजी करने की कोशिश की थी।

सरकार-नियंत्रित संचार-माध्यमों, खास तौर पर दूरदर्शन के चलताऊ रवैये के कारण स्थिति और बदतर हुई। एक विशेष समिति, जिस पर राजीव गाँधी के एक नजदीकी दोस्त का नियंत्रण था, के निर्देशन मे दूरदर्शन के ऑपरेशन ब्लू स्टार को उचित ठहराने वाले कार्यक्रमों की झड़ी लगा दी। किसी विजेता की तरह, हरिमन्दिर साहब के सामने खड़े हुए मेजर-जनरल बरार को दूरदर्शन ने 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' का वर्णन करते हुए दिखाया। दूसरे कार्यक्रम भी जैसे सिखों के अपराध को प्रमाणित करने के लिए प्रसारित किये गये। नौसेना के गोताखोरों को गोते लगाकर छिपे हुए हथियार निकालते दिखलाया गया और यह भी आरोप लगाया गया कि नशीली दवाएँ भी वहाँ बरामद हुई हैं। बाद मे इन आरोपों को वापस ले लिया गया, क्योंकि उन्हें प्रमाणित नही किया जा सका। अकाल

तखत के एक प्रमुख ग्रंथी को, जो साफ-साफ नाखुश दिखायी दे रहा था, यह वक्तव्य पढ़ने के लिए मजबूर किया गया कि स्वर्णमन्दिर को कोई क्षति नहीं पहुँची है, जबकि उसे पता था कि सिखों के इस पवित्र स्थल में जगह-जगह गोलियों के सूराख हैं। सिख पंथ के एक अपेक्षाकृत गुमनाम नेता को दूरदर्शन पर दर्शकों के सामने इसलिए लाया गया कि वह सैनिक कार्रवाई को जायज करार दें। कुछ ही दिनों के भीतर उन्हें गिरफ्तार किया गया, क्योंकि उनके गुरुद्वारे के करीब ही हथियार बरामद हुए थे। यहाँ तक कि नरमपंथी-उदार सिख भी गुस्से में थे। उन्होंने शिकायत की कि सरकार समूचे सिख समुदाय को भारत का शत्रु साबित करने का प्रचार कर रही है। फिर भी सूचना-प्रसारण मंत्री एच० के० एल० भगत अड़े रहे कि दूर दर्शन के कार्यक्रमों का उद्देश्य सिखों और हिन्दुओं के बीच सद्भाव को बढ़ावा देना है। कलकत्ता के 'टेलीग्राफ' को दिये गये एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा : 'जहाँ तक हमारे टेलीविजन कार्यक्रमों का सवाल है, उन्हें साम्प्रदायिक सद्भाव को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से बनाया गया है।' लेकिन विचित्र बात यह थी कि इसी दूरदर्शन का इस्तेमाल श्रीमती गाँधी ने अपने ही देश के लोगों से अपील करने के लिए नहीं किया। फिर भी, उन्होंने अपनी कार्रवाई को सही ठहराने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संचार-माध्यमों को, जिनमें बी० बी० सी० भी शामिल है, तमाम इंटरव्यू दिये।

दूरदर्शन के फूहड़ लोगों द्वारा सिखों की भावनाओं को रौंदे जाने के बाद सरकार का 'श्वेतपत्र' जारी हुआ। इसके प्रकाशन को कई बार स्थगित करना पड़ा था, क्योंकि विदेश मंत्रालय के आकाओं के लिए इस मामले में कूटनीतिक पहलू घरेलू मुद्दों से ज्यादा महत्वपूर्ण थे। गृहमंत्रालय के अधिकारी चाहते थे कि पंजाब में जो गड़बड़ियाँ हुईं; उनकी ज्यादा-से-ज्यादा जिम्मेदारी पाकिस्तान पर थोप दी जाये। उनका विश्वास था कि इसकी वजह से सिखों को लगेगा कि सरकार ने उन्हें उस षड्यंत्र से बचा लिया है जिसके चलते वे उसी मुसलमान प्रभुत्व के अधीन हो जाते, जिसे उन्होंने 1947 में विभाजन के समय ठुकरा दिया था। ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद गृहमंत्रालय ने एक वक्तव्य जारी किया जिसमें कहा गया : आंदोलन (भिंडराँवाले के) की स्पष्ट दिशा एक स्वतंत्र खालिस्तान का निर्माण करने की थी, जिसे पड़ोसी और विदेशी शक्तियों का समर्थन प्राप्त था।' लेकिन विदेश मंत्रालय ने आपत्ति की कि पाकिस्तान का स्पष्ट जिक्र करने से अमेरिका के साथ भारत के सम्बन्ध बिगड़ सकते हैं। राष्ट्रपति रेगन पाकिस्तान के निरंकुश फौजी शासक जनरल जिया को स्वतंत्रता का एक बड़ा योद्धा मानते थे, जिसके सामने पड़ोसी देश अफगानिस्तान में सोवियत संघ की घुसपैठ का खतरा था।

लम्बी-चौड़ी बहसों के बाद श्वेतपत्र बिना पाकिस्तान के उल्लेख के प्रकाशित हुआ। लेखक ए० जी० नूरानी ने श्वेतपत्र को 'शर्मनाक पतन' माना। श्वेतपत्र ने 'सिर्फ पंजाब ही नहीं बल्कि सारे देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिरता को कमजोर करने वाले' चार कारण गिनाये थे।[2] वे थे :

> जिन माँगों की सूची सरकार को सौंपी गयी थी और जिन पर बातचीत चल रही थी, उन्हें लेकर अकाली दल द्वारा आंदोलन छेड़ देना।
>
> एक घोर साम्प्रदायिक और उग्रवादी आंदोलन जिसकी परिणति हिंसा के खुले समर्थन और देश तथा राज्य के निर्दोष और असहाय लोगों की बर्बर हत्याओं को मंजूरी देने में हुई।
>
> राष्ट्र-विरोधी और पृथकतावादी गतिविधियाँ, जिनका घोषित उद्देश्य था विदेशी मदद से सिखों के एक स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना करना।
>
> अपराधियों, तस्करों, दूसरे असामाजिक तत्वों और नक्सलपंथियों की भागीदारी, जिन्होंने अपने स्वार्थों के लिए परिस्थिति का फायदा उठाया।

उस खतरे को, जिससे मजबूर होकर सरकार ने सख्त कदम उठाया, सामने रखने के जोशोखरोश में श्वेतपत्र अकाली दल को भी पृथकतावादी कहने के करीब पहुँच गया। इस वजह से एक बार फिर सिखों का उदारवादी वर्ग नाराज हुआ।

जब अखबारों और सिखों ने श्वेतपत्र को ऑपरेशन ब्लू स्टार का औचित्य बताने की अधूरी कोशिश कह कर खारिज कर दिया, तो सारी कूटनीतिक शालीनता काफूर की तरह उड़ गयी और 'पाकिस्तान और दूसरी विदेशी शक्तियों' को कठघरे में खड़ा करने की पूरी कोशिशें की गयीं। श्वेतपत्र में जिन विदेशी हथियारों के बरामद होने का जिक्र था, उनमें सिर्फ सत्तावन 7.62 एम० एम० चीनी राइफलें थीं। लेकिन जब बाद में ऑपरेशन ब्लू स्टार के बारे में अपनी व्याख्या देने कांग्रेस पार्टी मैदान में उतरी तो भारतीय सेना द्वारा बरामद विदेशी हथियारों की संख्या बड़े नाटकीय ढंग से बढ़ गयी। 'कॉन्स्पिरेसी एक्सपोज्ड' नाम के पर्चे में 'चीन निर्मित ए० के० 47 गैसचालित राइफलें, जो 300 मीटर दूर तक एक मिनट में 600 राउंड गोलियाँ दाग सकती हैं, चीन निर्मित आर० पी० जी० 7 टैंकनाशक ग्रेनेड लांचर्स, जो 320 किलोमीटर मोटे कवच को भेद सकते हैं, नाटो देशों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली पश्चिम जर्मनी की जी-2 स्वचालित राइफलें, इस्राइल निर्मित बुलेट-प्रूफ कवच, पाकिस्तानी टैंकभेदी हथियारों, का उल्लेख किया गया।

श्रीमती गाँधी और राजीव गाँधी ने अपने सभी भाषणों में पंजाब में विदेशी हाथ की बात को उभारा, लेकिन इसका असर हर बार इसलिए नहीं हो पाता था कि वे सीधे-सीधे उसकी शिनाख्त करने में हिचकिचाते थे। कभी यह विदेशी हाथ सी० आई० ए० का लगता था, कभी पाकिस्तान का और कभी-कभी तो ब्रिटेन का

थी। प्रधानमंत्री ने संसद को बतलाया कि पंजाब समस्या विदेशी शक्तियों द्वारा देश के भीतर 'अस्थिरता पैदा करने की कोशिशों, का नतीजा है। उन्होंने कहा कि इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हासिल करना तो बहुत मुश्किल है, लेकिन टिप्पणी की : 'हम जानते हैं कि अपने निहित स्वार्थों के लिए विदेशी शक्तियाँ साम्प्रदायिक दंगों को भड़काती रही हैं। जब मैं महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के राजतिलक समारोह में भाग लेने लन्दन गयी थी, तो वहाँ पर भारत के एक भूतपूर्व अंग्रेज अधिकारी ने साम्प्रदायिक दंगे भड़काने में अपनी भूमिका के बारे में मुझे बतलाया था।'

इन आरोपों पर अखबारी दुनिया को यकीन नहीं हुआ। 'इंडियन एक्सप्रेस' ने लिखा, 'नव उपनिवेशवाद द्वारा धार्मिक उग्रवाद को मोहरा बनाकर अपने गन्दे मंसूबे पूरा करने की अंतरराष्ट्रीय साजिश की बात पर जोर देकर श्रीमती गाँधी ने पंजाब समस्या में भिंडराँवाले की भूमिका को गौण बना डाला है।'

सिखों ने भी 'विदेशी हाथ' को नामंजूर कर दिया। वे जानते थे कि भारतीय समस्याओं का जिम्मा विदेशियों पर थोपने की श्रीमती गाँधी की पुरानी आदत रही है। 1972 से 1975 के बीच जब श्रीमती गाँधी लगातार संकटों के दलदल में फँसती जा रही थीं, तब वे और उनके सहयोगी हर भाषण में सी० आई० ए० को घसीटते थे। दिक्कत यह थी कि 'विदेशी हाथ' को प्रमाणित करने के लिए श्रीमती गाँधी के पास बहुत ही कम सबूत थे। निश्चित ही विदेशों में ऐसे सिखों की अच्छी तादाद है जिन्होंने पंजाब संकट का स्वागत और भिंडराँवाले का समर्थन किया था, लेकिन ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि उन्होंने पंजाब पर कोई गहरा असर डाला था।

श्वेतपत्र में विदेशों में सक्रिय चार सिख संगठनों का जिक्र था। इनमें से दो ही महत्वपूर्ण थे। पहला था ब्रिटेन में रहने वाले और खालिस्तान के स्व-घोषित राष्ट्र-पति जगजीत सिंह चौहान के नेतृत्व में काम करने वाला 'नेशनल काउंसिल ऑफ खालिस्तान'। दूसरा था 'दल खालसा'। श्वेतपत्र में कहा गया कि इसकी स्थापना भारत में एक स्वतंत्र और सम्प्रभु सिख राष्ट्र के निर्माण के उद्देश्य से की गयी थी। श्वेतपत्र में दल खालसा और जैलसिंह के पुराने रिश्तों का जिक्र नहीं किया गया। श्वेतपत्र यह प्रमाण जुटाने में भी असफल रहा कि आतंकवादी गतिविधियों में इन संगठनों की सीधी हिस्सेदारी है—सिर्फ 'वैनकूवर सन' में छपी इस खबर के अलावा कि ब्रिटिश कोलंबिया में सिखों का एक संगठन बनाकर रोडेशिया के युद्ध में भाग लेने वाला एक भाड़े का सैनिक उन्हें प्रशिक्षित कर रहा है। विदेशों में रहने वाले खालिस्तान समर्थकों के संपर्क निश्चित ही भिंडराँवाले के साथ थे। भिंडराँवाले के दुभाषिये हरमिंदरसिंह संधू ने एक बार खालिस्तान के स्व-घोषित राष्ट्रपति जगजीत सिंह चौहान को एक पत्र लिखा था, जिसमें उसने विदेशों से सहायता की अपील की थी :

डाक्टर साहब, आप बहुत समझदार और दूरदर्शी व्यक्ति हैं और आजकल आप अपनी इन क्षमताओं का उपयोग भी कर रहे हैं। कृपया मित्र राष्ट्रों और अंतरराष्ट्रीय बिरादरी से अधिक-से-अधिक समर्थन और मदद लेने का प्रयास करें।[3]

इस पत्र से कुछ रुपये जरूर मिल सकते थे, इसके अलावा और कुछ नहीं। ऑपरेशन ब्लू स्टार के कारण ही जगजीत सिंह प्रसिद्ध हो पाया था। अकाल तख्त पर सैनिक कार्रवाई के बाद उसने श्रीमती गांधी और उनके परिवार को कई बार धमकियाँ दीं। बी० बी० सी० रेडियो-4 में उसने भविष्यवाणी की कि श्रीमती गांधी की हत्या कर दी जायेगी। इस भविष्यवाणी को धमकी के तौर पर लिया गया, हालांकि रेडियो-4 भारत में नहीं सुनायी पड़ता, लेकिन सरकार ने दिल्ली के हमारे दफ्तर में प्रदर्शन करवाये और उन्हें दूरदर्शन पर भी दिखाया गया। इसकी वजह से जगजीत सिंह चौहान की गतिविधियों से वे लाखों सिख भी परिचित हो गये, जिन्होंने कभी उसका नाम तक नहीं सुना था।

क्या पंजाब संकट में पाकिस्तान की भी कोई भूमिका थी, जैसा श्रीमती गांधी का आशय हुआ करता था? हलके ढंग से इसका निश्चित जवाब है : 'हाँ'। पंजाब के सरहद्दी इलाकों में तस्करी का धन्धा खूब होता है। कई सिख इस धन्धे में दक्ष होने के लिए बहुत ज्यादा आगे तक बढ़ जाते हैं, यह बात एक ऐसे पुलिस अधिकारी से मिलने पर साफ हुई, जिसने एक दिन पहले ही ग्रैंड ट्रंक रोड पर एक सिख 'उग्रवादी' को मारा था। अखबारों में छपा था कि वह सिख का भेष धारे हुए एक पाकिस्तानी था। जब हमने इस खबर का जिक्र किया तो पुलिस इंस्पेक्टर जोरों से हँसा। उसने कहा : 'अरे नहीं साहब, वह तस्कर था। मैं उसके गाँव गया था। वहाँ लोगों ने उसकी शिनाख्त भी कर दी है। उसका खतना इसलिए नहीं हुआ था कि वह मुसलमान था, बल्कि इसलिए हुआ था कि वह पाकिस्तान में पेशाब करना चाहता था।'

भारत-पाक सीमा के आरपार हथियारों की तस्करी नियमित चलती और इस बात की अधिक संभावना है कि इस बार राष्ट्रपति जिया ने इस तरफ से अपनी आँख कुछ ज्यादा ही मूंद ली थी। यह तो तय है कि उन्होंने भिंडरांवाले के आतंकवादियों द्वारा सरहद पार करके पाकिस्तान में पुलिस की अस्थायी शरण लेने का विरोध नहीं किया, हालांकि उनमें से ज्यादातर को स्वर्णमन्दिर परिसर या गुरुद्वारों में अधिक सुरक्षित शरण मिल जाती थी, लेकिन जिया ने पंजाब समस्या के प्रति एक बड़ा सतर्क रुख अपना लिया था। उनके सलाहकारों ने उन्हें बता रखा था कि पंजाब की समस्या को श्रीमती गांधी और ज्यादा बिगाड़ कर उसे युद्ध का मुद्दा बना रही हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि पाकिस्तान से युद्ध ही वह रास्ता है जिसके जरिये वे देश के लोगों का ध्यान पंजाब और दूसरी समस्याओं से

हटा सकती हैं। जिया युद्ध बिलकुल नहीं चाहते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि भारत को हराने वाले पहले पाकिस्तानी शासक का गौरव उन्हें हासिल होने वाला नहीं है। उन्हें फील्ड-मार्शल अयूब खाँ और जनरल याह्या खाँ की नियति याद थी, जिन्होंने ऐसी कोशिशें की थीं और नाकामयाब रहे। और हालाँकि जिया को 1971 में ढाका में पाकिस्तानी सेना के आत्मसमर्पण का बदला चुकाने का विचार बहुत भाता था, लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया जिससे श्रीमती गाँधी को युद्ध छेड़ने का बहाना मिल पाता। उन्होंने कभी सिखों का खुला समर्थन नहीं किया और हमारे पास इसके प्रमाण भी नहीं हैं कि छिपे तौर पर भी उन्होंने ऐसा किया हो। सच्चाई यह है कि उन्होंने ठीक इसका उलटा किया। अपने ही शब्दों में, उन्होंने 'अमन का हमला' (पीस ऑफेंसिव) शुरू किया। लगभग हर कूटनीतिक चाल में कामयाबी हासिल करते हुए जिया ने अमेरिका और पश्चिमी देशों को यह यकीन दिला दिया कि वे वास्तव में भारत के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाना चाहते हैं। श्रीमती गाँधी ने कभी युद्ध के बारे में गम्भीरता से सोचा हो या नहीं, जिया के 'अमन के हमले' ने उसका रास्ता बंद कर डाला।

यद्यपि पंजाब समस्या में 'विदेशी शक्तियों के हाथ' और बड़े पैमाने पर दूसरे सरकारी प्रचार का असर भले ही यह रहा हो कि समूचा सिख समुदाय भिंडराँवाले और उसके आतंकवादियों का समर्थक नजर आये, लेकिन स्वयं श्वेतपत्र में सिखों को 'दोष मुक्त' कर दिया गया था। इसमें लिखा था :

> पंजाब में सरकार को जो कार्रवाई करनी पड़ी, वह न तो सिखों के खिलाफ थी, न सिख धर्म के खिलाफ। यह कार्रवाई आतंकवाद और पृथकतावादी गतिविधियों के विरुद्ध थी। सिख भारतीय राष्ट्र के अविभाज्य अंग हैं। देश की आजादी और सुरक्षा तथा स्वतंत्र भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में सिखों का योगदान किसी से भी घट कर नहीं है। राष्ट्र के अन्य हिस्सों के साथ सिख समुदाय भी देश की एकता और अखंडता को सुरक्षित और मजबूत रखने के लिए दृढ़ता के साथ खड़ा है।

इस बात को और मजबूत करने के अपने प्रयासों में तेजी लाने के बदले श्रीमती गाँधी ने अपनी मृत्यु के दिन तक सिखों के सबसे प्रभावशाली समूह जाट नेताओं के साथ लड़ाई जारी रखी। अकाल तखत की मरम्मत के सिलसिले में उनकी यह आक्रामकता सबसे ज्यादा मुखर हुई। सिखों की मान्यता है कि मन्दिरों का रखरखाव और उनकी मरम्मत एक पवित्र कार्य है। वे इसे 'कारसेवा' कहते हैं। यह काम धार्मिक सिखों द्वारा किसी माने हुए सन्त के नेतृत्व में होना चाहिए। इसीलिए प्रमुख सिख ग्रंथियों ने अपील की कि मन्दिर परिसर से सेना हटा लेनी

चाहिए और उन्हें अकाल तख्त तथा दूसरी क्षतिग्रस्त इमारतों की मरम्मत की अनुमति मिलनी चाहिए।

श्रीमती गाँधी ने मरम्मत पूरी होने से पहले सेना हटाने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि इन देवस्थलों की मरम्मत के सिलसिले में वे सिखों पर भरोसा नहीं कर सकतीं, क्योंकि कुछ प्रमुख सिखों ने सुझाव दिया था कि अकाल तख्त को इसी टूटी-बिखरी हालत में सुरक्षित रखा जाये, जिससे यह उस पाप की स्थायी यादगार बना रहे। उन्होंने अपने मन्त्रिमंडल के एकमात्र सिख सदस्य निर्माण-मन्त्री बूटासिंह को मुख्य ग्रंथियों से बातचीत के लिए नियुक्त किया। यह अच्छा चुनाव नहीं था। बूटासिंह मजहबी सिख थे, जिन्हें जाट सिख हरिजन या अछूत समझते हैं। वे पहले अकाली दल के कार्यकर्त्ता भी रह चुके थे, इसलिए अकाली नेता उन्हें गद्दार मानते थे। बहरहाल, अकाल तख्त की मरम्मत के मामले में बूटा सिंह मुख्य ग्रंथियों के साथ बातचीत में एक सहमति तक पहुँचने में सफल हो गये। उन्होंने अमृतसर में इसकी घोषणा भी कर दी, लेकिन इस घोषणा के कुछ ही घंटों के भीतर सरकार ने दिल्ली में इस समझौते से इनकार कर दिया। वरिष्ठ सैनिक अधिकारियों का एक दल भी मुख्य ग्रंथियों के साथ सहमति तक पहुँचने में सफल हो गया। इस समझौते से उनकी सुरक्षा-समस्याओं का हल तो होता था, लेकिन इससे श्रीमती गाँधी के राजनैतिक उद्देश्य पूरे होते नहीं दिखायी पड़ते थे। सैनिक अधिकारियों को अपने समझौते से हट जाने का आदेश दिया गया।

श्रीमती गाँधी का राजनैतिक सोच-विचार कतई स्पष्ट नहीं था। बातचीत करने वाले अकाली दल के प्रतिनिधि-मंडल के एकमात्र ऐसे सदस्य, जो गिरफ्तार नहीं थे, बलवंत सिंह ने मुझसे कहा कि 'श्रीमती गाँधी हमसे नाक रगड़वाना चाहती है।' बहुत-से सिख यही मानते थे। बहुत-से समाचार पत्रों के टिप्पणीकारों का भी विचार था कि श्रीमती गाँधी सिखों को अपमानित करना चाहती है, क्योंकि उनका अन्दाजा है कि हिन्दू मतदाता इस अपमान को चाहते है। सच्चाई यह लगती है कि शायद श्रीमती गाँधी को विश्वास था कि वे इस मौके का इस्तेमाल अकाली दल को हमेशा के लिए तोड़ डालने के लिए कर सकती हैं। उन्होंने अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि गुरुद्वारों की सम्पत्ति और उनकी व्यवस्था को शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अधिकार से निकालने के लिए वे एक योजना तैयार करें। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति अकाली दल का आर्थिक स्रोत था।

जब यह स्पष्ट हो गया कि श्रीमती गाँधी शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति और स्वर्णमन्दिर के मुख्य ग्रंथियों को अकाल तख्त और दूसरी क्षतिग्रस्त इमारतों की मरम्मत की अनुमति नहीं देंगी तो बूटासिंह सिखों की एक और शाखा निहंगों के नेता बाबा सन्ता सिंह से मिले। वह एक बुजुर्ग और बहुत ही थुलथुल सिख थे, जिनके अनुयायी धर्म-परायणता के बजाय अपनी अशिष्टता के लिए मशहूर थे।

उनमें से कई अफीम के शौकीन थे। बाबा सन्ता सिंह ने कभी भी मुख्य ग्रंथियों और शिरोमणि गुरुद्वारा समिति के अधीन किसी कारसेवा का संचालन नहीं किया था। इसीलिए कारसेवा करवाने के लिए सन्ता सिंह की योग्यता के दावे को उन्होंने ठुकरा दिया।

सन्ता सिंह और उसके अनुयायी इस पवित्र कार्य के लिए इसलिए भी अयोग्य दिखलायी देते थे कि उन्हें और उनके अनुयायियों को भाँग की लत थी। सिख धर्म में सभी तरह के नशे वर्जित हैं। लेकिन जब एक सुबह सतीश जेकब बाबा सन्ता के शिविर में गये तो उन्होंने वहाँ उनके अनुयायियों को भाँग के बीज, बादाम, चीनी और काली मिर्च को पीसकर ठंडाई बनाते देखा। दो बूढ़े सिख एक बड़े-से कड़ाह में खौलता हुआ दूध औटाने में लगे थे। पिसी हुई भाँग और दूध को मिलाकर ठंडाई बनायी जाती है। सन्ता सिंह के अनुयायी अपनी दिनचर्या की शुरुआत बिना हिचक के इस नशे की एक तगड़ी खुराक से करते थे। दूध औटाने वाले एक सिख ने कहा, 'हम लोग महाप्रसाद बना रहे हैं। लगभग बन गया है। तुम भी आओ। तुम्हें मजा आयेगा।' सतीश जेकब को एक दूसरे सिख ने बताया कि भाँग की यह घोटाई उनका एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है।

मरम्मत का काम बिना किसी पारम्परिक अनुष्ठान के शुरू हुआ। होना यह चाहिए था कि मुख्य ग्रंथी सोने की कुदालों से मलबे के ढेर पर पहला हाथ लगाते और फिर उसे चाँदी के तसलों में उठाकर वहाँ से दूर ले जाते। लेकिन तसले और कुदाल स्वर्णमन्दिर के तोशखाने में बन्द थे। दूरदर्शन पर सन्ता सिंह और उनके जंगली जैसे लगते निहंगों को मन्दिर में सूर्योदय से पहले घुसते हुए और बड़ी हड़बड़ी में कारसेवा शुरू करने के लिए वेदी के सामने अरदास करते हुए दिखलाया गया। इसके बाद वे अमृतसर के गुरुद्वारे में चले गये, जिसे उन्हें सौंपा गया था। दूरदर्शन कैमरों के सामने ये निहंग धार्मिक परम्पराओं का प्रदर्शन तो पूरी कारसेवा के दौरान करते रहे, लेकिन सारा-का-सारा काम लोकनिर्माण विभाग की देखरेख में ठेकेदारों द्वारा किया गया। लोक निर्माण विभाग के सेवा-निवृत्त चीफ इंजीनियर के० डी० बाली इसके इंचार्ज थे। मलबा हटाने का अधिकांश भारी काम हरिजन मजदूरों द्वारा किया गया। संगमरमर का काम करने वाले मुसलमानों और दूसरे शिल्पकारों को राजस्थान से लाया गया। सुनार उत्तर प्रदेश से लाये गये। योजना में काम करने वाले एक वरिष्ठ इंजीनियर ने बताया कि इसमें 9 से 10 किलोग्राम तक सोना इस्तेमाल हुआ। इंजीनियर के अनुसार मरम्मत पर कुल लागत तीन-चार करोड़ रुपये आयी।

मुख्य ग्रंथियों ने सन्ता सिंह को पंथ से निकाल दिया। सन्ता सिंह ने चुटकी बजा कर इस सजा को उड़ाते हुए कहा, 'मुझे पंथ से निकलने वाले ये मुख्य ग्रंथी हैं कौन? ये तो स्वर्णमन्दिर प्रबन्धक समिति के तनख्वाह पाने वाले मुलाजिम हैं।'

कारसेवा चलती रही। इस विरोध के लिए सन्ता सिंह को भरपूर इनाम दिया गया। वरिष्ठ इंजीनियर ने सतीश जेकब को बताया कि अपने तीन सौ अनुयायियों को खुश रखने के लिए सन्ता सिंह को हर रोज एक लाख रुपये दिये जाते थे। निर्माण मन्त्री बूटा सिंह नियमित रूप से दिल्ली से उड़ कर वहाँ आते थे, जिससे कि काम जल्दी से पूरा हो या अगर कोई राजनैतिक समस्या पैदा हो रही हो तो उसे दूर किया जाये। सितम्बर के अन्त तक अकाल तख्त बनकर तैयार हो गया। इमारत के सामने की बालकनियाँ जिन्हें टैंकों ने मलबों के ढेर में बदल डाला था, फिर से निर्मित कर दी गयीं। स्वर्णमंडित गुंबद के छेदों को भर डाला गया। स्तम्भ के ऊपर शिखर को, जो सैनिक कार्रवाई के दौरान उड़ गया था, फिर से स्थापित कर दिया गया। सतीश जेकब को सिखों ने बताया कि अकाल तख्त का बाहरी ढाँचा बड़ी बारीकी और मूल डिजाइन को ध्यान में रखकर बनाया गया, लेकिन भीतरी सजावट को दुबारा उसी तरह बना पाने में कोई सफल नहीं हो पाया।

जैसे-जैसे मरम्मत का काम पूरा होने लगा, मन्दिर के प्रबन्ध का सवाल फिर से पैदा हुआ। श्रीमती गाँधी मन्दिर को दुबारा शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक समिति के हाथों सुपुर्द नहीं करना चाहती थीं। मुख्य ग्रंथियों और शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक समिति के विरोध को बेअसर करने के उद्देश्य से उन्होंने इस कारसेवा के अनुमोदन के लिए सिखों के सम्मेलन सरबत खालसा का आयोजन करवाया। लेकिन मुख्य ग्रंथियों द्वारा 2 सितम्बर को बुलाये गये विश्व सिख सम्मेलन के कारण कारसेवा पृष्ठभूमि में चली गयी। सरकार द्वारा सम्मेलन स्थल पर पहुँचने में बाधा डालने के बावजूद बड़ी संख्या में सिख वहाँ पहुँचे और उन्होंने कई भीषण प्रस्ताव पारित किये। एक प्रस्ताव में राष्ट्रपति जैल सिंह और बूटा सिंह को तनखइया घोषित किया गया था। यह सिख बिरादरी से बहिष्कृत करने की एक ऐसी सजा है, जिसके बाद सजायाफ्ता व्यक्ति के साथ कोई भी सिख अपना सम्बन्ध नहीं रख सकता। इसके बाद मुख्य ग्रंथियों ने स्वर्णमन्दिर को 'मुक्त' कराने के लिए 1 अक्तूबर को अमृतसर मार्च का आह्वान किया।

इस समय तक दबाव इतने बढ़ चुके थे कि उनका प्रतिरोध कर पाना श्रीमती गाँधी के वश में नहीं रह गया था। यहाँ तक कि स्वयं उनकी अपनी पार्टी के आशाधारी सिख सदस्य भी उनसे आग्रह कर रहे थे कि वे इस फाँस को सुलझायें। राष्ट्रपति जैल सिंह ने भी दुबारा दबाव डालना शुरू कर दिया था, क्योंकि वे तनखइया होने की अपनी सजा वापस करवाना चाहते थे। 7 सितम्बर को आतंकवादियों ने एक और बस पर हमला किया जिसमें 7 यात्री मारे गये। इस घटना ने उन दिनों की याद फिर से ताजा कर दी जब पूरे पंजाब पर भिंडरांवाले का राज था और इसने हिन्दुओं को यह भी याद दिलाया कि अकालियों के साथ श्रीमती गाँधी की लगातार टकराव की नीति के परिणाम खतरनाक हो सकते हैं। इस तरह 25

सितम्बर को, यानी स्वर्णमन्दिर को 'मुक्त' कराने के लिए आयोजित मार्च के ठीक छह दिन पहले श्रीमती गाँधी ने घोषणा की कि मन्दिर से सेना हटा ली जायेगी और मन्दिर को दुबारा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के अधीन कर दिया जायेगा। यह घोषणा एक तरह से श्रीमती गाँधी की योजनाओं पर एक आघात थी, क्योंकि इसी के साथ ही उन्हें गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के नियंत्रण से सभी गुरुद्वारों को मुक्त करने के लिए गुरुद्वारा अधिनियम में संशोधन की बात भी छोड़ देनी पड़ी। श्रीमती गाँधी ने अपनी इस हार को सम्मानपूर्वक स्वीकार नहीं किया। राष्ट्र के नाम एक आकस्मिक संदेश में उन्होंने कहा : 'सरकार मन्दिर पर नियंत्रण नहीं चाहती। हम इसे जल्द-से-जल्द इसके वास्तविक धार्मिक संरक्षकों के हाथों सौंप देना चाहते हैं। लेकिन निश्चित ही सरकार की चिन्ता यह है कि जो भी इसके प्रबन्ध को देखे, वह इतना आश्वासन जरूर दे कि उसका दुरुपयोग नहीं किया जायेगा।'

राष्ट्रपति जैल सिंह को सिख संगत द्वारा क्षमादान भी इसी समझौते का एक हिस्सा था, जिसके लिए गुप्त बातचीत की गयी थी। जब सेना ने स्वर्णमन्दिर को मुख्य ग्रंथियों के सुपुर्द कर दिया तो ज्ञानी जैलसिंह वहाँ एक समारोह में शामिल हुए जहाँ, बताते हैं, उन्होंने कहा : 'यहाँ पर जो भी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ हुईं, मैं उनके लिए सच्चे मन से गुरुओं से क्षमा माँगता हूँ।' हालाँकि उनके प्रवक्ता ने बाद में इस बात का खंडन किया कि राष्ट्रपति ने ऑपरेशन ब्लू स्टार के लिए कोई माफी माँगी है। यह भी बताते हैं कि राष्ट्रपति ने वहाँ कहा कि मुख्य ग्रंथियों और सरकार के बीच जो भी समस्याएँ हैं, उन्हें सुलझा लिया जायेगा। उनकी यह यात्रा अगर प्रायश्चित की नहीं थी, तो भी सद्‌भावना की तो थी ही। लेकिन इस सद्-भावना का अनुकूल जवाब अकाल तखत के मुख्य ग्रंथी की तरफ से नहीं मिला। ज्ञानी किरपाल सिंह ने राष्ट्रपति से कहा कि सरकार को अपना सिख विरोधी रवैया छोड़ देना चाहिए और सिख धर्म को मानने वाले लोगों के साथ 'दूसरे दर्जे के नाग-रिकों जैसा बर्ताव बन्द करना चाहिए।' उन्होंने आल इंडिया सिख स्टूडेंट्स फेड-रेशन, जो कि भिंडरांवाले के आंदोलन की मुख्य ताकत थी, पर से प्रतिबंध हटाने और इसके सभी सदस्यों की रिहाई की माँग भी की। उन्होंने अकाली दल के नेताओं को भी रिहा करने की माँग की। निश्चित ही प्रधानमंत्री की मरहम लगाने वाली बात की ईमानदारी पर सिखों को भरोसा हो, इसके लिए अभी बहुत-से समझौते और करने बाकी थे। लेकिन अकाली त्रिमूर्ति, जिससे श्रीमती गाँधी कोई बातचीत कर सकती थीं, अभी तक जेल में थी और फिर एक महीने बाद ही श्रीमती गाँधी को गोली मार दी गयी।

15

समापन

श्रीमती गांधी की हत्या किसने की ? 'मैंने', बेअन्त सिंह ने श्रीमती गांधी के बगीचे में कमांडों के सामने आत्मसमर्पण करते हुए कहा। लेकिन वह खुद एक शिकार था, उस गुस्से का शिकार जो ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद पूरे सिख समुदाय के भीतर उमड़ रहा था . एक ऐसा गुस्सा जिसे बेअन्त सिंह ने पैदा नहीं किया था। यह गुस्सा उन लोगों की देन थी जिन्होंने सिख कौम का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी ले रखी थी। यह देन थी उनकी जो भारत पर शासन कर रहे थे और उस समय की भी जिसमे वे सब रह रहे थे। यह बहुत आसान है कि जनरैल सिंह भिंडरांवाले और उसकी सिख धर्मान्धता को दोषी ठहरा दिया जाये जो हिन्दुओं के प्रति नफरत से फलती-फूलती रही। लेकिन उग्रवाद शून्य में पैदा नहीं होता। शून्य में न कोई शाह पैदा होता है, न खुमैनी, न इन्दिरा गांधी और न ही भिंडरांवाले। यह एक बहुत कठोर, बहुत निर्मम बात लग सकती है और इसी में यह निहित है कि श्रीमती गांधी किसी भी तरह से न तो निरंकुश और न ही दमनकारी शासक थी। फिर भी उस राजनैतिक माहौल की जिम्मेदारी उन्हीं पर जाती है, जिसने भिंडरांवाले के उग्रवाद को प्रासंगिक बनाया। अकाली दल की त्रिमूर्ति को भी अपना दोष स्वीकार करना चाहिए। बादल और लोंगोवाल दोनों में उस ताकत के खिलाफ खड़े होने की हिम्मत नहीं थी, जिसकी बुराई से वे परिचित थे। तोहड़ा ने उसका इस्तेमाल खुद अपने हितों के लिए करना चाहा था।

यह श्रीमती इन्दिरा गांधी की ही पार्टी थी जिसने भिंडरांवाले का शिगूफा छेड़ा और यह भी इन्दिरा गांधी की ही सरकार थी जिसने उसे पंजाब में अपनी भूमिका को हथियाने की इजाजत दी। अगर श्रीमती गांधी ने पुलिस के डी० आई० जी० अटवाल की हत्या के बाद ही भिंडरांवाले को गिरफ्तार कर लिया होता तो अकाल तख्त पर हमला करने की नौबत ही नहीं आती। जब उन्हें सूचना मिली थी कि भिंडरांवाले स्वर्णमन्दिर परिसर की किलेबन्दी कर रहा है तब भी अगर उन्होंने कार्रवाई की होती तो इतनी देर न हुई होती। आखिरकार जब उन्होंने कार्रवाई की तब तक सचमुच देर हो चुकी थी।

हमने पहले ही श्रीमती गांधी के अनिश्चय को अमृतसर की त्रासदी का एक

कारण माना है। उनके चारों ओर जो दरबार इकट्ठा हो गया था, हमने उसकी ओर भी इशारा किया है। इस दरबार ने भारत के प्रशासन और अन्य संस्थाओं को पंगु बना डाला था। सारी ताकत दिल्ली दरबार से आती थी, लेकिन ये दरबारी अकसर अपनी ताकत का मनचाहा इस्तेमाल करते थे। हिन्दुस्तान के दूसरे सबसे प्रभावशाली व्यक्ति श्रीमती गाँधी के बेटे राजीव गाँधी नहीं, उनके निजी सचिव आर० के० धवन थे। जाहिर है, चापलूस और चमचे सत्ता के शिखर तक पहुँच गये थे और स्वतंत्र सोच के लोग कहीं नीचे दब गये थे। यह महत्वपूर्ण है कि अकाली दल के साथ बात-चीत में मध्यस्थता करने वाले अमरिन्दर सिंह ने अपनी भूमिका इसलिए त्यागी कि श्रीमती गाँधी के चारों ओर रहने वाले नौकरशाहों ने हर मुद्दे को अँधेरे से ढँक दिया था। यह भी महत्वपूर्ण है कि उनके दरबारियों ने पंजाब के राज्यपाल बी० डी० पांडे को स्वतंत्र ढंग से काम नहीं करने दिया। और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सत्ता में आने के सात महीनों के भीतर ही राजीव गाँधी अपनी माँ के सलाहकारों का तबादला करके, उन्हें बर्खास्त करके या फिर नजरन्दाज करके अकाली दल के साथ समझौते तक पहुँच गये।

सबसे पहले राजीव गाँधी ने सिख उग्रवादियों और अकाली दल की माँगों, विशेष रूप से आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव के कारण राष्ट्र की एकता के सामने पैदा हुए खतरे को उभारा। अपनी माँ से सत्ता ग्रहण करने के फौरन बाद घोषित किये गये आम चुनावों के प्रचार अभियान में उन्होंने मतदाताओं के सामने सिर्फ एक मुद्दा पेश किया, वह था—भारतीय एकता पर मँडराते खतरे का मुद्दा। उन्होंने अपने को एक ऐसे नेता के रूप में प्रस्तुत किया जो इस खतरे का सामना कर सकता था। आम चुनावों में जीत ने नेहरू-इन्दिरा गाँधी खानदान के इस उत्तराधिकारी को अपने दम पर प्रधानमंत्री के पद पर स्थापित किया। इसके बाद उन्होंने राज्य विधान सभाओं के चुनाव लड़े और वहाँ भी उनकी पार्टी ने लोकसभा चुनाव जैसी बढ़िया तो नहीं, फिर भी संतोषजनक सफलता पायी। इन दोनों अड़चनों को पार करके राजीव गाँधी पंजाब की समस्या की ओर मुड़े। चुनाव-प्रचार के दौरान के अपने भाषणों को आसानी से भूलकर वे अकाली दल के साथ समझौता करने के लिए किसी रास्ते की तलाश में लग गये।

अपनी माँ के विपरीत, राजीव गाँधी को महसूस हुआ कि पंजाब की समस्या राजनीतिक है जिसे दरबारियों, नौकरशाहों, पुलिस या सेना को नहीं, राजनीतिज्ञों को निबटना चाहिए। उनका पहला कदम, जो बहुत समझदारी भरा साबित हुआ, वह था भारत के एक बेहद सुलझे हुए राजनीतिज्ञ अर्जुन सिंह को पंजाब का राज्यपाल बनाना। अर्जुन सिंह को यह पद उस नौकरशाह को हटाकर दिया गया था जिसने भूतपूर्व राज्यपाल बी० डी० पांडे से कार्यभार ग्रहण किया था। पिछले पाँच सालों से इन्दिरा काँग्रेस के मुख्यमंत्री के रूप में अर्जुन सिंह ने भारत के सबसे

बड़े राज्य मध्य प्रदेश पर शासन किया था। जिस राज्य को दक्षिणपंथी हिन्दूवादी पार्टी – भारतीय जनता पार्टी का गढ़ समझा जाता था, उन्होंने उसे एक मामूली विरोधी गुट में बदल डाला था। उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू के दौर के मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल के प्रभावशाली बेटों को भी निष्प्रभावी बना डाला था। शुक्ल-बंधु मध्यप्रदेश कांग्रेस को अपनी जागीर समझते थे। राजीव गांधी के एक सहयोगी ने सतीश जेकब से कहा, 'जो व्यक्ति एक तरफ भारतीय जनता पार्टी और दूसरी तरफ शुक्ल-बंधुओं से निपट सकता है, उसे इतना समर्थ होना चाहिए कि अकालियों से भी निपट सके।'

अब अकाली त्रिमूर्ति का मुकाबला सरकारी पक्ष की मजबूत और संगठित त्रिमूर्ति से था —राजीव गांधी, अर्जुन सिंह और अरुण सिंह। अरुण सिंह एक बहु-राष्ट्रीय कम्पनी के भूतपूर्व प्रबन्धक थे और स्कूल के दिनों से राजीव गांधी के दोस्त रह चुके थे। राजीव गांधी उन्हें तब राजनीति में लेकर आये जब उन्होंने संजय गांधी का उत्तराधिकार प्राप्त किया था। इस समय तक अरुण सिंह प्रधान-मंत्री के संसदीय सचिव और दाहिने हाथ बन चुके थे। वे योग्य, अपनी सोच में बिलकुल सीधे और आधुनिक व्यक्ति थे। उनकी ये विशेषताएँ श्रीमती गांधी के सबसे विश्वस्त सहयोगी भूतपूर्व स्टेनोग्राफर आर० के० धवन के बिलकुल विपरीत थी, जो भारतीय नौकरशाही और राजनीति के कुटिल तौर-तरीकों की अपनी समझ का इस्तेमाल इस काम के लिए करते थे कि कौन श्रीमती गांधी के निकट आये और कौन नहीं।

यह नयी त्रिमूर्ति जिस रणनीति के साथ सामने आयी वह तीन महत्वपूर्ण मामलों में श्रीमती गांधी की रणनीति से अलग थी। राजीव गांधी ने किसी भी नौकरशाह, दरबारी या राजनीतिज्ञ को अपने और पंजाब के राज्यपाल के बीच आने नहीं दिया। अर्जुन सिंह को उनसे सीधे मिलने की इजाजत थी। श्रीमती गांधी ने किसी मुख्यमंत्री या राज्यपाल को अपने इतना करीब नहीं आने दिया था। अपने सहयोगियों के लिए उन्होंने 'सन्तुलन और रोक' की व्यवस्था बनायी थी। इस त्रिमूर्ति ने यह भी फैसला किया कि पंजाब को लेकर जिन लोगों के निहित स्वार्थ हैं, उन्हें समझौते की कोशिशों से अलग रखा जाये। वे लोग थे : राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह, पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमंत्री दरबारा सिंह और हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल। जैल सिंह और दरबारा सिंह को पंजाब के बारे में झगड़ा करते हुए देखकर श्रीमती गांधी को सिर्फ खुशी ही होती थी, क्योंकि इस टकराव से इन दोनों व्यक्तियों में से कोई भी पंजाब की कांग्रेस पार्टी पर अपना प्रभाव नहीं जमा सकता था। जब कभी उन्हें समझौते से पीछे हटना होता था, भजनलाल उनके लिए बढ़िया मोहरा साबित होते थे।

इस नयी रणनीति का सबसे मुश्किल पहलू था लोंगोवाल को अकाली त्रिमूर्ति

के दूसरे दो नेताओं से अलग करना। श्रीमती गाँधी अपने विरोधियों में फूट डाल कर राज करने की नीति पर यकीन करती थीं, और यही नीति उन्होंने अपनी पार्टी के लिए भी अपना रखी थी। अकाली दल के नेतृत्व में तनाव को उन्होंने हमेशा अपने फायदे की चीज समझा। अर्जुन सिंह ने वहाँ परिस्थितियों का अध्ययन किया तो पाया कि अकाली नेता किसी भी मुद्दे पर साझा रवैया नहीं अपना सकते। उनकी प्रतिद्वंद्विता और निहित हित उन्हें ऐसा करने से रोकते हैं। उन्होंने राजीव गाँधी को संत लोंगोवाल को साथ लेने के लिए कहा। इसकी दो वजहें थीं : 'मोर्चा डिक्टेटर' होने के नाते लोंगोवाल ही वह व्यक्ति थे जिन्हें यह अधिकार था कि किसी भी समझौते को स्वीकार करें और आंदोलन वापस ले लें। उनका आदेश अकाली दल की बुनियाद से जुड़े नेताओं को भी स्वीकार होता। पिछली बातचीतों में लगा था कि लोंगोवाल दो-टूक किस्म के नेता हैं, और अकाली त्रिमूर्ति में सबसे कम महत्वाकांक्षी हैं।

अप्रैल के अन्त तक अर्जुन सिंह आशावादी हो चुके थे। उन्होंने मुझे बताया कि उनका विश्वास है कि अकाली दल वास्तव में किसी समझौते के लिए उत्सुक है। जब सिख उग्रवादियों ने माहौल में इस आशावाद को देखा तो वे एक बार फिर हिंसा पर उतारू हुए। 10 और 11 मई को राजधानी दिल्ली में 20 बम फटे और 18 बमों का विस्फोट उत्तरी भारत के अन्य भागों में हुआ। 82 लोग मारे गये। निश्चित ही हिन्दू ही उनके निशाने थे। नौकरशाहों की प्रतिक्रिया पावलोववादी थी। उन्होंने सुझाव दिया कि अकाली नेताओं को फिर से गिरफ्तार कर लेना चाहिए और समझौते की सारी कोशिशें छोड़ देनी चाहिए। कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने भी मिलकर प्रधानमंत्री को चेतावनी दी कि बम-विस्फोटों के बाद सिखों को दी जाने वाली किसी भी रियायत को हिन्दू बर्दाश्त नहीं करेंगे। लेकिन राजीव गाँधी और अर्जुन सिंह ने अपने रास्ते से हटने से मना कर दिया। ठीक दो महीने बाद 21 जुलाई को यह घोषणा करके अर्जुन सिंह ने सारे हिन्दुस्तान को आश्चर्य में डाल दिया कि सन्त हरचन्दसिंह लोंगोवाल प्रधानमंत्री से भेंट करने दिल्ली आ रहे हैं।

मध्यस्थों के द्वारा गोपनीय ढंग से चलायी गयी बातचीत के जरिए समझौते की जमीन सूझ-बूझ से तैयार की गयी थी। बैठक की घोषणा के पहले अर्जुन सिंह स्वयं लोंगोवाल को यह समझाने के लिए मिले कि समझौता हो जायेगा। ये बातचीतें मजबूत इरादे, तेजी और कुशलता के साथ चलायी गयीं। यह श्रीमती गाँधी के दौर में होने वाली बातचीत के ढंग से एकदम उलट था, जब अकाली दल और सरकार दोनों ही पक्ष लम्बी-चौड़ी तरकीबें अपनाते थे।

48 घंटों से भी कम समय में समझौते की घोषणा हो गयी।

श्रीमती गाँधी तीन साल पहले ही इन मामलों को इन्हीं शर्तों पर सुलझा सकती

थी और तब न तो ऑपरेशन ब्लू स्टार होता, न सिख सैनिक विद्रोह होता और न ही खुद उनकी हत्या होती।

राजीव गांधी के समझौते में ग्यारह मुद्दे समेटे गये थे। इनमें से कई ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद होने वाली घटनाओं से संबद्ध थे, मसलन सैनिक विद्रोह, सिख-विरोधी दंगे और सुरक्षा बलों द्वारा आतंकवाद-विरोधी अभियान। जून 1984 में जो तीन बड़े मसले अनसुलझे रह गये थे—वे थे चंडीगढ़, नदियों के पानी और आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के मसले। राजीव गांधी ने चंडीगढ़ पंजाब को सौंप दिया और सीमा-विवाद को निपटाने के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर दी। आयोग की शर्तों ने इस बात को लगभग असंभव बना डाला कि अबोहर और फाजिल्का हरियाणा के सुपुर्द हो जायें। यह दरअसल श्रीमती गांधी का भी अन्तिम फैसला था, लेकिन तब तक किसी समझौते तक पहुँच पाने में बहुत देर हो चुकी थी, क्योंकि भिंडरांवाले आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के सम्पूर्ण अमल की मांग पर अड़ गया था। राजीव गांधी इस प्रस्ताव को अपनी मां द्वारा केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के बारे में नियुक्त एक सदस्यीय आयोग को भेजने के लिए सहमत हुए। अगर श्रीमती गांधी ने चंडीगढ़ और नदियों के पानी से सम्बन्धित मांगें मान ली होतीं तो पहले भी अकाली इसे स्वीकार कर लेते। नदियों के पानी के मसले पर भी लगभग उन्हीं शर्तों पर समझौता हुआ जिन्हें अकाली श्रीमती गांधी के दौर में भी स्वीकार कर चुके थे। पंजाब को उसके हिस्से का पानी तब तक के लिए फिर मिलने लगा, जब तक किसी न्यायाधीश की अध्यक्षता में बना आयोग इसका कोई स्थायी निपटारा न कर दे। इस तरह अन्त में एक ही मसला बाकी बचा था, वह था चंडीगढ़। ऑपरेशन ब्लू स्टार के दो महीने पहले एक अकाली नेता ने मुझसे कहा था कि चंडीगढ़ के अलावा दूसरे मसले तो 'बस एक आयोग की बात हैं।' यह श्रीमती गांधी की विडंबना ही थी कि उन्हें ऐसे नौकरशाह सुझाव देते थे, जिन्हें कोई भी चीज इतनी सरल लगती ही नहीं थी।

इस नयी सरकारी त्रिमूर्ति की सबसे बड़ी उपलब्धि थी गोपनीयता बनाये रखना। श्रीमती गांधी तो लोंगोवाल के साथ अपनी टेलीफोन की बातचीत भी गुप्त नहीं रख सकी थीं। उनके दौर में उन नौकरशाहों या राजनीतिज्ञों से मिली सूचनाओं पर अटकलों वाली खबरों की बाढ़ रहती थी जो बातचीत को असफल बनाने के लिए अखबारों का इस्तेमाल करते थे। राजीव गांधी और उनके साथियों ने अपनी बातें अपने तक ही सीमित रखीं। जिन लोगों का पंजाब में सीधा हित था, उन्हें अन्धकार में रखना विशेष रूप से कठिन था। बादल और तोहड़ा, जैल सिंह, दरबारा सिंह और भजनलाल सब-के-सब बहुत सक्रिय राजनीतिज्ञ थे, जिनके सम्पर्क केन्द्रीय सरकार के प्रशासन-तंत्र से लेकर पंजाब के चप्पे-चप्पे तक थे, लेकिन इस बार उनके सम्पर्क-सूत्र काम नहीं आये।

समझौते की खबर सुनकर बाकी दो अकाली नेता बहुत गहराई से क्षुब्ध हुए। जैसा कि होना था, उन्होंने इस समझौते को ठुकरा दिया और इस तरह लोंगोवाल के साथ बातचीत करने के बारे में अर्जुन सिंह के फैसले को ठीक साबित किया। भजनलाल भी अपने गुस्से को जाहिर नहीं कर पाये, जब उनसे कहा गया कि जिन शर्तों को हरियाणा अब तक ठुकराता रहा है उन्हें स्वीकार करना होगा। विपक्षी नेताओं ने भी हरियाणा के मुख्यमंत्री के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों की लम्बी सूची राजीव गाँधी को पेश करके उन्हें और आसानी दे दी थी। इसीलिए भजन-लाल प्रतिरोध कर पाने की स्थिति में नहीं रह गये। राष्ट्रपति जैलसिंह को जब 'यह खबर मिली कि प्रधानमंत्री और लोंगोवाल की भेंट होने जा रही है उस वक्त वे दौरे पर दिल्ली से बाहर थे। जब वे लौट कर भी आये तो राजीव गाँधी ने बड़ी गम्भीरता से दिल्ली में उनकी मौजूदगी को नजरन्दाज किया। उस समय किसी को भी दरबारा सिंह की याद नहीं आयी जो उस वक्त बम्बई में थे।

जब राजीव गाँधी ने तालियों की गड़गड़ाहट से भरी संसद में घोषणा की कि 'मुझे आशा है कि देश को बचाने के लिए, देश की एकता और अखंडता को बचाने के लिए यह समझौता मिल-जुल कर काम करने के एक नये अध्याय की शुरुआत है', तो उन्हें पता था कि सिखों और हिन्दुओं के बीच पारस्परिक सद्भावना के निर्माण की प्रक्रिया की यह एक शुरुआत ही है। उन्हें यह भी पता था कि दूसरे भारतीय समुदायों के बीच सद्भाव पैदा करने के लिए अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है। जिस समय राजीव गाँधी यह बात कह रहे थे, उसी समय महात्मा गाँधी की जन्म-भूमि गुजरात में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे थे।

राजीव गाँधी ने पंजाब समस्या के समाधान के लिए संकटकालीन आधुनिक प्रबंधकीय तकनीक का इस्तेमाल किया। उन्होंने एक बहुत अधिक संगठित नेतृत्व-मंडली बनायी, स्थितियों के दस्तावेजों का अध्ययन करके अपने दिमाग को पूरी तरह साफ किया और इस बात पर जोर देकर कि दस्तावेज सिर्फ वही लोग देखें जिन्हें दरअसल देखने की जरूरत है, गोपनीयता बनाये रखी। भारत के चारों कोनों से आने वाली जो अफवाहें श्रीमती गाँधी के दरबार में फैली रहती थीं, उन्हें इस बार बाहर ही रखा गया। यह नयी शैली निश्चित ही समझौते में कारगर रही। प्रश्न यह है कि क्या यह शैली सिख असंतोष के पीछे मूल कारणों और भारत के अन्य हिस्सों में मौजूद साम्प्रदायिक तनावों को दूर कर पाने में भी इतनी ही सफल हो पायेगी ?

आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक तनाव अकसर बढ़ती हुई अपेक्षाओं के कारण पैदा होता है और यह देश के अधिक समृद्ध और अधिक विकसित हिस्सों में सबसे ज्यादा होता है, जिससे पता चलता है कि आर्थिक विकास ही भारतीय समस्याओं का एकमात्र समाधान नहीं है। जब राजीव गाँधी सत्ता में आये, उस समय

गुजरात और पंजाब जैसे देश के दो सबसे विकासशील राज्यों में ही धार्मिक कट्टरतावाद और साम्प्रदायिकता का दृश्य मौजूद था, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे गरीब और पिछड़े क्षेत्रों में नहीं। इन क्षेत्रों के गरीबों ने अपने आसपास में इतने कम बदलाव देखे हैं कि वे उससे बेहतर जिन्दगी की उम्मीद ही नहीं करते। पंजाबियों और गुजरातियों ने काफी विकास देखा है। उनमें से कुछ लोग इसलिए कुंठित हैं कि विकास के फायदे उन्हें नसीब नहीं हो रहे हैं। दूसरे इसलिए डरे हुए हैं कि धन-दौलत के स्रोतों पर उनका जो पारम्परिक अधिकार है, कहीं वह खतरे में न पड़ जाये। बीसवीं शताब्दी की विचारधाराएँ, जैसे प्रगतिशील पूंजीवाद, समाजवाद और यहाँ तक कि साम्यवाद भी भारत में सिर्फ नाम के लिए हैं। उन्होंने कोई वास्तविक राजनीतिक शक्ल नहीं ग्रहण की है। इसलिए वे लोग, जिन्हें परम्परागत विशेषाधिकारों के छिनने का डर है और वे लोग, जिनकी बेहतर *जिन्दगी की उम्मीदें निराशा में तब्दील हो गयी हैं, अपनी लड़ाई लड़ने के लिए* भारतीय समाज के पुराने वर्गों, जाति और नस्ल का ही सहारा लेते हैं।

पंजाब समस्या को सुलझाने के लिए किसी राजनीतिक समाधान खोजने के राजीव गाँधी के फैसले से लगा कि उन्हें अहसास हो गया था कि साम्प्रदायिक कलह का जवाब पुलिस और सेना नहीं है। उन्हें लगा कि पंजाब की तात्कालिक समस्या को सुलझाने के लिए एक राजनीतिक साहस की जरूरत है। अगर उन्हें इस समस्या के असल कारणों से निपटना है तो उन्हें एक नयी तरह के संकल्प और साहस की जरूरत होगी और इसके लिए उन्हें भारतीय जीवन और सोच के हर पहलू को आधुनिक करने के रास्ते तलाशने होंगे, देश को कोई क्षति पहुँचाये बिना उन्हें दोबारा कांग्रेस की रचना करनी पड़ेगी जिससे कि यह वास्तव में एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रीय पार्टी बन सके, लेकिन इस बार आधुनिक सामाजिक और आर्थिक नीतियों के साथ, उन्हें भारतीय अर्थव्यवस्था का खून चूसने वाले परोपजीवियों—राजनीतिज्ञ, नौकरशाह और ठेकेदारों का शिकंजा तोड़ना होगा। इसका अर्थ होगा उन जटिल आर्थिक नियंत्रणों को छिन्न-भिन्न कर देना जिसे इन वर्गों ने अपने स्वार्थों के लिए बना रखा है। जर्जर प्रशासन को पूरी तरह से बदल कर उन्हें नयी संस्थाएँ बनानी होंगी जो दूरदराज के पिछड़े गाँवों में या गन्दी बस्तियों में बदहाल जिन्दगी जीने वाले भारतीयों के जीवन को बदलने के लिए वातावरण, शिक्षा, आवास और चिकित्सा की सुविधा दे सकें। इसमें कोई शक नहीं कि राजीव गाँधी भारत को आधुनिक बनाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। अकालियों के साथ इतनी जल्दी और इतनी कुशलता से अपने मनभेद दूर करना एक अच्छी शुरुआत थी, लेकिन वह एक छोटी-सी शुरुआत थी।

□□

टिप्पणियाँ

1. एक प्रधानमंत्री की हत्या

1. एम० जे० अकबर से इंटरव्यू, 'संडे', कलकत्ता, 10-16, मार्च 1985
2. वही
3. एम० जे० अकबर, 'इंडिया : दि सीज विदइन', पेंग्विन बुक्स, हारमंड्सवर्थ, 1985, पृष्ठ 197

2. सिख

1. एम० ए० मैकॉलिफ, 'दि सिख रिलीजन', पुस्तिका, लंदन, 1910, पृष्ठ 6
2. एच० बेवेरिज (संपादन), 'तुजुक-ए-जहाँगीरी', ए० रोजर्स द्वारा अनूदित, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंदन, 1909, खंड एक, पृष्ठ 72
3. सीताराम कोहली, 'दि आर्मी ऑफ महाराजा रणजीत सिंह', 'जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री', खंड एक : 1921-22, आधुनिक भारतीय इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, लंदन में प्रकाशित
4. विलियम फ्रैंकलिन, 'मिलिट्री मेमॉयर्स ऑफ जॉर्ज थॉमस', लेखक के लिए हुरकारू प्रेस कलकत्ता से मुद्रित, 1803, पृष्ठ 71-73
5. लार्ड विलियम गोडोल्फिन ऑसबोर्न, 'दि कोर्ट एंड कैम्प ऑफ रणजीत सिंह', हेनरी कोलबर्न, लंदन, 1840, पृष्ठ 72
6. एमिली एडेन, 'आन दि कंट्री', कर्जन प्रेस, लंदन, 1978 (पहला संस्करण ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 1930 में प्रकाशित), पृष्ठ 200
7. वही, पृष्ठ 218
8. फिलिप मैसन, 'अ मैटर ऑफ ऑनर : एन अकाउंट ऑफ इंडियन आर्मी, इट्स ऑफिसर्स एंड मेन', जोनाथन केप, लंदन, 1974, पृष्ठ 236
9. फ्रेडरिक कूपर, 'क्राइसिस ऑफ दि पंजाब', स्मिथ, लंदन, 1858, पृष्ठ 22-23
10. खुशवन्त सिंह, 'अ हिस्ट्री ऑफ दि सिख्स', खंड दो : 1839-1974, प्रिंसटन

यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिसटन, 1966; भारतीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1977, भारतीय संस्करण के पृष्ठ 112-113

11. वही, पृष्ठ 160
12. मोहिन्दर सिंह, 'दि अकाली मूवमेंट', मैकमिलन, दिल्ली, 1978, पृष्ठ 14
13. वही, पृष्ठ 20
14. रेव० एड्रूज, 'मैनचेस्टर गार्जियन' में छपे लेख, 15 और 24 फरवरी 1924
15. जवाहरलाल नेहरू, 'आत्मकथा', यह सस्करण जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल फंड, दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1980, पृष्ठ 175-176
16. फिलिप मैसन, ऊपर उद्धरित, पृष्ठ 514

3. सिखों का असंतोष

1. अजीतसिंह सरहदी, 'पंजाबी सूबा', यू० सी० कपूर एंड संस, दिल्ली, 1970, पृष्ठ 327
2. नोर्मा एवनसन, 'चंडीगढ़', यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस, बर्कले और लॉस एंजेलिस, 1966, पृष्ठ 93

5. भिंडरांवाले की गिरफ्तारी

1. खुशवन्त सिंह और कुलदीप नैयर, 'ट्रैजेडी ऑफ पंजाब : ऑपरेशन ब्लू स्टार एंड आफ्टर', विज़न बुक्स, 1984, पृष्ठ 24
2. 'सडे', कलकत्ता, 8 से 14 अगस्त, 1982, पृष्ठ 39
3. प्रमोद कुमार, मनमोहन शर्मा, अतुल सूद और अश्विनी हांडा, 'पंजाब क्राइसिस, कांटेक्स्ट एंड ट्रेंड्स', सेंटर फॉर रिसर्च इन रूरल एंड इंडस्ट्रियल डेवलेपमेंट, चंडीगढ़, 1984

6. सिख समझौते की कोशिश

1. खुशवन्त सिंह और कुलदीप नैयर, 'ट्रैजेडी ऑफ पंजाब . ऑपरेशन ब्लू स्टार एंड आफ्टर', विज़न बुक्स, 1984, पृष्ठ 38
2. वही, पृष्ठ 50
3. अमरजीत कौर, अरुण शौरी, लेफ्टीनेन्ट जनरल जे० एस० अरोड़ा, खुशवन्त सिंह और अन्य, 'दि पंजाब स्टोरी', रोली बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली, 1984, पृष्ठ 98
3. 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया', बम्बई, 10 अप्रैल 1983

8. दो बर्बर हत्याएँ : श्रीमती गांधी ने आखिर कार्रवाई की

1. अमरजीत कौर, अरुण शौरी, लेफ्टिनेंट-जनरल जे० एस० अरोड़ा, खुशवन्त सिंह और अन्य, 'दि पंजाब स्टोरी', रोली बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली, 1984 पृष्ठ 39

9. राष्ट्रपति शासन असफल

1. एम० जे० अकबर, 'इंडिया : दि सीज विदइन', पेंग्विन बुक्स हारमंड्सवर्थ, 1985, 196

10. ऑपरेशज ब्लू स्टार

1. डी० आर० मनकेकर, '22 फेटफुल डेज', (यह संस्करण दीप एंड दीप दिल्ली द्वारा प्रकाशित, 1968, पृष्ठ 73-74
2. अमरजीत कौर, अरुण शौरी, लेफ्टिनेंट-जनरल जे० एस० अरोड़ा, खुशवन्त सिंह और अन्य, 'दि पंजाब स्टोरी', रोली बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली, 1984 पृष्ठ 13
3. 'जनता वीकली', बम्बई, 23 सितम्बर, 1984

11. स्वर्ण मन्दिर, 6 जून

1. अमरजीत कौर, अरुण शौरी, लेफ्टीनेंट-जनरल जे० एस० अरोड़ा, खुशवन्त सिंह और अन्य, 'दि पंजाब स्टोरी', रोली बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली, 1984 पृष्ठ 28

14. परिणाम

1. अमरजीत कौर, अरुण शौरी, लेफ्टीनेंट-जनरल जे० एस० अरोड़ा, खुशवन्त सिंह और अन्य, 'दि पंजाब स्टोरी', रोली बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली, 1984 पृष्ठ 28
2. 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया', बम्बई, 22 जुलाई, 1984
3. शेखर गुप्ता, अरुण शौरी, राहुल वेदी और प्रणय राय, 'दि एसेसिनेशन एंड आफ्टर', रोली बुक्स इंटरनेशनल, दिल्ली 1985, पृष्ठ 27

15. समापन

1. 'जर्नल ऑफ दि इंडो-ब्रिटिश हिस्टॉरिकल सोसायटी', मद्रास, दिसम्बर, 1984

अनुक्रमणिका

अमृतसर

इन्दिरा गाँधी की आखिरी लड़ाई

मार्क टली तथा सतीश जेकब

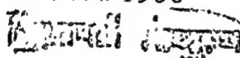
अनुवाद
उदय प्रकाश



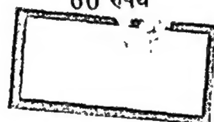
राधाकृष्ण

Translation of
Amritsar : Mrs. Gandhi's Last Battle
by Mark Tully and Satish Jacob

पहला हिन्दी संस्करण
जनवरी 1986
दूसरी आवृत्ति
फरवरी 1986



मूल्य
60 रुपये



प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

मुद्रक
ग्रन्थशिल्पी, पंचशील गार्डन
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

क्रम

चित्रों के लिए आभार

कुछ चित्रों के प्रकाशन की अनुमति के लिए लेखक तथा प्रकाशक, श्री संदीप शंकर, इंडिया टुडे, नयी दिल्ली तथा दि टेलिग्राफ, कलकत्ता के आभारी हैं।

भारतीय संस्करण की भूमिका

भारतीय संस्करण के प्रकाशन से हमें यह अवसर मिला है कि पंजाब की इस कहानी को चुनाव के मुकाम तक पहुँचा सकें जो, हमें उम्मीद है, एक सुखद समापन होगा।

बीस अगस्त 1985 को सन्त हरचन्द सिंह लोगोवाल को उनके गाँव के पास एक गुरुद्वारे में गोली मार दी गयी। यह उनके और प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के बीच हुए समझौते पर एक बड़ा आघात था। लोगोवाल उन धर्मान्ध सिख नौजवानों की गोलियों के शिकार हुए थे, जो अपनी कौम और हिन्दुओं के बीच सुलह नहीं होने देना चाहते थे। दिल्ली में व्यवस्था का वह हिस्सा भी जिसे राजीव गाँधी सरकार की आधुनिक शैली से खतरा महसूस होता था, इस प्रत्यक्ष आघात से नाखुश नहीं था। मिसाल के लिए, 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने लोगोवाल की हत्या को इस बात का प्रमाण माना कि 'जरूरत उच्चतम राजनीतिक कौशल की है, जन सम्पर्क कार्यक्रमों और ऐसी प्रतिक्रियाओं की नहीं, जिन्हें कि अमेरिकी शब्दावली में 'भौंचक' कहते हैं।'

राजीव गाँधी ने दिल्ली के आरामतलब राजनीतिक पंडितों की सलाह पर गौर न करते हुए राज्यपाल अर्जुनसिंह का यह सुझाव स्वीकार किया कि पंजाब में अब भी विधानसभा और लोकसभा के चुनाव हो सकते हैं और होने चाहिए। राज्यपाल ने एक बातचीत में मुझसे कहा कि लोगोवाल की हत्या से 'बहुसंख्यक सिखों को सदमा पहुँचा है।' उनका मानना था कि इसके बाद 'सिखों की यह इच्छा और दृढ़ हुई है कि समझौता कारगर हो।' उन्हें आशंका थी कि सिख उग्रवादी चुनाव में गड़बड़ी करने की कोशिश करेंगे और पंजाब में डेढ़ लाख अतिरिक्त अर्ध-सैनिक पुलिस की तैनाती से भी इस बात की गारंटी नहीं हो सकती कि आतंकवाद सर नहीं उठाएगा। जैसा कि उनका कहना था, 'अन्त में हम करबद्ध प्रार्थना ही कर सकते हैं।' राज्यपाल की प्रार्थनाएँ सुनी गयीं। चुनाव अद्भुत ढंग से शान्तिपूर्ण रहे। अकाली अपने इतिहास में पहली बार अपने ही बूते पर सरकार बनाने में कामयाब हुए। एक बार फिर भारत ने अपने को संकट से मुक्त कर लिया—आठ साल पहले की तरह ही, जब मतदाताओं ने श्रीमती गाँधी के आपातकाल को नामंजूर किया था।